श्रीवीतरागाय नमः ।

महाकवि–श्रीवीरनन्दि-विरचित

चन्द्रप्रभ-चरित ।

अनुवादक—

श्रीयुक्त पं० रूपनारायणजी पाण्डेय ।
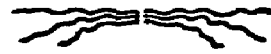
प्रकाशक—

हिन्दी–जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय,
चन्दावाड़ी गिरगाँव बम्बई ।
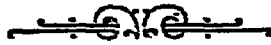
वीरनिर्वाण २४४२ चैत्र ।

सन् १९१६ अप्रेल ।

प्रथम संस्करण ।

की० सादी जिल्द १) रु०, कपड़ेकी पक्की जिल्द १।) रु०

वक्तव्य।

जैनसाहित्यमें महाकवि वीरनन्दिका बनाया 'चन्द्रप्रभ-चरित' एक उच्च कोटिका श्रेष्ठ काव्य है। वादिराज जैसे प्रतिष्ठित कवियोंने अपने ग्रन्थकी आदिमें महाकवि वीरनन्दिका स्मरण करते हुए 'चन्द्रप्रभ-चरित' का उल्लेख कर उसे उच्चासन पर विराजमान किया है। जैनसाहित्यके लिए यह गौरवकी बात है।

चन्द्रप्रभ-चरित महाकाव्य है; और इसलिए महाकाव्यमें जो जो गुण होने चाहिए, जिन जिन बातोंका वर्णन किया जाना चाहिए कविने उन सब गुणोंका, उन सब बातोंका बड़ी सुन्दरतासे इस काव्यमें वर्णन किया है। इस काव्यकी कथा वैसे तो मनोहारिणी है ही; और कविने अपनी रचना-सुन्दरता, शब्द-सुन्दरता, अर्थ-चमत्कृति, समय समय परका रस-वर्णन अलङ्कार-निवेश, और सुन्दर-सरस उक्तियोंसे उसे और भी सुन्दर बना दिया है। कई कई जगह तो इतना मार्मिक वर्णन हुआ है कि उसका हृदय पर बड़ा ही गहरा असर पड़ता है। इसके लिए एक दो प्रकरणोंका अपने इस वक्तव्यमें उल्लेख करना हम आवश्यक समझते हैं।

शृंगार-रसके वर्णनमें कविकी कल्पना देखिए—

ह्रीतो विहाय मम लोचनहारि नृत्यं
गन्तुं शिखी सुमुखि तत्र यदि व्यवस्येत्।
कार्यस्त्वया स्मरनिवासनितम्बचुम्बी
चीनांशुकेन पिहितो निजकेशपाशः॥

—सर्ग ८ श्लो० २४।

हे सुमुखि, बागमें मेरे नेत्रोंको सुख देनेवाले नृत्यको छोड़कर लज्जासे अगर मोर भागनेकी कोशिश करे तो तुम कामके स्थान नितम्ब पर्यन्त लम्बे अपने बिखरे हुए केशपाशको रेशमी ओढ़नीसे ढक लेना ।

मुखमसदृशविभ्रमैर्विदित्वा
सुभगतनोररविन्दमध्यगायाः ।
सरसिजमिदमित्युपेत्य शाठ्या–
दविदिततत्त्व इवापरश्चुचुम्ब ॥

—सर्ग ९ श्लो० ५० ।

किसी नायकने कमलोंके बीचमें खड़ी हुई अपनी प्रियाके मुखको विशेष विलासोंसे पहचान कर भी 'यह कमल है,' इस प्रकार कहकर पास जाकर धूर्त्ततासे अनजान बन चूम लिया ।

कुसुमकिसलयं विचेतुकामां
विटपिनि सत्यपि नम्रनम्रशाखे ।
तरुमनयत तुङ्गमेव भर्त्ता
भुजयुगमूलदिदृक्षया मृगाक्षीम् ॥

—सर्ग ९ श्लो० २२ ।

फूल चुननेकी इच्छा रखनेवाली मृगनयनीके भुजमूल देखनेकी लालसासे उसका पति झुकी हुई डालियोंवाले वृक्षोंके रहते भी उसे ऊँचे ऊँचे पेड़ोंके पास लेजाता है ।

वपुषि कनकभासि चम्पकानां
सुदति न ते परभागमेति माला ।
स्तनतटमिति संस्पृशन्प्रियाया
हृदि रमणो बकुलस्रजं बबन्ध ॥

—सर्ग ९ श्लो० २४ ।

"हे सुन्दर दाँतोंवाली, तुम्हारे सुनहले रंगके शरीर पर चम्पेकी

माला नहीं खुलती "—यों कहकर प्रियाके स्तनों पर हाथ फेरते हुए नायकने उसके हृदयमें मौलसिरीकी माला पहना दी।

एक उत्प्रेक्षा सुनिए—

अन्योन्यसंहतकराङ्गुलिवाहुयुग्म—
मन्या निधाय निजमूर्धनि जृम्भमाणा।
तद्दर्शनात्प्रविशतो हृदये स्मरस्य
माङ्गल्यतोरणमिवोत्क्षिपती रराज॥

—सर्ग ७ श्लो० ८७।

एक स्त्री उँगलियोंसे उँगली मिलाकर दोनों हाथोंको सिर पर धनुषाकार किये जँभाई लेने लगी। जान पड़ा कि अजितसेनको देखकर हृदयमें प्रवेश किये कामदेवके लिए वह मंगलसूचक तोरण वना रही है।

कितनी सुन्दर, सरस और मनोमोहक कल्पना है। कविने सीधी-सादी बातोंको जिस मधुर-रसभरी भङ्गीसे कहा, कविकी वे सुन्दर कल्पनायें पाठकोंके मन पर अपना प्रभाव डाले विना नहीं रह सकतीं।

अन्तमें जो उत्प्रेक्षाका एक उदाहरण दिया गया है, उसे ज़रा ध्यानसे देखिए। जव स्त्रियाँ कामवश होती हैं तव वे अपने मनोगत भावोंको ठीक ऐसी ही चेष्टाओं द्वारा अन्य पर प्रगट करती हैं। क़विने इस नई-अद्भुत कल्पना द्वारा उसका कितना अच्छा चित्र पाठकोंकी आँखोंके सामने खड़ा कर दिया है। इसी तरह कविने अपने काव्यमें एकसे एक कल्पनाको वड़ी सुन्दरतासे सजाकर पाठकोंके मनोहंसको गंभीर-प्रसन्न शृंगार-सरोवरकी सैर कराई है।

यह तो हुआ शृंगाररस, अव एक वैराग्यके प्रकरणको सुनिए—

" अहो नराणां भवगर्त्तवर्तिना—
मशाश्वतीं पश्यत जीवितस्थितिम्।
ययाति दूरेण जिताः स्वचापला—
त्तडिद्विलासाः शरदम्बुदैः समम्॥ १०॥

गदेन मुक्तोऽशनिना कटाक्ष्यते
तदुज्झितः शस्त्रविषाग्निकण्टकैः ।
अनेकमृत्यूद्भवसङ्कटे नरः
कियद्गराकश्चिरमेप जीवति ॥ ११ ॥
वपुर्धनं यौवनमायुरन्यद—
प्यशाश्वतं सर्वमिदं शरीरिणाम् ।
तथाप्ययं शाश्वतमेव मन्यते
जनः प्रमोहः खलु कोप्ययं महान् ॥ १२ ॥
इदं करोम्यद्य परुद्दिनेप्विदं
परार्यदश्च प्रविधेयमित्ययम् ।
अनेककर्त्तव्यशताकुलः पुमा—
न मृत्युमासन्नमपीक्षितुं क्षमः ॥ १३ ॥
मदान्धकान्तानयनान्तचञ्चलाः
सदा सहन्ते न सहासितं श्रियः ।
ज्वलज्जरावज्रहविर्भुजो जये
कियच्चिरं स्थास्यति यौवनं वनम् ॥ १५ ॥
शनैर्विहास्यन्ति गतश्रियं न मां
न बान्धवा बद्धघनर्द्धिवुन्द्वयः ।
फलप्रसूनप्रलये हि कोकिला
भवन्ति चूतावनिजं जिहासवः ॥ १७ ॥
कषायसारेन्धनवद्धपद्धति-
र्भवाग्निरुत्तुङ्गतरः समुत्थितः ।
न शान्तिमायाति भृशं परिज्वल-
न्न यद्ययं ज्ञानजलैर्निषिच्यते ॥ १९ ॥
दुरन्तभोगाभिमुखां निवर्तये-
न्न शेमुषीं यः सुखलेशलोभितः ।

कथं करिष्यत्युपरूढिमागता-
मिमां स जन्मव्रततिं विनाशिनीम् ॥ २३ ॥
मनुष्यजन्मेदमवाप्य दुर्लभं
क्षयात्कथंचिन्मलिनस्य कर्मणः ।
भवाम्बुराशौ पुनरापदां पदे
पतंति ते ये न हिते विजाग्रति ॥ २४ ॥

—११ वाँ सर्ग ।

अहो, संसारकूपमें पड़े हुए लोगोंके जीवनकी अनियत स्थितिको देखो । यह जीवनकी स्थिति बिजली और शरदृतुके मेघोंसे भी बढ़-कर चंचल है । रोगसे छुटकारा मिला तो सिर पर बिजली गिरना चाहती है । उससे बचे तो शस्त्र, विष, अग्निरूप कण्टक सामने खड़े हैं । अनेक मौतके सामानोंसे भरे इस संसारमें यह क्षुद्र मनुष्य कब तक जी सकता है । शरीरधारियोंका शरीर, धन, जवानी, आयु और अन्य चीजें भी सब अनित्य हैं । तथापि लोग इन सब चीजोंको नित्य सम-झते हैं । यह कैसा महामोह है ? "आज यह करता हूँ, कल यह करूँगा, परसों यह करूँगा," इस प्रकार सोचकर अनेक कर्त्तव्योंके झंझटोंमें पड़ा हुआ यह पुरुष सिर पर आई हुई मौतको देख भी नहीं सकता । .... मतवाली नारीके कटाक्षोंके समान चञ्चल लक्ष्मी सदा साथ नहीं रहती । और, प्रज्वलित बुढ़ापेके अग्निवज्रको जवानीका जंगल कब तक सह सकता है । ... ... धन और सम्पत्तिको चाहने वाले बान्धव मुझ श्रीहीनको धीरे धीरे छोड़ देंगे । जब आमके पेड़में फल या मञ्जरी कुछ नहीं रहता तब कोकिलायें उसे छोड़ जाती हैं । ... . क्रोध आदि मोटे कुन्दोंसे प्रज्वलित बहुत ऊँचे उठा हुआ संसाररूप अग्नि निरन्तर जलता रहकर भी अगर ज्ञानके जलसे बुझाया न गया तो शान्त नहीं होता । .... स्वल्प सुखके लोभमें पड़कर जो जीव दुरन्त भोगोंकी ओर जाती हुई अपनी बुद्धिको निवृत्त नहीं करता

वह वृद्धिको प्राप्त संसार-लताको किस तरह उखाड़ेगा ? पापकर्मका क्षय होने पर किसी तरह इस दुर्लभ मनुष्य-जन्मको पाकर फिर जो लोग हित (मोक्ष) की ओर ध्यान नहीं देते वे आपदाओंकी खान इस संसारसागरमें गिरते हैं।"

इसी तरह जहाँ पर वीर, करुणा आदि रस आये हैं कविने उन्हें बड़ी सुन्दरतासे वर्णन किया है। विलास, नीति, मनोरंजन, व्यवहार-कुशलता आदि जितनी बातें हैं वे सब इस काव्यमें समय समय पर वर्णन की गई हैं। उन्हें पढ़कर मन बड़ा प्रसन्न होता है। कविकी वस्तु-वर्णनशैली देखकर उनकी स्वाभाविक प्रतिभाकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करनी पड़ती है। इस काव्यमें और काव्योंकी अपेक्षा एक विशेषता है और वह यह कि यह क्लिष्ट न होकर प्रायः सरल लिखा गया है।

इसके सिवा और भी अनेक खूबियाँ इस काव्यमें होंगी, जो कि इसका मार्मिकता और तुलनात्मक बुद्धिसे अभ्यास और मनन करनेसे जानी जा सकती हैं। जैनसमाजमें अब विद्याकी रुचि दिनों दिन बढ़ चली है। प्रतिवर्ष न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि विषयके एक-दो विद्वान् उच्च परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाते हैं। वे यदि अन्य लोगोंके साहित्य और जैनसाहित्य पर तुलनात्मक बुद्धिसे विचार कर जैनसाहित्यकी विशेषताओंको जनसाधारणके सामने उपस्थित करें तो जैनसाहित्यका बड़ा गौरव हो। क्योंकि यह हमें पूर्ण विश्वास है कि जैनविद्वान् किसीसे किसी विषयमें कम नहीं हुए हैं। उन्होंने प्रत्येक विषयको लिखा है और कुछ न कुछ विशेषताओंके साथ लिखा है।

कालिदास, भारवि, श्रीहर्ष, माघ आदिके काव्यों पर अनेक देशी और विदेशी बड़े बड़े विद्वानोंने तुलनात्मक बुद्धिसे निबन्ध लिखे हैं, बड़ी बड़ी चार-चारसौ पृष्ठकी पुस्तकें लिखी हैं। और उनमें यह बतलाया है कि उनमें क्या क्या खूबियाँ हैं, क्यों वे सर्वमान्य हुए, और क्यों उन्हें संसारके साहित्यमें उच्चासन मिला। सोमदेव, धनपाल, जैसे प्रखर जैनविद्वानोंने भी इन कवियोंकी प्रशंसा की है। तब यह मानना पड़ेगा कि उनकी

रचनामें अवश्य ही कोई ऐसी विशेषतायें हैं जो कि अच्छे अच्छे विद्वानोंको अपने पर लुभा लेती हैं। इसी तरह जैनकवियोंकी रचनाओंमें जो जो विशेषतायें हैं उन्हें अध्ययन और मनन द्वारा प्रगट करना अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है। ऐसा करनेसे निःसन्देह जैनसाहित्यका गौरव बढ़ेगा। आशा है जैनविद्वानोंका ध्यान इस ओर आकर्षित होगा।

चन्द्रप्रभ-चरित अब तक केवल संस्कृतमें था; पर एक जैन विद्वान्की रचनाका आस्वाद हिन्दीके पाठक भी लेसकें इसके लिए हमने इसका एक अच्छे विद्वान्से हिन्दी अनुवाद कराकर प्रकाशित किया है। हम यह कहना उचित समझते हैं कि हिन्दी-भाषाके जैनसाहित्यमें सबसे पहला यही महाकाव्य प्रकाशित हुआ है। यदि पाठकोंने इसका आदर किया तो हम अपने अर्थव्यय और परिश्रमको सफल समझकर आगेके लिए भी उत्तमोत्तम जैनकाव्योंको प्रकाशित करनेका साहस कर सकेंगे।

यह अनुवाद हमने एक अजैन विद्वान्से कराया है; कारण हमारे जैनविद्वानोंको एक तो बेचारी हिन्दी-भाषा पर प्रेम ही नहीं—हिन्दीभाषामें कुछ लिखना मानों वे अपना अपमानसा समझते हैं। दूसरे उनकी भाषा संस्कृत-जटिल और इतनी आडम्बरपूर्ण होती है कि उनसे इतना अच्छा अनुवाद हो भी नहीं सकता था। इस अनुवादके लेखक हिन्दीके प्रसिद्ध लेखकोंमें हैं। उनकी भाषा बड़ी ही सुन्दर और सीधी-सादी होती है। इसका अनुभव इसे पढ़कर पाठक स्वयं कर सकेंगे। अनुवादकने कविके मर्मको बड़ी अच्छी तरह समझानेकी कोशिश की है और उसमें वे सफल हुए हैं।

अन्तमें एक बात लिखकर हम अपनी भूमिकाको पूर्ण करेंगे। वह यह कि और और लोगोंके साहित्यकी तरह जैनसाहित्यका क्यों सर्वत्र प्रचार नहीं हो पाया? हो सकता है कि धार्मिक भेद-भावोंकी भिन्नताके कारण जैनसाहित्यका सर्वत्र प्रचार होनेमें कुछ आग्रही लोगोंने विघ्न डाले हों और इस तरह वह सर्व साधारणका प्रेमभाजन न बनकर सिर्फ़ जैनसमाजके ही उपयोगमें आया हो। पर इस कारणकी अपेक्षा हम जैनसमाजको ही अधिक दोषी कहेंगे। क्योंकि वह एक ऐसे जमानेमें

भी गुज़र चुका है जब कि अपनी धार्मिक पुस्तकें अन्य धर्मवालोंको दिखानेमें हिचकिचाता था–डरता था। और ऐसे लोगोंकी आज भी जैनसमाजमें कमी नहीं है। इसके सिवा उसने कभी ऐसा प्रयत्न भी नहीं किया कि जिससे वह अपने साहित्यका पूर्णरूपसे सर्वसाधारणमें प्रचार कर सकता था। हम इस कारणको प्रधान नहीं मान सकते कि धार्मिक भेद्भावोंने जैनसाहित्यके प्रचारमें इतनी रुकावट डाली हो। क्योंकि आदर जो होता है वह गुणोंका होता है। यह अमुककी कृति है इस लिए इसे मान देना चाहिए, ऐसा आग्रह विद्वानोंमें बहुत कम होता है। सोमदेवका अपने यशस्तिलकमें माघ, भारवि, आदि अन्यधर्मी कवियोंका स्मरण करना, तिलकमंजरीमें धनपाल कविका बाणभट्ट आदिकी तारीफ़ करना, अलंकारके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' पर आशाधरसे धर्मधुरीण जैनविद्वान्का टीका लिखना, आदि इस बातके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। निष्कर्ष यह निकला कि अपने साहित्यप्रचारके लिए जैनसमाजका जो कर्त्तव्य था उसे उसने नहीं पूरा किया। इसी लिए जैनसाहित्यका प्रचार पूर्णरूपसे न हो पाया। अस्तु, अब भी यदि वह इसके लिए प्रयत्न करे तो उसे सफलता प्राप्त हो सकती है और पहले जमानेसे अब उसे यह विशेषता भी प्राप्त है कि इस समय आग्रह और पक्षपातका आसन गिरकर गुणोंको ही अधिक मान मिलता जा रहा है। आशा है जैनसमाज हर प्रयत्न द्वारा जैनसाहित्यके प्रचारका यत्न कर अपने एक कोनेमें पड़े हुए साहित्यको प्रकाशमें लानेकी कोशिश करेगा।

इस जगह हम अपने माननीय मित्र श्रीयुक्त नाथूरामजी प्रेमी सम्पादक 'जैनहितैषी' का भी आभार माने बिना नहीं रह सकते कि जिन्होंने हमारी प्रार्थनाको मान देखकर महाकवि वीरनन्दिका ऐतिहासिक वृत्तान्त लिख दिया।

विनीत—

उदयलाल काशलीवाल।

महाकवि वीरनन्दि ।

मूलसंघ अर्थात् दिगम्बर सम्प्रदायकी चार शाखायें हैं—नन्दि, सिंह, सेन और देव । इन शाखाओंकी भी प्रतिशाखायें हैं जो गण गच्छ आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं । नन्दिसंघमें जो कई गण गच्छादि हैं, उनमेंसे एक 'देशीय' गण भी है। चन्द्रप्रभकाव्यके कर्त्ता महामना वीरनन्दि इसी देशीय[1] गणमें हुए हैं । ग्रन्थके अन्तमें उन्होंने जो अपना थोड़ासा परिचय दिया है उससे मालूम होता है कि वे आचार्य अभयनन्दिके शिष्य थे और अभयनन्दिके गुरुका नाम गुणनन्दि तथा दादा-गुरुका नाम भी गुणनन्दि[2] था ।

बभूव[3] भव्याम्बुजपद्मबन्धुः पतिर्मुनीनां गणभृत्समानः ।
सदग्रणीर्देशिगणाग्रगण्यो गुणाकरः श्रीगुणनन्दिनामा ॥ १ ॥

गुणग्रामाम्भोधेः सुकृतवसतेर्मित्रमहसा-
मसाध्यं यस्यासीन्न किमपि महीशासितुरिव ।
स तच्छिष्यो ज्येष्ठः शिशिरकरसौम्यः समभव-
त्प्रविख्यातो नाम्ना विबुधगुणनन्दीति भुवने ॥ २ ॥

---

१ जैनसिद्धान्तभास्करकी चौथी किरणमें देशीयगणको देवसंघका गण बतलाया है; परन्तु बाहुबलिचरितके निम्न श्लोकसे मालूम होता है कि वह नन्दिसंघका ही भेद या नामान्तर था:—

पूर्वं जैनमतागमाब्धिविधुवच्छ्रीनन्दिसंघेऽभव-
न्मुज्ञानर्द्धितपोधनाः कुवलयानन्दा मयूखा इव ।
तत्संघे भुवि देशदेशनिकरे श्रीसुप्रसिद्धे सति
श्रीदेशीयगणो द्वितीयविलसन्नाम्ना मिथः कथ्यते ॥ ८७ ॥

२ छपी हुई, और दो हस्तलिखित प्रतियोंमें भी गुणनन्दिके गुरुका नाम गुणनन्दि ही लिखा है । मालूम नहीं यह कहाँ तक ठीक है, कुछ पाठान्तर न हो ।

३ इन श्लोकोंका अर्थ पुस्तकके अन्तमें देखिए ।

मुनिजननुतपादः प्रास्तमिथ्याप्रवादः
सकलगुणसमृद्धस्तस्य शिष्यः प्रसिद्धः।
अभवदभयनन्दी जैनधर्माभिनन्दी
स्वमहिमजितसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धुः ॥ ३ ॥
भव्याम्भोजविबोधनोद्यतमतेर्भास्वत्समानत्विषः
शिष्यस्तस्य गुणाकरस्य सुधियः श्रीवीरनन्दीत्यभूत्।
स्वाधीनाखिलवाङ्मयस्य भुवनप्रख्यातकीर्तेः सतां
संसत्सु व्यजयन्त यस्य जयिनो वाचः कुतर्काङ्कुशाः ॥ ४ ॥

अपने विषयमें उन्होंने इससे अधिक परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं समझी। परन्तु आजकलके पाठक एक प्रसिद्ध महाकविके सम्बन्धमें इतनेसे सन्तुष्ट नहीं हो सकते। उन्हें अधिक नहीं तो कमसे कम इतना तो अवश्य मालूम हो जाना चाहिए—कि वे किस समय हुए हैं।

एकीभाव स्तोत्रके कर्ता महाकवि वादिराजसूरिने अपना पार्श्वनाथ-काव्य शक संवत् ९४७ में* बनाया है। इसके प्रारंभमें रचयिताने पूर्वके अनेक ग्रन्थकर्त्ताओंका स्तवन करते हुए लिखा है:—

चन्द्रप्रभाभिसम्बद्धा रसपुष्टा मनः प्रियम्।
कुमुद्वतीव नो धत्ते भारती वीरनन्दिनः ॥ ३० ॥

इस श्लोकमें महाकवि वीरनन्दिके चन्द्रप्रभचरितका स्पष्ट उल्लेख है। इससे मालूम होता है कि चन्द्रप्रभकाव्य पार्श्वनाथकाव्यकी रचनाके समयसे अर्थात् शक संवत् ९४७ से पहले बना है।

---

* शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने संवत्सरे क्रोधने
मासे कार्तिकनाम्नि बुद्धिमहिते शुद्धे तृतीयादिने।
सिंहे पाति जयादिके वसुमतीं जैनी कथेयं मया
निष्पत्तिं गमिता सती भवतु वः कल्याणनिष्पत्तये ॥

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने अपने गोम्मटसार ग्रन्थमें नीचे लिखी गाथायें कही हैं:—

णमिऊण अभयणंदिं सुदसागरपारगिंदणंदिगुरुं ।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥ ७८५ ॥

—कर्मकाण्ड, अ० ६ ।

णमह गुणरयणभूसण सिद्धंतामियमहद्धिभवभावं ।
वरवीरणंदिचंदं णिम्मलगुणमिंदणंदिगुरुं ॥ ८९६ ॥

—कर्मकाण्ड, अ० ८

जस्स य पायपसाए-ण-णंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥ ४३६ ॥

कर्मकाण्ड, अ० ४ ।

अर्थात्—अभयनन्दिको, शास्त्रसमुद्रके पार पहुँचे हुए इन्द्रनन्दि गुरुको और वीरनन्दि नाथको नमस्कार करके प्रकृति-प्रत्यय अध्यायको कहता हूँ ॥ ७८५ ॥ हे गुणरूप रत्नोंके भूषण चामुण्डराय ! सिद्धान्तरूप अमृतसमुद्रके बढ़ानेवाले वीरनन्दि चन्द्रमाको और निर्मल गुणोंके धारक इन्द्रनन्दि गुरुको नमस्कार करो ॥ ८९६ ॥ जिनके चरणोंके प्रसादसे वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि शिष्य अनन्त संसारसे पार हुए उन श्री अभयनन्दि गुरुको नमस्कार करता हूँ ॥ ४३६ ॥

इन गाथाओंमें इन्द्रनन्दि वीरनन्दि और अभयनन्दि इन आचार्योंका उल्लेख है और अन्तिम गाथासे मालूम होता है कि इन्द्रनन्दि और वीरनन्दि ये दोनों अभयनन्दिके शिष्य थे। इन्द्रनन्दिको नेमिचन्द्रने अपने गुरुके रूपमें स्मरण किया है और साथ ही वीरनन्दिको भी जगह जगह नमस्कार किया है। इससे भी जान पड़ता है कि वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि ये दोनों अभयनन्दि गुरुके सहाध्यायी शिष्य होंगे।

चन्द्रप्रभके कर्त्ता अपनेको भी अभयनन्दिका शिष्य बतलाते हैं, इससे जान पड़ता है कि नेमिचन्द्रने जिन वीरनन्दिका स्मरण किया है वे ही चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ता हैं।

गोम्मटसार-कर्मकाण्डमें ३९६ नम्बरकी एक गाथा इस प्रकार है:—

वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं॥

अर्थात् श्रीकनकनन्दिगुरुने इन्द्रनंदिगुरुके पास सारे सिद्धान्तको सुन-कर सत्त्वस्थानका कथन किया।

इसमें जिन कनकनन्दिका उल्लेख है, वे संभवतः वही हैं जिनका वर्णन श्रवणबेलोलके ४७ वें शिलालेखमें है। शिलालेखमें लिखा है कि गुणनन्दि आचार्यके ३०० शिष्य थे, उनमें ७२ शिष्य बहुत ही बड़े सिद्धान्तशास्त्री थे और उन सबमें देवेन्द्र सैद्धान्तिक सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। इन देवेन्द्र मुनिके शिष्य कलधौतनन्दि या कनक-नन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती थे।

चन्द्रप्रभकी प्रशस्तिके अनुसार गुणनन्दिके शिष्य अभयनन्दि और उनके वीरनन्दि हैं। जान पड़ता है उन्हीं गुणनंदिकी परम्परामें ही पूर्वोक्त कनकनन्दि हैं। अर्थात् गुणनंदिके ३०० शिष्योंमेंसे जिस तरह एक देवेन्द्र होंगे उसी प्रकार अभयनन्दि भी होंगे। देवेन्द्रके शिष्य कनक-नन्दि हुए और अभयनन्दिके वीरनन्दि हुए।

आचार्य नेमिचन्द्रकी लिखावटसे जान पड़ता है कि वीरनंदि, इंद्रनन्दि अभयनन्दि, कनकनन्दि आदि सब उनके समकालीन थे। अत एव यदि नेमिचन्द्रका समय मालूम हो जाय तो लगभग वही समय वीरनन्दिका सिद्ध हो जायगा।

गोम्मटसारकी अन्तिम गाथाओंसे मालूम होता है कि नेमिचन्द्र आचार्यने यह ग्रन्थ चामुण्डरायकी प्रेरणासे बनाया था और चामुण्ड-

रायने स्वयं इस ग्रन्थकी एक कर्णाटकी-वृत्ति बनाई थी । अतः चामुण्डरायके समयमें ही नेमिचन्द्र हुए हैं, यह निर्विवाद है ।

चामुण्डराय गंगवंशीय राजा राचमल्लके प्रधान मंत्री और सेनापति थे । राचमल्लके भाई रक्कस गंगराजने शक संवत् ९०६ से ९२१ तक राज्य किया है और शायद रक्कस गंगराजके बाद ही राचमल्लको सिंहासन मिला था । कनड़ीभाषाके प्रसिद्ध कवि रन्नने शक संवत् ९१५ में 'पुराणतिलक' नामक ग्रन्थकी रचना की है और उसने आपको रक्कस गंगराजका आश्रित बतलाया है । चामुण्डरायकी भी अपने पर विशेष कृपा रहनेका वह ज़िकर करता है । कर्णाटककविचरितके कर्त्ताने चामुण्डरायका जन्म शक संवत् ९०० के लगभग बतलाया है । इन सब बातोंसे शक-संवत् ९०० के लगभग चामुण्डरायका समय सिद्ध होता है और यही समय नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका भी समझना चाहिए* ।

ऊपर यह कहा ही जा चुका है कि शक संवत् ९४७ में वादिराजने वीरनन्दिका उल्लेख किया है । अत एव इससे पहले शक संवत् ९०० या विक्रम संवत् १०३५ के लगभग वीरनन्दिका समय समझना चाहिए । विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके प्रारंभमें वे इस धरामण्डलको सुशोभित करते थे ।

वीरनन्दि नामके अनेक विद्वान् हो गये हैं । एक वीरनन्दि 'आचारसार' नामक यत्याचारग्रन्थके प्रणेता भी हैं; बृहद्द्रव्यसंग्रहकी भूमिकामें पं० जवाहरलालजी शास्त्रीने उन्हें और चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ताको एक ही बतला दिया है; परन्तु यह भ्रम है । वे मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवके शिष्य थे

---

* बृहद्द्रव्यसंग्रहकी भूमिकामें साहित्यशास्त्री पं० जवाहरलालजीने नेमिचन्द्रका समय शक संवत ६०० सिद्ध किया है; परन्तु उसमें जो प्रमाण दिये गये हैं, वे सब ऊँटपटाँग हैं—उनमें कोई तथ्य नहीं ।

जिनका कि स्वर्गवास शक संवत् १०३७ में हुआ था। एक वीरनन्दिका ज़िकर श्रवणबेल्गुलके ४७ वें शिलालेखमें है; परन्तु वे महेन्द्रकीर्त्तिके शिष्य थे।

महाकवि वीरनन्दिका केवल यही एक चन्द्रप्रभचरित उपलब्ध है। उन्होंने इसके सिवाय और कोई ग्रन्थ रचा या नहीं, इसका पता नहीं।

इस ग्रन्थकी अन्तप्रशस्तिसे और आचार्य नेमिचन्द्रने उन्हें जिन शब्दोंमें स्मरण किया है उससे, मालूम होता है कि वे केवल कवि ही नहीं थे—अखिल वाङ्मय पर उनका अधिकार था, वे सभाओंमें बोलनेवाले अच्छे वक्ता थे और सिद्धान्तशास्त्रोंके ज्ञाता भी थे।

कविने अपने स्थानादिका उल्लेख कहीं भी नहीं किया है। तो भी जान पड़ता है कि वे कर्णाटकप्रान्तके ही रहनेवाले होंगे। क्योंकि नेमिचन्द्र, चामुण्डराय आदि सब उसी प्रान्तमें हुए हैं।

चन्दावाड़ी, बम्बई,
चैत्रकृष्ण १ सं० १९७२. } नाथूराम प्रेमी।

यः श्रीवर्मनृपो बभूव विबुधः सौधर्मकल्पे तत—
स्तस्माच्चाजितसेनचक्रभृदभूद्यश्चाच्युतेन्द्रस्ततः ।
यश्चाजायत पद्मनाभनृपतिर्यो वैजयन्तेश्वरो
यः स्यात्तीर्थकरः स सप्तमभवे चन्द्रप्रभः पातु नः ॥

श्रीवीतरागाय नमः।

श्रीमन्महाकवि श्रीवीरनन्दिविरचित

चन्द्रप्रभ-चरित।

प्रथम सर्ग।

दर्शनके लिए आये हुए देवगणके नृत्य समय, उनके चंचल नेत्रोंके प्रतिविम्ब पड़नेसे, जिनकी रत्नमयी सभा, कमलोंके उपहारको अर्थात् पुष्पाञ्जलिको लिए खड़ीसी जान पड़ी और शोभित हुई वे प्रथम 'जिन' (श्रीऋषभ) शोभा और वैभव दें।

जिनके विल्लौरके समान स्वच्छ चमकीले भामण्डलमें डूवे हुए देवगण क्षीरसागर (दूधके समुद्र) के भीतर स्थितसे जान पड़ते थे वे श्रीचन्द्रप्रभ जिनदेव (इस महाकाव्यके नायक आठवें तीर्थङ्कर) रक्षा करें।

जिनमें अनन्त-विज्ञान, अनन्त-वीर्य, अनन्त-सुख और अनन्त-दर्शन, ये चार अनन्त चतुष्टय वर्तमान हैं वे शान्तिनाथ जिन (सोलहवें तीर्थङ्कर) जन्म-मरणके दुःखको शान्त करें।

बुढ़ापेसे रहित और मोक्ष-लक्ष्मीके स्वयं-स्वीकृत पति, रोग-रहित, भयहीन; संसार-बन्धनको छुड़ानेवाले और देवता, मनुष्य तथा असुर जिनकी स्तुति करते हैं ऐसे महावीर (चौबीसवें तीर्थङ्कर) जिनदेवको मैं प्रणाम करता हूँ।

मैं जिनदेवके उन उपदेशोंके शरणागत हूँ जो भव्य जीवोंके एकमात्र बन्धु हैं। वे हितरूप हैं। उनमें किसी तरहका मतभेद या झगड़ा नहीं है। गैर लोग (अन्यमतावलम्बी) उनका खण्डन नहीं कर सकते। वे मोक्षके देनेवाले हैं। वे सबके लिए शरण (आश्रय)—रूप हैं।

गुण (डोरा और प्रसाद माधुर्य आदि उत्तमता) से युक्त, निर्मल वृत्त (गोलाई और चरित्र) वाली मुक्तावली (मोतियों और मुक्त पुरुषों) से पूर्ण, तथा अच्छे पुरुषोंने जिसे अपने कण्ठका गहना बनाया है ऐसा हार ही दुर्लभ नहीं है; बल्कि समन्तभद्रादि आचार्योंकी वाणी भी दुर्लभ है।

सज्जन पुरुष गुणोंका ग्रहण किये बिना प्रसन्न नहीं होता; वैसे ही दुर्जन पुरुष भी दोषोंको कहे बिना संतुष्ट नहीं होता। सच तो यह है कि सदाके अभ्यासके अनुसार ही गुण—ग्रहण और दोष—वर्णनमें लोगोंकी प्रवृत्ति या रुचि हुआ करती है। जैसे प्रशंसापूर्वक गुणोंका उपदेश करनेवाले सज्जनको लोग गुरु मानकर प्रणाम करते हैं, वैसे ही मैं, निन्दापूर्वक दोष दिखलानेवाले दुर्जनको भी हाथ जोड़ता हूँ।

जिसे गणधरदेव भी दुष्कर मानते हैं और साक्षात् वाणीदेवी (सरस्वती) भी अपनी शक्तिसे बाहर समझती है उसी जिन—चरित्रके वर्णनमें प्रयास करनेवाला मन्दमति मैं, अवश्य ही विद्वान् सज्जनोंकी सभामें हँसा जाऊँगा। तथापि गणधर आदि आचार्योंने जिसपर सेतु (पुल) बना दिया है—जानेका मार्ग सुगम कर दिया है उस अगम्य पुराण—सागरमें, मैं उसी तरह प्रवेश करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ जैसे झुंडके सरदार गजराजके चले हुए मार्गमें हाथीका बच्चा।

कथाका आरम्भ ।

दूसरे द्वीप धातकीखण्डमें एक पूर्वमन्दर नाम पहाड़ है । उसके ऊँचे शिखर देवतोंकी पुरीको छू रहे हैं । उसके प्रकाशकी, पके धानकी मंजरीके समान सुनहली किरणें आकाशमें बिजलीकी ऐसी छटा छिटक़ाती हैं । उसके पूर्व तरफ़ विदेह क्षेत्रमें मङ्गलावती नाम एक देश है । वह देश पृथ्वी पर स्वर्गके समान शोभायमान है । वह मङ्गलोंसे युक्त है, इस लिए उसका मङ्गलावती नाम ठीक ही है । वहाँकी ज़मीन तोतोंके अङ्गके समान कोमल हरे हरे अन्नके पौधोंके अँकुरोंसे ऐसी मालूम पड़ती है मानों हरी मणियोंसे बना हुआ फ़र्श है । उसे देखते ही मन मोहित होता है । वहाँके सरोवर बहुत ही सुन्दर हैं । उनमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल स्वच्छ पानी भरा हुआ है । उनमें खिले हुए नीले कमल उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं । जान पड़ता है कि वे सरोवर नहीं, किन्तु निराधार होनेके कारण आकाशके टुकड़े पृथ्वीपर गिर पड़े हैं । वहाँ, रातके समय चन्द्रमाको देखकर गली हुई चन्द्रकान्त मणियोंके जल प्रवाहसे भरी हुई नदियाँ गर्मीकी ऋतुमें भी अपने किनारेके वृक्षोंकी जड़ोंको काटती हुई वेगसे बहती हैं ।

‘ मेरी सौत जो धन अन्नकी सम्पत्ति है वह इन्हें भजती है ’ यह समझ मारे डाहके मानों विपत्ति वहाँके लोगोंकी तरफ़ देखती भी नहीं । शरदऋतुके बादलोंके समान श्वेतवर्ण स्थलकमल फैले हुए श्वेत छत्रसे दिखाई पड़ते हैं । मानों उन छत्र-सदृश स्थलकमलोंसे वह देश यह जता रहा है कि मैं सब देशोंका राजा हूँ । वहाँके लोगोंकी समृद्धि या बढ़तीका कारण जो अत्यन्त उज्ज्वल सोने आदिकी खानें हैं उनसे वहाँकी पृथ्वीका वसुमती नाम सार्थक देख पड़ता है । वहाँके गाँवोंमें बाहर नवीन अन्नकी ढेरियाँ इतनी ऊँची लगी हुई हैं कि मानों

बादलोंको छू–लेंगी। उन ढेरियोंको देखनेसे मालूम पड़ता है मानों कौतूहलके कारण उस देशको देखनेके लिए कुलाचल आये हैं।

वहाँके गाँव और शहरोंमें बड़े बड़े महल बने हुए हैं और शहरोंमें जितनी और जैसी सम्पदा है उतनी और वैसी सम्पदा अन्यत्र कहीं नहीं है। गाँव और शहर दोनोंमें लगातार मनोहर बाग़ लगे हुए हैं। मानों एक दूसरेकी सम्पदा देखनेके लिए ही वे गाँव और शहर बराबर पासहीपास बसे हुए हैं। उस देशमें एक रत्नसञ्चय नामका पुर है। जिसके चौकमें सेठों और महाजनोंने दूकानोंपर रत्नोंके ढेर लगा रक्खे हैं। वहाँ चौककी सड़कपर बने हुए बड़े बड़े भवन बरामदों और बरामदोंके आगे द्वारपर बँधे हुए हाथियोंसे अपना वैभव जता रहे हैं। जहाँकी चौड़ी खाईके जलमें मन्दवायुसे धीरे धीरे जाते हुए बादलोंकी परछाहीं पड़नेपर मालूम पड़ता है कि उसके भीतर जल-गज (पानीके हाथी) तैर रहे हैं। रातके समय चारों ओर खिले हुए नक्षत्र, जान पड़ता है कि उस पुरकी आकाशसे बातें करती हुई चहारदीवारीकी चोटीपर रक्खे हुए रत्न-दीपक जल रहे हैं। आकाशमें प्रकाशमान पूर्ण चन्द्रमाके मण्डलमें मलिन (काला) चिह्न देखकर जान पड़ता है कि चन्द्रमाके चन्द्रमण्डलका उतना हिस्सा वहाँके ऊँचे महलोंकी चोटियोंकी रगड़से घिस गया है। महलोंके फाटकोंपर बनी हुई अंटियाँ इतनी ऊँची हैं कि कभी कभी बादल उनके नीचे आजाते हैं। उससमय अंटियोंपर टहलते हुए आदमियोंको बादल देखकर धोखा होजाता है कि वे हाथी हैं। इसका कारण यह है कि बादलोंका निर्मल जल मदजलकी तरह उनसे गिरता है; और बिजलीकी लकीर गजके गलेमें पड़ी हुई सोनेकी जंजीरसी जान पड़ती है। बादलोंका गरजना हाथीके शब्दसे बिल्कुल मिल जाता है। जवानीके पानीसे चमकीले, वहाँकी पद्मिनी स्त्रियोंके मुख-कमलोंसे निकली हुई मनोहर सुगन्धको पाकर, उन्हें चन्द्रमा समझकर, राहुके समान भौंरोंके झुंड

झपटते हुए उधर ही जाते देख पड़ते हैं। जहाँ शीशमहलोंकी दीवारोंमें बने हुए जीवोंके चित्रोंको सजीव (जीताजागता मनुष्य) समझकर नई ब्याही हुई वहू चकित दृष्टिसे वारवार संकोचसे उधर देखती हुई अपने पतिसे अच्छी तरह आलिङ्गन नहीं कर सकती। वहाँके भवनोंमें ऊपरकी छतें चन्द्र-कान्त शिलाकी वनी हुई हैं। यही कारण है कि चन्द्रमाका उदय होता है तव उन शिलाओंके पसीजनेसे नीचे बूँदे गिरने लगती हैं। पलाऊ मोर समझते हैं कि वादल घिरआये और इसी खुशीसे वे वादल न होनेपर भी नाचने लगते हैं। गरमीकी रातोंमें महलोंपर वैठी हुई सुन्दरियोंके चम-कीले गोल गाल और चन्द्रमण्डल एकसे जान पड़ते हैं। केवल कलंकके चिह्नसे ही चन्द्रमा पहचान लिया जाता है। वहाँके भवनोंमें ऊपर ध्वजायें फहरा रही हैं। उन ध्वजाओंके कपड़े शरदऋतुके वादलोंके समान उज्ज्वल हैं। ध्वजाओंने सूर्यकी धूपको रोक रक्खा है, धूप मका-नोंके भीतर नहीं आने पाती। उन ध्वजाओंको देखकर जान पड़ता है कि ये ध्वजायें नहीं, किन्तु मकानोंकी चोटियोंसे फटे हुए सूर्यके कपड़े हैं। उस पुरमें वड़े वड़े जिन-मन्दिर पहाड़ोंके समान जान पड़ते हैं। क्योंकि पहाडोंपर विशाल शाल (साँखू) के वृक्ष और उपवन (छोटे जंगल) होते हैं और मन्दिरोंमें भी विशाल शाल (चहारदीवारी) और उपवन (वाग) पास ही शोभायमान हैं। पहाड़ोंकी चोटियोंपर मेघ-खण्ड वैठ वैठ जाते हैं और यही हाल ऊँचे मन्दिरोंकी चोटियोंका भी है। पहाड़ोंपर जिन्दा सिंह रहते हैं और मन्दिरोंमें भी सिंह वने हुए हैं। जिस पुरमें 'मद'का सम्बन्ध केवल हाथियोंसे ही है, अन्यत्र कहीं कोई मद (नशे) का नाम भी नहीं जानता। 'उपसर्ग' (प्र, परा, उप आदि व्याकरणके उपसर्ग) केवल धातुओंमें ही होते हैं, अन्यत्र कहीं उपसर्ग (रोग, वाधा) का नाम भी नहीं सुनाई पड़ता। 'निपात' की क्रिया केवल शब्दोंमें ही होती है, अन्यत्र कहीं निपात

(अधःपतन, नाश) नहीं देख पड़ता। द्विजिह्व (दो ज़बानवाले) केवल साँप ही देख पड़ते हैं, और कोई द्विजिह्व (चुग़लखोर) नहीं देखा जाता। योगी लोग ही चिन्ता (विचार, ध्यान) करते देख पड़ते हैं, और कोई चिन्ता (फ़िक्र) करते नहीं देखा जाता। दरिद्रता (क्षीणता, पतलापन) ने केवल कामिनियोंकी कमरमें आश्रय पाया है, अन्यत्र कहीं दरिद्रता (ग़रीबी) का नाम भी नहीं है। औठ ही 'अधर' कहलाते हैं, और कहीं कोई अधर (हीन जातिका) नहीं देख पड़ता। वहाँके भवनोंकी दीवारें रत्न-शिलाओंकी बनी हुई हैं। सूर्यकी कान्ति पड़नेसे वे और चमकने लगती हैं। उस समय जान-पड़ता है कि वे भवन सूर्य-ताप (धूप) के भयसे आप अपने ही तेजमें लीन हो रहे हैं-छिप रहे हैं। उस पुरमें ऐसा कोई महल्ला नहीं, जहाँ घने आदमियोंकी वस्ती न हो और ऐसा कोई आदमी नहीं, जो धनी न हो। सब धनी अपने धनका भोग करनेवाले थे, कोई सूम न था। वह धन-भोगी भी सालदो सालके लिए नहीं, किन्तु सदा होता था। जहाँकी सुन्दरी स्त्रियोंके नेत्रकमलोंकी शोभाके आगे अपनी शोभा फीकी पड़ जानेसे सन्तापको प्राप्तसे नीले कमल, हवाकी हिलकोरोंसे हिलते हुए, ठंडे तालावोंके पानीमें, जीकी जलन मिटानेके लिए लोटा करते हैं। उस पुरके निवासी सब सज्जन हैं। उनसे पुरकी परम शोभा है। वे सज्जन महागुणों (सम्यक्त्व आदि) से युक्त होनेपर भी अगुण हैं। अगुण शब्दके दो अर्थ होते हैं। एक तो, 'अ' नाम विष्णुका है, इससे विष्णुके ऐसे गुणवाले हुआ; और दूसरा यह कि क्रोध, लोभ, मोह आदि शरीरके गुणोंसे रहित हैं। उनमें मद (अभिमान-घमंड)का लेश भी नहीं है, किन्तु वे प्रमद (प्रमोद, आनन्द)से परिपूर्ण हैं। वे निर्भयं (सातों भयोंसे रहित) होनेपर भी परलोकसे डरते हैं। परलोक शब्दका एक दूसरा भी अर्थ होता है। पर अर्थात् शत्रुपक्षके लोगोंसे डरते हैं अर्थात् वे किसीसे शत्रुता नहीं रखना चाहते।

वहाँके ऊँचे महलोंकी छतोंपर, छेदों और झरोखोंमें रहनेवाले पक्षियोंका मान मिटानेवाला मधुर शव्द सुनते ही मानिनी स्त्रियोंका मान नहीं रहने पाता। इसी कारण वहाँके निवासी पुरुष अपनी पत्नियोंको मनानेका रस (स्वाद) नहीं जानते। यही (अरसिकताका) दोष एक उनपर लगाया जा सकता है। और कोई दोष उनमें नहीं देख पड़ता।

उस पुरका शासन करनेवाले महाराजमें न्याय प्रताप आदि सभी गुण थे। यद्यपि उनके तेजकी उपमा किसीसे नहीं दी जा सकती तथापि वे जगत्में 'कनकप्रभ' नामसे प्रसिद्ध थे। चन्द्रमाकी कलाओंके समान उज्ज्वल उनके यशने आगे आगे वढ़कर सारे पृथ्वीमण्डलको व्याप्त कर लिया और उससे उनके शत्रुओंके दलको वड़ा ही सन्ताप हुआ। महापराक्रमी राजा कनकप्रभका तेज या पराक्रम पृथ्वी पर जैसे समाता ही नहीं; वह पृथ्वीभरमें भर गया है और अव पृथ्वीसे निकलकर अन्य लोकोंमें पहुँच रहा है। भूभृत जो पहाड़ और राजा लोग हैं उनके उच्च (ऊँचे और वड़े) कटकों (शिखरों और सेनादलों) में चिरकाल तक फिरते रहनेसे थकी हुई जयलक्ष्मी उन महाराज कनकप्रभकी भुजाओंको पाकर उनमें स्थिर होकर रहने लगी। मानों फिरनेकी थकनके भयसे वह उन भुजाओंको न छोड़ सकी। महाराज कनकप्रभका माहात्म्य और गुण अचिन्त्य थे। वे अपने अनुगत जनोंके एकमात्र आश्रय थे। उन्होंने अपने विक्रम (पराक्रम) से सव लोकोंको व्याप्त कर लिया था। वे श्री (सम्पत्ति) के स्वामी और पुरुषोत्तम (उत्तम पुरुष) थे। इस प्रकार सव वातोंमें वे विष्णुके सदृश थे। विष्णु भी अचिन्त्य महिमा और गुणवाले हैं। वे भी अपने जनों (भक्तों) के एकमात्र आश्रय हैं। उन्होंने भी अपने विक्रम (चरण विन्यास) से वामनावतारमें सव लोकोंको नाप लिया था। वे श्री (लक्ष्मी) के पति और पुरुषोत्तम भी कहलाते हैं। इस प्रकार सर्वथा

समान होनेपर भी विष्णुमें और कनकप्रभमें एक बड़ा अन्तर था। विष्णुने कृष्णावतारमें वृष (बैलका रूप रक्खे हुए अरिष्टासुर) को मार डाला, मगर कनकप्रभ वृष (धर्म) के नाशकी चेष्टा नहीं करते थे। राजा कनकप्रभकी सब सम्पदा परोपकारके लिए ही थी। उनमें देनेका गुण स्वाभाविक था। कनकप्रभके स्वाभाविक दान-गुणसे परास्त होकर ही मानों सोचके मारे कल्पवृक्ष जड़ होगये। कनकप्रभ शिल्प आदि कलाओंसे पूर्ण थे, चन्द्रमा भी कलाओंसे पूर्ण होता है। राजा अपने जनों (प्रजा) का अभिनन्दन करते हैं, चन्द्रमा भी सब जनोंको अभिनन्दित या आनन्दित करता है। राजाकी श्री (सम्पत्ति) त्रिलोकीके ऊपर-अर्थात् त्रिलोकीकी सम्पत्तिसे बढ़कर थी, चन्द्रमाकी भी शोभा त्रिलोकीके ऊपर रहती है। यह सब होनेपर भी कलंकी चन्द्रमा प्रदोष (सायंकाल और भारी दोष) से संसर्ग रखनेके कारण सर्वथा उज्ज्वल जो महाराज कनकप्रभ हैं उन्हें नहीं जीत सका-उनसे उसने नीचा ही देखा। सम्पूर्ण जगतके तिलक-स्वरूप राजा कनकप्रभने कुलको अपने विशुद्ध चरित्रसे, दिशाओंको अपने शरदऋतुके बादलोंके समान उज्ज्वल यशसे, शरीरको गुणों-शरीर, मन और वाणीकी शक्तियोंसे और शास्त्रोंको सुनकर बुद्धिको विभूषित बनाया। अत्यन्त दान (१) देनेपर भी उनमें मद (२) का लेश न था। उन्होंने काम, क्रोध, हर्ष, मान, लोभ और मद-इन भीतरी छह शत्रुओंको अपने वशमें कर लिया था। अहीन (३) अर्थात् उत्तम लोगोंका साथ करके भी द्विजिह्व (४) लोगोंकी संगतिका दोष उनमें नहीं था। राजाकी कीर्ति सब लोकोंमें प्रसिद्ध थी।

---

(१) दान, हाथीके मदजलको भी कहते हैं। (२) घमंड और मदजल। दो दो अर्थवाले इन दोनों शब्दोंका एक पक्षमें एक ही अर्थ होनेसे अच्छा चमत्कार आगया है (३) अहीन सर्पको भी कहते हैं। (४) द्विजिह्व साँप और चुगलखोरको भी कहते हैं।

उन्होंने शत्रुओंके लिए अत्यन्त दुस्सह अपने पराक्रमसे सब अभिमानी सामन्त राजाओंको परास्त करके पृथ्वीका ‘गो’* नाम होनेपर भी उसे करिणी ‡ बना दिया। अत्यन्त वृद्ध (बूढ़े और बढ़े हुए), कठोर बरतावबाले, नीति–युक्त जिन कनकप्रभके कञ्चुकी (ख्वाजासरा या अन्तःपुर-रक्षक) के तुल्य तेजने चंचला लक्ष्मीको भी कुलबधूके समान सदाके लिए वशमें कर दिया। वह राजा शंकरके समान धराश्रय (धरा अर्थात् पृथ्वीके आश्रय स्वरूप) थे, शङ्कर भी धराश्रय (धर अर्थात् पर्वतके आश्रित, अर्थात् पहाड़पर रहनेवाले) हैं। राजा सदा भूति (विभूति=ऐश्वर्य) से युक्त थे, शङ्कर भी शरीरमें भूति (विभूति= भस्म) लगाये रहते हैं। राजा शशाङ्क जो चन्द्रमा उसके समान मनोहर थे, शङ्कर भी चन्द्रमा धारण करनेसे मनोहर अर्थात् चन्द्रशेखर हैं। राजाके घर अनेक नागनायक (गजराज) थे, शङ्कर भी शरीरमें नागनायकों (शेष, वासुकी आदि नागों) को धारण किये हुए हैं। राजाने भी सब गोपतियों (पृथ्वीपतियों) को नीचा दिखा दिया था, शङ्कर भी गोपति (बैल=नन्दी) को नीचे किये हैं अर्थात् बैल उनका बाहन है। राजा ईश्वर (समर्थ) थे, शङ्कर भी ईश्वर कहलाते हैं इतना होने पर भी शिवके समान उनमें विषम-दृष्टि (पक्षपात, शिवके पक्षमें तीन नेत्र होनेकी विषमता) न थी। जिन राजाने अपने निर्मल और प्रसिद्ध गंभीरता-गुणसे समुद्रका गंभीरताका यशरूपी धन लूट लिया था। शायद इसीसे सागर अबतक लहररूपी भुजाएँ उठाकर गरजता नहीं, बल्कि चिल्ला रहा है।

राजा कनकप्रभ सम्पूर्ण राजनीतिको जानते थे। उन्होंने अपने सब

---

*गो, गऊको और पृथ्वीको भी कहते हैं। ‡ करिणी हथनीको भी कहते हैं। करिणीका एक अर्थ ‘कर’ (मालगुज़ारी) वाली भी होता है। एक पक्षमें चमत्कार यह है कि गऊको हथनी बना दिया।

शत्रुओंको निर्मूल कर दिया था । वे सदा अपनी विशुद्ध बुद्धिसे विचार कर हरएक काम करते थे । वे पशुओंकी तरह क्रोध आदिके वशीभूत होकर कोई काम न कर डालते थे । उन्होंने अपनी उन्नतिशील प्रजाको नववधूकी तरह सब प्रकारसे सन्तुष्ट किया । जिसतरह पति अपनी नववधूको रति या सुरत क्रीड़ासे प्रसन्न करता है उसीतरह उन्होंने अपनी प्रजाको रति अर्थात् प्रीतिसे प्रसन्न किया, और जिसतरह पति तरह तरहके उज्ज्वल वर्णों या रंगोंकी चित्ररचनासे वधूके शरीरको अलंकृत करता है उसीतरह उन्होंने प्रजाको ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंकी उज्ज्वल व्यवस्थासे शोभित किया । इस प्रेमपूर्ण व्यवहारसे संतुष्ट हो प्रजा उनके गुणोंके वश होगई । असंख्य, कीर्तिशाली और शरद्‌चन्द्रकी किरणोंके समान निर्मल सारे गुण मानों दोषोंकी सेना रोकनेके इरादेसे कनकप्रभ राजामें आकर इकट्ठे हुए थे (एक जगह जमा होकर मिलकर रहनेवाले सिपाही सहजमें शत्रुकी सेना द्वारा परास्त नहीं होते) ।

अपने पराक्रमसे सब राजाओंको परास्त करनेवाले और जगत्की श्रेष्ठ लक्ष्मीको अपने हृदयमें स्थान देनेवाले कनकप्रभकी पटरानीका नाम सुवर्णमाला था । उस रानीका स्वभाव या चरित्र अनिन्दित अर्थात् शुद्ध था । उसकी चन्द्रकलासे भी उज्ज्वल और फैली हुई शरीरकी कान्तिके पानीमें धुला हुआसा उसका स्वभाव या चारित्र कभी मलिन नहीं हुआ । रानीके उज्ज्वल कपोलमण्डलवाले मुखमण्डलको चन्द्रमा समझकर उसके शरीरमें हँसी-रूपी फेनसे युक्त कान्तिका सागरसा उमड़ चला था । (चन्द्रमाके पूर्ण मंडलको देखकर सागरका उमड़ना एक प्रसिद्ध बात है ।) वे राजा नारायणके समान पृथ्वीका उद्धार करनेवाले थे, नारायणने वाराह अवतार लेकर पृथ्वीका उद्धार किया है । राजा बलसे युक्त थे, नारायणने भी कृष्णावतारमें बलरामके साथ अवतार लिया था । राजाका चित्त सत्यानुरक्त (सत्यसे अनुराग

रखता) था, कृष्ण भी सत्यानुरक्त (सत्या-सत्यभामासे अनुराग रखते) थे। राजा (उत्तम पुरुष) थे और कृष्ण भी पुरुषोत्तम (नारायण) थे। उन राजाके मन्दिरमें मृगनयनी सुवर्णमाला साक्षात् लक्ष्मीका रूप थी। राजा और रानीमें परस्पर बड़ा स्नेह था। कुछ दिनोंमें बड़े तेजसे परि-पूर्ण एक बालक उनके पैदा हुआ। वह बालक नरकका वैरी अर्थात् नरककी गतिको अपने पुण्य कार्य्योंसे मिटानेवाला हुआ। कृष्णने भी नरकासुरको मारा था। इस लिए उस लड़केका पद्मनाभ यह नाम सार्थक था। (पद्मनाभ विष्णुका भी नाम है) । कलाओं (बालकके पक्षमें विद्याकी ६४ कला और चन्द्रपक्षमें चन्द्रमाकी कला) से युक्त चन्द्रमाके समान वह बालक अपने तीव्र तेजसे सूर्यके समान था। वह सब पर समान रूपसे कृपा रखता था। सब विद्यायें पढ़नेसे उस बालक-की बुद्धि बोधको पा चुकी थी। वह कृतज्ञ बालक बचपनमें ही जिनपूजा प्रचार आदि उत्तम कर्म, जिनको और बालक समझते भी नहीं, करनेके कारण बाल पकनेके पहले ही स्थविर (बूढ़ा) हो गया। लड़कपनमें भी उसके कार्य अच्छे बुरेके विवेकसे शून्य नहीं होते थे। उससे मद (अहंकार) गलित हो गया था अर्थात् वह मदसे शून्य था, हाथीके भी मद गलित होता है अर्थात् बहा करता है। बालक उन्नत वंशका था, हाथीका भी वंश (पीठकी हड्डी) ऊँचा होता है। वह विनीत, उन्नति-शाली बालक बड़ी शक्तिसे समर्थ था। उस गज-राज सदृश बालकके लिए अंकुश उसके माता-पिता और गुरुजन थे-अर्थात् उन्हींकी शिक्षाके अनुसार वह चलता था। विकारको (अर्थात् रूपान्तर और दूसरे पक्षमें द्वेषभाव) धारण करनेवाली रूप और जवा-नीकी सम्पदाके साथ विग्रह (शरीर और दूसरे पक्षमें युद्ध) रखने पर भी उस, मनस्वी और आन्तरिक शत्रु जो काम क्रोध आदि हैं उन पर जय प्राप्त कर चुकनेवाले, बालकके मनको प्रबल स्वाभाविक व्यसन

(शौक़ या आदतें) नहीं हर सके। महाराज कनकप्रभके और भी बहुत लड़के थे। लेकिन उनकी शोभा उसी जयशील बालकसे हुई। सो ठीक ही है। अनेक पक्षियोंके रहते भी राजहंसके बिना सरोवरकी शोभा नहीं होती।

महाराज कनकप्रभ, एक दिन बड़े महलपर बैठे हुए अपनी राजलक्ष्मीसे भरेपुरे नगरके वैभवको प्रसन्नताके साथ देख रहे थे। एकाएक उनकी दृष्टि पासहीके एक तालावपर जो पड़ी तो उन्होंने देखा—उसमें जल पीकर बहुतसी गऊ और बैल बाहर निकल रहे हैं। बुद्धिमान् राजाने देखा कि उनमेंसे एक बूढ़ा बैल घनी दलदलमें फँसा हुआ उससे बाहर निकलनेमें असमर्थ हो रहा था—उसके प्राणोंपर आवनी थी। यह देखकर राजाको उससमय संसारसे वैराग्य होगया। वे अपने मनमें सोचने लगे कि संसारमें उत्पन्न प्राणियोंका जीवन क्षणभरमें नष्ट होजानेवाला है—किन्तु इसमें कोई विस्मयकी बात नहीं है। अद्भुत तो यही है कि जो लोग संसारकी इस असारताको जानते हैं—पण्डित हैं वे भी इसकी ममतामें मोहित हो रहते हैं। जैसे सपनेमें देखी हुई वस्तु आँख खुलते ही नहीं रहती वैसे ही ये इन्द्रियोंके विषय (रूप, रस, गन्ध आदि) देखते ही देखते गायब होजानेवाले—धोखा देनेवाले हैं। तथापि ये जड़ बुद्धिवाले संसारके लोग उन्हींको चाहते हैं! अहो, बड़े कष्टकी बात है! इनकी इस मूर्खता या आत्मतत्त्व न जाननेको धिक्कार है। ये प्राणी देखते हैं कि हरएकके जीवनके साथ मरण और जवानीके साथ बुढ़ापा लगा हुआ है, तथापि वे नासमझ अपने हितको नहीं देखते! जो बीत गया वह तो बीत ही गया। और भविष्यत्के सुखका ठीक ही क्या! कैसे खेदकी बात है कि यह जीव क्षणभरके वर्तमान सुखके लिए मोहित होकर वृथा परिश्रम करता है—कष्ट उठाता है। जो शीघ्र ही सुख पानेकी इच्छासे अन्तमें हितकारी मार्गमें जानेका यत्न नहीं करता वह कल्याण (मोक्ष)

से इसतरह दूर हो जाता है जैसे कुपथ्य करनेवाला ज्वरका रोगी आरोग्यसे। अग्नि ईंधनके ढेर जलाकर और सागर सैकड़ों नदियोंका जल पाकर चाहे तृप्त हो जाय, किन्तु पुरुष काम-सुखके भोगसे तृप्त नहीं होते। अहो, संसारके 'कर्म' बड़े ही प्रबल हैं। शरीरसे बढ़कर तो अपना और कोई नहीं हैं, किन्तु वह भी आयु बीत जाने पर प्राणीको छोड़ देता है। तब बाहरी जो धन, मित्र, बान्धव आदि हैं उनके छूट जानमें विस्मय ही क्या है। जैसे इष्ट वस्तु (स्त्री-पुत्र आदि)-के पानेमें सुख होता है वैसे ही उसके वियोगमे दुःख भी होता है। इसी कारण 'संग' के सुखमें अत्यन्त निस्पृह बुद्धिमान् लोग मोक्ष प्राप्त करनेका यत्न करनेमें तत्पर होते हैं। इस संसारमें तीन प्रकारके अज्ञानका अन्धकार छाया हुआ है। एक प्रकारके अज्ञानी मूढ़ कहलाते हैं, वे अपने हित मोक्षके कारणहीको नहीं जानते। दूसरे प्रकारके अज्ञानी संशयी होते हैं, वे शास्त्रमें कहे गये हित (मोक्षके कारण) में सन्देह करते हैं। तीसरे प्रकारके अज्ञानी विपरीत-मति होते हैं, वे उलटा समझते हैं। शरीरधारियोंको जिनदेवके वाक्योंके सिवा रोगीको पथ्य औषधके समान अन्तमें सुखदायक और कुछ नहीं है। किन्तु जो लोग आत्मज्ञानी नहीं हैं उन्हें वे वचन नहीं रुचते। मेरे समान विधिपूर्वक शास्त्र सुनकर और उत्तम साधुओंका संग करके इस संसारकी असारताको जानकर भी और कौन होगा जो सावधान न होगा। अन्तको-वियोगके समय कष्ट देनेवाले इन्द्रियोंके सुखको मूर्ख लोग ही चाहते हैं, बुद्धिमान् पुरुष नहीं। कौन समझदार आदमी शहद-भरी तरवारकी धारको चाटना चाहेगा? जो मनुष्य, विरक्त होकर भी दुःख ही जिसका एकमात्र फल है ऐसे प्रेममय अंकुरको नष्ट कर-शरीर, परिग्रह, स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धवोंका राग छोड़कर कल्याणके लिए प्रवृत्त नहीं होता, हाय! वह ठगा गया।

उसी समय राजा कनकप्रभ इस प्रकार विषय-भोगसे विरक्त हो गये, मानों मुक्तिकी दूतीने छिपे छिपे कानके पास आकर उनको सावधान कर दिया। उन्होंने उसी समय मुनियों-यतिके मार्गमें मन लगा दिया। सच है, बुद्धिमान् लोग 'समय' पाकर उसे निष्फल नहीं जाने देते। दिनदिन बढ़नेवाली शोभा और ऐश्वर्यसे युक्त अपने पुत्र पद्मनाभसे दूसरे दिन पूछ कर और अपने हाथोंसे आँसू-भरे उनके नेत्र पोंछकर तथा अपने गुरु अनिन्दित मुनीन्द्र श्रीधरको प्रणाम करके बहुतसे राजाओंके साथ महाराज कनकप्रभने तप करना आरम्भ कर दिया। पिताके वन चले जानेपर पद्मनाभ राजगद्दीपर बैठे परन्तु पिताके वियोग-दुःखसे वे अत्यन्त व्यथित हुए। सच है, बन्धु-बान्धवोंसे रहित लक्ष्मी आनन्ददायक नहीं होती, अर्थात् अच्छी नहीं लगती। बड़े बुद्धिमान् बूढ़े मन्त्रियोंके बारम्बार समझानेपर, कुछ दिनमें पिताके वियोगका शोक कम पड़जानेपर, बुद्धिमान् पद्मनाभने स्वामीके वियोगसे चित्त और आँसुओंसे नेत्र जिसके व्याकुल हो रहे हैं ऐसी दोनों प्रकारकी प्रकृति (प्रजा और परिवार) को आश्वासित किया-धीरज दिया। राजा पद्मनाभके विशाल मस्तकके आगे अष्टमीका वक्र चन्द्रमा तिरस्कारको प्राप्त होगया। यह देखकर राज्यासनपर बैठे हुए पद्मनाभके आगे सिर झुकाकर अन्य राजगणने कुटिलता त्याग दी। सोमप्रभा देवी नामकी रानीके गर्भसे उत्पन्न अपने उदयशाली सुवर्णनाभ नामके पुत्रको युवराज बनाकर राजा पद्मनाभ अनेक प्रकारके सुखभोग करते हुए प्रजा-पालन करने लगे।

इति प्रथमः सर्गः।

द्वितीय सर्ग ।
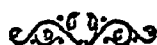
एक दिन महाराज पद्मनाभ सभामें बैठे थे। इतनेमें द्वारपालने आकर कहा–महाराज, माली आया है मालीने प्रणाम करके कहा–महाराज, जो कि देवतोंके रहने योग्य स्थान हैं और जहाँ सुगन्ध-भरी हवा चला करती है ऐसे सचमुच मनको हरलेनेवाले मनोहर–बागमें एक यतीश्वर पधारे हैं। जिस प्रकार सूर्यकी किरणें संसार भरमें व्याप्त और कमलोंको प्रफुल्लित कर देनेवाली हैं उसी प्रकार उनका श्रीधर यह नाम संसारमें प्रसिद्ध और श्रेष्ठ मुमुक्षु लोगोंको सन्तोष देनेवाला है। उनमें तपस्याका तीव्र तेज और उनका शान्त स्वरूप देखनेसे जान पड़ता है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनोंको मिला कर विधाताने उनकी सृष्टि की है। धनुषधारीका चित्त मोक्ष (वाण छोड़ने) और सन्धान (वाण चढ़ाने) में लगा होता है, वे भी अपने चित्तको मोक्ष (निर्वाण) के सन्धान (सम्बन्ध) मे लगाये हुए हैं। धनुपधारी गुण (धनुषकी डोरी) और मार्गण (वाण) धारण करता है, वे भी शुभ गुणस्थान और मार्गणाओंके परिशीलनमें तत्पर हैं। इस प्रकार वीर धनुष–धारीकी तरह उन्होंने सब जीवोंको अभय दे रक्खा है। उनके वाक्योंमें तीनों काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) के अनन्त परिणामोंसे युक्त सारा जगत् आईनेमें परछाहीं या प्रतिबिम्बकी तरह स्पष्ट दिखाई देता है। उन मुनिवरकी विस्मित कर देनेवाली बातें विद्वानोंके कानोंमें कुण्डलकी तरह रहती हैं। कुण्डल भी सुवर्णके बने होते हैं, उनकी बातें भी सु–वर्ण अर्थात् सुन्दर अक्षरोंसे बनी हुई हैं। कुण्डलोंमें मुक्ताओं (मोतियों) की अवली जड़ी होती है, उनकी (बातोंमें) भी मुक्तों (मुक्त पुरुषों)

की चर्चा रहती है। उन मुनिवरके गुण निश्चल (कभी न जानेवाले) हैं, तो भी सारे लोकोंमें जाकर व्याप्त (प्रसिद्ध) हो रहे हैं। वे गुण असंख्य होनेपर भी गिने जाने योग्य (अर्थात् प्रशंसनीय) हैं। (मूलमें गणनीयता शब्द है। उसके दो अर्थ होते हैं। एक तो गिनने योग्य और दूसरा जो जनसमूहों कर धारण किये जायँ अर्थात् जनसमूहको अपना अनुगामी बनानेवाले।) उनके चरणोंकी रज अपने केशोंमें लगाकर—अर्थात् शिरपर धारण करके मनुष्य, देवता और दानव सब सुगंधित चूर्ण लगानेकी लालसा नहीं रखते। कोई भास्वान् (अर्थात् सूर्य) के पादों (अर्थात् किरणों) का सदा सेवन नहीं कर सकता, क्योंकि वे असह्य होते हैं; परन्तु मुनिके भास्वान् (तेजसे पूर्ण) होनेपर भी लोग उनके पादों (चरणों) की सेवा करते हैं। फिर एक विशेषता उनमें यह भी है कि सूर्यमें ताप है, किन्तु वे सब प्रकारके ताप अथवा सन्तापसे बिल्कुल रहित हैं। वे चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हैं। चन्द्रमा कुमुद (अर्थात् कोकाबेली) को विकसित करता है, वे भी सम्पूर्ण कु-मुद (पृथ्वीमंडलके आनन्द) को विकसित करते हैं। महाराज, उन महामुनिके प्रभावसे बागमें जो वैभव हुआ है, जो शोभा या चमत्कार देख पड़ता है उसे मैं कहना चाहता हूँ—मगर मेरी वाणीमें इतनी शक्ति नहीं है। अर्थात् वह अनिर्वचनीय है। सुनिए, उन मुनिवरके अलौकिक तेजसे विस्मितसे हुए आमके पड़ोंमें बिना वसन्तके ही मंजरी निकल आई है—मानों विस्मयसे उनके रोमाञ्च हो आया है। उन मुनिके संगसे मानों अशोकके पेड़ शान्त चित्त होगये हैं और इसीसे वे स्त्रियोंके चरण प्रहारकी कामना न कर आपहीसे खिल गये हैं। (प्रसिद्ध है कि अशोकका पेड़ स्त्रीके चरण लगा देनेसे फूलता है)। मौलसिरीके वृक्षोंने भी जैसे उनके निकट अणुव्रत ले लिये हैं और इसीसे कामिनियोंके किये मदिराके कुल्लोंकी परवा न करके प्रफुल्लित हो उठे हैं। (मौलसिरीके

लिए भी प्रसिद्ध है कि स्त्री यदि उसके ऊपर मदिरा मुखमें लेकर उसका कुल्ला करे तो वह फूलने लगता है ।) पृथ्वीमण्डलके तिलक-रूप उन श्रेष्ठ मुनिको देखकर प्रसन्नताके मारे तिलकका वृक्ष भी फूल उठा; अपने पक्षको देखनेसे किसे खुशी नहीं होती? उनके मुखसे धर्मकथा सुनकर ही जैसे चम्पेके वृक्षोंको बोध हो आया। (यहाँ बोध शब्दके दो अर्थ हैं–एक 'खिल उठना' और दूसरा 'ज्ञान') और इसीसे मानों मलिन (काले और दूसरे पक्षमें पापी) भौंरे उसके पास फटकने भी नहीं पाते। (चम्पेके पेड़पर भौंरा नहीं जाता) राजन्! उस बागमें एक ओर जैसे ढाकके पेड़ अपने रंगीन फूलोंसे शोभा पाते हैं वैसे ही दूसरी ओर जामुनके पेड़ हरे हरे तोतोंकी शोभासे मनको हर रहे हैं। वनलक्ष्मी मानों उन मुनिको देखकर जयजयका शब्द कर रही है। पक्षियोंकी बोलियाँ ही मानों उस जयजयकारका शब्द है और कुन्द-कुसुमकी कलियाँ ही उसके दाँत दिखाई दे रहे हैं। कुटजके वृक्ष खिल नहीं रहे हैं मानों वे सन्तोषसे हँस रहे हैं। कुटज-कुसुमोंकी महकसे मस्त हुए मोरोंके दल वर्षाकी अवाई जानकर नाचने लगते हैं। बरसातमें ही कुटज फूलता है। बागमें लगे हुए बाण-वृक्षों (सेंठों) की कतार देखनेसे जान पड़ता है कि उन मुनिके भयसे भागे हुए कामदेवके हाथसे बहुतसे बाण पृथ्वीपर गिर गये हैं। मल्लिकाने सोचा कि शुचि (अषाढ़ मास) के संगसे मेरा विकास होता है; भला इन मुनिसे बढ़कर कौन और शुचि-पवित्र होगा! यही सोचकर मल्लिका भी खिल उठी है। महाराज, कदम्बके पेड़ोंने सहसा खिले हुए फूलोंको धारण कर मुझे अपने समान बना लिया–अर्थात् मेरे भी खुशीके मारे रोमांच हो आया। (रोमाञ्चकी कदम्बके फूलोंसे उपमा दी जाती है।) महाराज, जिन पशुओंमें परस्पर पैदायशी शत्रुता है वे भी उन मुनिके प्रभावसे स्वाभाविक विरोध छोड़कर वहाँ बन्धुओं—मित्रोंकी तरह आपसमें हिल मिल कर रहते हैं।

इस प्रकार बागके मालीसे मुनिवरके आनेका वृत्तान्त सुनकर महाराज पद्मनाभ उमड़े हुए सागरकी तरह मारे प्रसन्नताके अपने अंगमें फूले नहीं समाते थे। राजाने उसीक्षण उस मालीको सत्कार-सहित अपने बहुमूल्य आभूषण तथा और भी बहुतसे धन-रत्न और पारितोषिक देकर कृतार्थ कर दिया—धनी बना दिया। 'जिन देवके निकट मुझे उपदेश लेने जाना उचित था वे स्वयं आगये'—यों ऊँचे स्वरसे बारम्बार कहते हुए राजा अपने आसनसे उठ खड़े हुए, फिर राजाने जिस तरफ वे परम समर्थ मुनि ठहरे हुए थे उसी दिशाकी ओर लक्ष्य करके पृथ्वीमें सिर रखकर मनही मन उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद राजाकी आज्ञासे पुर भरमें प्रजावर्गको मुनिकी वन्दनाके लिए होनेवाली भारी यात्राकी सूचना देते हुए नगाड़े बजने लगे। पाँच चार पैदल सिपाही आगे करके साधारण भावसे बड़े बड़े प्रतिष्ठित पुरुष उस यात्रामें शरीक होनेके लिए आनेलगे। धीरे धीरे जमा हुए हजारों मनुष्योंकी भीड़से राजद्वार भर गया। पुरवासी, इष्टमित्र, बन्धु-बान्धव, सेना, सामन्त, पुत्र और रानियों सहित राजा पद्मनाभ मुनिके दर्शनोंको चले। राजाके स्वच्छ शरीरकी कान्तिमें हजारों दर्शकोंके नयनोंका प्रतिबिम्ब पड़नेसे वह नन्दनवनकी ओर जाते हुए हजार आँखवाले इन्द्रके समान शोभायमान हुए। क्षणभरमें अपने ही समान उस वनको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। राजा भी अशोक अर्थात् शोकरहित मनुष्यों सहित थे और उनको चारों ओरसे पुन्नाग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष घेरे हुए थे। और वह वन भी अशोक और पुन्नागके वृक्षोंसे परिपूर्ण था। वनलक्ष्मीकी श्वासके समान मन्द सुगन्ध पवनने राजा पद्मनाभकी राह चलनेसे उत्पन्न हलकीसी थकनको वहा पहुँचते ही मिटा दिया। सेनापतिको बागके बाहर ही सेना रोकनेकी आज्ञा देकर और बड़े भारी गजराजके ऊपरसे उतर कर पद्मनाभने बागके भीतर प्रवेश

किया। राजाने चामर छत्र आदि सब राजसी ठाटबाट पहले ही उतार दिया, उसके बाद वे शिष्यकी तरह नम्रभावसे मुनिराजके निकट पहुँचे। राजाने देखा कि नीलमणिकी शिलापर वे मुनिराज इस तरह विराजमान हैं जैसे शरदऋतुके उज्ज्वल नील आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित हो। राजाने तीन वार प्रदक्षणा की, तीन वार प्रणाम किया और तीन वार जयजयकार किया। इस प्रकार तीन वार सब प्रकारका सत्कार करके वे मुनिदेवके आगे बैठ गये। राजा हाथ जोड़े हुए बैठे थे। मुनि-चन्द्रके आगे कर-कमलोंका मुकुलित (कली) हो जाना ठीक ही था। जिनेन्द्र और सुरेन्द्रसे जो किसी समय पृथ्वीमण्डलकी शोभा हुई थी वही शोभा आज नरेन्द्र और मुनीन्द्रके समागमसे देख पड़ी। 'जयजय' का भारी कोलाहल जब धीमा पड़ा तब मुनिवरसे आशीर्वाद प्राप्त करके राजा पद्मनाभने कहा—

"स्वामी, यह जगत् (ज्ञान) प्रकाशसे शून्य है, कल्याणकी राह नहीं सूझती; इसमें अच्छा (मोक्ष) मार्ग दिखानेवाले आप हमें दीपकके समान दिखलाई दिये हैं। आपकी दिव्यज्ञान-मयी दृष्टि सर्वतोगामिनी है। आकाश-पुष्प ऐसी असंभव बातके सिवा इस चराचर संसारमें ऐसी कोई बात या वस्तु नहीं है जो आपसे छिपी हो। हे जगत्भरके स्वामी, इसी कारण मैं आपसे तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ, क्योंकि मेरी समझमें गुरूसे उपदेश लिये बिना ज्ञान (जानकारी) कच्चा ही रहता है। भगवन्, कोई कोई नास्तिक-(चार्वाक) मतावलम्बी लोग कहते हैं कि प्रमाणसे सिद्ध होनेवाला 'जीव' नामका कोई पदार्थ ही नहीं है। अतएव जीवके आश्रयसे सिद्ध होनेवाला अजीव पदार्थ भी नहीं है। क्योंकि जीवके बिना अजीव पदार्थ ही कैसे हो सकता है। दोनों परस्पर, एक दूसरेकी, अपेक्षा रखते हैं। ये दोनों स्थूल और सूक्ष्म धर्मकी तरह एक

दूसरेके सहारे हैं। इसके सिवा अगर जीव नहीं है तो जीवके धर्म जो 'बन्धन' और 'मोक्ष' आदिक हैं वे ही कैसे हो सकते हैं? धर्मकी स्थिति धर्मी (जिसका वह धर्म है उस) में ही होती है । इस तरह विचार करनेपर तत्त्वके सम्बन्धमें गड़बड़ हो जाती है, तत्त्व छिपा ही रहता है अर्थात् तत्त्वका स्वरूप ही उपप्लुत है। उसके विषयमें जितना ही विचार बढ़ाओ उतना ही वह पुराने गले कपड़ेकी तरह टुकड़े टुकड़े (खण्डित) होता जाता है।

"कुछ ऐसे हैं जो अनेक मतोंमें उलझे हुए हैं; वे जीवको स्वीकार करके भी उसके धर्म जो 'बन्धन' 'मोक्ष' आदि हैं उनके विषयमें मिथ्या वादविवाद करते हैं। सांख्य मतवाले लोग जीवको त्रिकाल (भूत, भविष्य, वर्तमान) में व्याप्त और अविनाशी कहते हैं। मीमांसा शास्त्रके पण्डित कहते हैं कि जीव (अपने सुखदुःख आदिका) कर्ता नहीं है। नैयायिक लोग उसे जड़ अर्थात् अज्ञान-मय बतलाते हैं। बौद्ध मतवाले जीवको विज्ञानमय अद्वैत-स्वरूप बतलाते हैं। इसप्रकारके अनेक सिद्धान्तोंके अगम्य घने जंगलमें भटकता हुआ पुरुष किस मार्गमें चले? उसकी तो दशा उसी बटोहीकी ऐसी होती है जिसे किसी दिशाका पता न हो।"

राजा पद्मनाभ इस प्रकार ऊँचे अर्थवाले वचन कहकर चुप हो रहे। उसके बाद मुनिराजने गंभीर वाणीसे कहा—"राजन्, तुमने ऐसी अच्छी चर्चा छेड़कर इस कहनावतको सच कर दिखाया कि 'समर्थ-पुण्यात्मा लोगोंका ज्ञान बुद्धि के आगे आगे चलता है अर्थात् पुण्यात्माओंका ज्ञान बुद्धिसे अधिक बढ़ा चढ़ा होता है। जीव और अजीवके विषयमें मैं तुमको वैसी बातें बताता हूँ जिनसे चार्वाक आदि मिथ्यावादियोंके लगाये सब दोषोंका खण्डन होजाता है। चार्वाकका यह कहना कि जीव है ही नहीं, प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणोंसे खण्डित

हो जाता है । इस पक्षको सिद्ध करनेके लिए कारण-निर्देशकी चेष्टा करके कौन अपनी हँसी करावेगा ? अर्थात् जीवके नास्तित्व सिद्ध करनेमें जो अनुपलब्धि हेतु वताया सो ठीक नहीं है; क्योंकि हर एक प्राणीमें जीवके होनेका प्रमाण यही है कि वह अपनेको स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा सुखी दुखी आदि मानता है । इसलिए सुख, दुख, राग-द्वेष आदि भावोंको प्राप्त 'जीव' पदार्थ प्रत्यक्ष जान पड़ता है । दसरे न्यायका यह नियम है कि धर्मी वह होता है जो प्रमाणसे सिद्ध है । इस नियमके अनुसार चार्वाकके किये हुए इस अनुमानका, कि 'जीव' कोई पदार्थ नहीं है; क्योंकि उसकी उपलब्धि नहीं होती, जीवरूप पक्ष (धर्मी) प्रत्यक्षादि प्रमाणसे सिद्ध ठहरता है । जव जीव पदार्थ प्रमाणसे सिद्ध है तव उसका नास्तित्व सिद्ध करनेके लिए व्यर्थ हेतुका प्रयोग कर अपनी हँसी कराना है । यह कहना ठीक नहीं कि ज्ञान कलश आदिकी तरह ज्ञेय होनेसे अपने स्वरूपको नहीं जानता किन्तु अन्य पदार्थोंको जानता है । अर्थात् जैसे कलशको अपना ज्ञान नहीं होता पर औरोंको उसका ज्ञान होता है । इसही तरह ज्ञानको स्वयं अपने रूपका निश्चय नहीं होता किन्तु उसके रूपका निश्चय दूसरा उत्तरकालीन ज्ञान करता है, ऐसा नहीं है, क्योंकि अपने आत्मामें भी क्रिया देख पड़ती है, जैसे दीपक आदिमें अपनेको प्रकाशित करना । तात्पर्य यह कि जैसे दीपक अपनेको प्रकाशित करके ही अन्य विषयोंको प्रकाशित करता है ऐसे ही ज्ञान भी अपनेको जानकर ही अन्य विषयों या भावोंको जानता है । जो ज्ञान अपनेको नहीं जानता उसकी प्रवृत्ति अन्य विषयोंमें होही नहीं सकती । क्योंकि पूर्वपूर्वके ज्ञेयरूप ज्ञानका निश्चय करनेके लिये जो उत्तरोत्तर ज्ञान होंगे वे भी ज्ञेय ही होंगे । इस लिए जव वे ज्ञानस्वरूपके निश्चय करनेमें ही चरितार्थ हो जायँगे तव उनकी प्रवृत्ति दूसरे विषयमें नहीं हो सकती । दूसरी वात यह है कि यहाँपर जो ज्ञान अज्ञात है वह

ज्ञान प्रथम-ज्ञानका बोध करानेवाला नहीं हो सकता और अगर ऐसा नहीं मानते तो अनन्त अनवस्था दोष रूपी लेता फैलकर सारे आकाशको घेर लेगी। इस कारण पदार्थका ज्ञान अप्रत्यक्ष ठहरा और उसके अप्रत्यक्ष होनेपर पदार्थकी भी वही गति होगी। और यदि अप्रत्यक्ष ज्ञानसे भी विषयका निश्चय अङ्गीकार करते हो तो दूसरेका जाना हुआ विषय (घट-पट आदि) भी अपनेको विदित हो सकता है। इस प्रकार स्याद्वादमतमें जीव अपने शरीरमें अपने ज्ञानसे प्रत्यक्ष सिद्ध है और पराये शरीरमें अनुमानसे परोक्ष-सिद्ध है। जब इस युक्तिसे स्वानुभवरूप प्रत्यक्ष प्रमाणसे जीव सिद्ध है तब नास्तिकोंके इस कथनका खण्डन हो जाता है कि जीव प्रत्यक्ष-सिद्ध पदार्थ नहीं है। यदि इस पर यह सन्देह हो कि "गर्भमें आनेसे लेकर मरण-पर्य्यन्त स्वानुभव-रूप प्रमाणसे जीवका अस्तित्व सिद्ध होनेपर भी गर्भमें आनेके पहले और मरनेके पीछे किस प्रमाणसे उसका अस्तित्व सिद्ध करोगे?" तो जिसप्रकार वायु, अग्नि, पृथ्वी, और जल अनादि अनन्त है उसी प्रकार जीव भी अनादि अनन्त सिद्ध हैं; क्योंकि जो नित्य है उसका कोई कारण नहीं होता। यह नित्यकी कारण-हीनता असिद्ध नहीं है। क्योंकि इस कारण-हीनताको असिद्ध करनेवाला कोई भी हेतु नहीं है। यदि कहो वायु आदि तत्त्व जीवके कारण हैं तो वे सब मिलकर या एक एक करके जीवका कारण नहीं होसकते। यदि एक एक करके अलग अलग तत्त्वोंसे जीवोंकी उत्पत्ति मानते हो तो जितनी भूतोंकी संख्या है उतनी ही जीवोंकी भी संख्या होनी चाहिए; किन्तु जीव असंख्य हैं। ऐसे ही अगर सब तत्त्वोंके मिलनेसे जीवकी उत्पत्ति मानते हो तो जड़ तत्त्वोंसे चेतन जीवकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है? क्योंकि घट पट आदिके उपादान-कारण सजातीय अर्थात् उसी जातिके देखे जाते हैं? मिट्टी और सूतआदि कारणोंसे घट पट आदि कार्योंका सजातीय सम्बन्ध दिखलाई पड़ता है।

सींगसे बाणकी उत्पत्ति दिखाकर यदि कोई इस नियमका व्यभिचार दिखाना चाहे तो वह भी ठीक नहीं है । क्योंकि सींग और बाणके पुद्गल सजातीय हैं । यदि यह कहते हो कि विजातीय तत्त्वोंसे भी चेतनकी उत्पत्ति होती है तो फिर जलसे भी पृथ्वी पैदा होनी चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता; क्योंकि तत्त्व अलग अलग चार हैं । यदि अन्य तत्त्वसे अन्य तत्त्वकी उत्पत्ति हो सकती तो फिर चारकी जगह एक ही तत्त्व होना चाहिए था । यदि यह कहो कि ये तत्त्व चेतन जीवके उपादान कारण नहीं हैं तो न सही, ये उसके सहकारी कारण हैं; तो यह कहना भी ठीक नहीं । क्योंकि पृथ्वी आदि चार तत्त्वोंके सिवा और कोई उपादान ही नहीं है । और बिना उपादानके केवल सहकारी कारणोंसे कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । फिर इस तत्त्व-रचित शरीरमें कोई उपादानका धर्म अर्थात् मुख्यकारणका स्वरूप भी नहीं देख पड़ता । देखो, शरीर वैसा ही बना रहता है पर जीव-पदार्थमें विकार आजाता है। परन्तु घटादिकके कारणभूत मट्टी आदिमें यह देखनेमें नहीं आता कि घटमें तो विकार हो जाय और मिट्टीमें विकार न हो । इस लिए अनुमानबाधा आदि दोष इस पक्षको व्याघ्रीकी तरह देख रहे हैं । जीवका अभाव अप्रमेयत्व (अनुपलब्धि) से भी सिद्ध नहीं होता । क्योंकि अपनी उपलब्धि या स्वसंवेदनज्ञानसे ही चेतन जीव प्रत्यक्ष सिद्ध है—और उसका अस्तित्व सिद्ध है । आत्मा (जीव) और तत्त्वों (पृथ्वी आदि) की एकता असिद्ध है । आत्मा चेतन है और तत्त्व जड़ हैं । दोनों अलग अलग प्रतिभासित होते हैं । दोनोंके लक्षण भी भिन्न भिन्न हैं । इस प्रकार आत्मा अर्थात् चेतन पदार्थ जीव अच्छी तरह सिद्ध हो गया ।

अब जो वादी लोग उस जीवमें नित्यत्व-एकान्तकी कल्पना करते हैं उनका मत भी प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही खण्डित हो जाता है । क्योंकि सुख-दुःख आदि परिमाणोंसे हमेशा ही विवर्तमान अर्थात् जिसमें सुख दुःखका

चक्र पड़ा हुआ है ऐसा स्वानुभवरूप वायु प्रत्येक प्राणीमें अलग अलग प्रकाशित हो रहा है। इस लिए जीव प्रत्यक्ष सिद्ध हैं और एक नहीं अनेक हैं। सुख-दुःख आदि परिणाम जो हैं वे जीवसे अलग नहीं हैं। क्योंकि यदि ये पर्याय जीवसे भिन्न होते तो ये जीवके हैं इस प्रकार सम्बन्धकी कल्पना नहीं हो सकती थी। इस पर कदाचित् यह कहो कि इनमें भेदके रहने पर भी समवायसम्बन्धके निमित्तसे यह कल्पना हो सकती है। सो भी ठीक नहीं है; क्योंकि नित्य जो है वह उपकारी नहीं होता, और सब प्रकारके सम्बन्धोंकी स्थिति उपकारके आधार पर ही पाई जाती है। इसकारण समवायसम्बन्धकी कल्पना भी युक्त नहीं है। और यदि नित्यको उपकारित्व मानते हो तो यह प्रश्न होता है कि उससे उपकार भिन्न है या अभिन्न? अगर भिन्न मानते हो तो सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता। यदि किसी अन्य उपकारकी अपेक्षा करके सम्बन्ध स्थापित करते हो तो 'अनवस्थिति' दोष आता है। इस लिए जीव सुख-दुःख आदि पर्यायोंसे अभिन्न है। अत एव वह परिणामी अर्थात् पहले आकारको छोड़ कर दूसरे आकारको प्राप्त होनेवाला है। जब कि जीव परिणामी ठहरा तब उसकी कूटस्थ नित्यताका पक्ष किस तरह ठहर सकता है? अत एव वे लोग भी जो जीवको जड़ बतलाते हैं निरस्त कर दिये गये। क्योंकि चेतन-रूप (ज्ञानरूप) परिणाम और सुख-दुःख आदि परिणामोंमें तथा जीवमें एकता अर्थात् अभिन्नता संभव है। यह कहना भी ठीक नहीं कि जीव-पदार्थ पुण्य-पाप आदि कर्मोंका कर्ता नहीं है। क्योंकि ऐसा कहनेसे बंधनाभाव आदि दोष उपस्थित होते हैं, अर्थात् यदि वह कर्ता नहीं है तो उसे बन्धन भी न होना चाहिए। जीव, अच्छे या बुरे कर्मोंको किये बिना बन्धनको कैसे प्राप्त होसकता है? सांख्यमतके लोग आत्माको भोग करनेवाला स्वयं कहते हैं। इस कारण भोगरूपी क्रियाका कर्तृत्व जीवमें बताकर भी उसी

(अर्थात् स्वतन्त्रता) को न माननेवाले सांख्य मतावलम्वी क्यों नहीं लज्जित होते ? तात्पर्य यह कि कर्तृत्वके विना भोक्ता होना पूर्वापर विरुद्ध वात है । कदाचित् यह कहो कि प्रधानके–'प्रकृतिके' वन्ध आदि होता है सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि प्रकृति अचेतन है और अचेतनमें वन्धन आदिकी कल्पना युक्तिसिद्ध नहीं है । इस कारण जीवके सम्वन्धमें अकर्तृत्वकी कल्पना अत्यन्त पाप है । कुछ लोग कहते हैं कि जीव केवल चित्त-संतति मात्र है । यह कल्पना भी युक्ति-विरुद्ध है । क्योंकि संतानीके विना कोई संतति हो नहीं सकती । और यदि सन्तानीके विना भी सन्ततिका नित्यत्व अङ्गीकार करो तो सवको क्षणिक माननेवालों (वौद्धों) के पक्षको प्रतिज्ञा–हानिका दोष वाधा पहुँचाता है । यदि सन्ततिका क्षणिकधर्मत्व भी मानलें तो जीवके कृत-नाश (किये हुए पाप आदिका नाश) आदि सव सन्तानीके पक्षमें प्राप्त दोष उसे (सन्ततिको) भी प्राप्त होते हैं । और यदि जीवको व्यापक मानकर कहो कि उसमें कृतनाश आदि दोषोंका अभाव है तो जीवकी व्यापकता घटित नहीं होती–सिद्ध नहीं होती । क्योंकि स्वानुभवसे जिसका रूप जाना गया है वह जीव देहके वाहर नहीं देख पड़ता । अगर वह व्यापक है तो देहके वाहर भी उसे देख पड़ना चाहिए । इस लिए आदि और अन्तसे रहित, जितना वड़ा देह है उतना वड़ा–अर्थात् देहभरमें व्याप्त, नित्यरूप, पुण्य पापका कर्ता, पुण्यपापजनित सुखदुःख-का भोग करनेवाला, चैतन्यरूप जीव प्रत्यक्ष प्रमाणसे सर्वथा सिद्ध है । इस प्रकार जीवके सिद्ध होनेपर जीवतत्त्वकी अपेक्षा रखनेवाले जो अजीव आदिक पदार्थ हैं वे भी अव अच्छी तरह प्रमाणसे सर्वथा सिद्ध होगये । और अजीवादिक पदार्थोंके सिद्ध होनेसे तत्त्वोपप्लववादीका यह कहना खण्डित होगया कि तत्त्वका स्वरूप उपप्लुत ही है ।

मीमांसा शास्त्रके अनुगामी लोग जीव-अजीव आदि छह वस्तुओंको स्वीकार करके भी मोक्ष अर्थात् परमानिर्वाणमें विवाद करते हैं–कहते हैं कि जीवकी

मुक्ति ही नहीं होती। उनके पीछे भी अनुमानकी बाधा लगी हुई है। क्योंकि कर्मोंका क्षय ही मोक्ष है और वह (कर्मोंका क्षय) अनुमानसे सिद्ध है। किसी पुरुष (जीव) में सब आवृतियों अर्थात् अवरणोंका क्षय वर्तमान है—ऐसा अनुमान किया जाता है। अगर ऐसा नहीं मानते तो आवृत्ति-क्षयरूप कारणका कार्य जो सर्वज्ञता है उसका होना सिद्ध नहीं होसकता। किन्तु उधर कोई पुरुष सर्वज्ञ नहीं है, यह बात सिद्ध नहीं होती; क्योंकि पुरुष सर्वज्ञ है—इस मतको बाधा पहुँचानेवाला कोई प्रमाण नहीं है। और अगर कोई बाधक प्रमाण न हो तो अनुमानद्वारा वस्तुकी सिद्धि हो जाती है। देखो, जीवकी सर्वज्ञतामें बाधा पहुँचानेवाला प्रत्यक्ष प्रमाण तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि प्रत्यक्षप्रमाण इन्द्रियजन्य है इस कारण जो विषय इन्द्रियोंसे अतीत है उसमें प्रत्यक्षप्रमाणसे न विधि ही हो सकती है और न निषेध ही। प्रत्यक्षकी तरह अनुमान भी किसी मुक्तजीवकी सर्वज्ञताको असिद्ध नहीं कर सकता। क्योंकि हस्त-पद-विशिष्ट-पुरुषत्व आदि जो सर्वज्ञताके अभावको सिद्धकरनेवाले साधक चिन्ह हैं वे एकान्तिक अर्थात् निश्चित नहीं होते। जैसे, पुरुषत्वके रहते भी किसी किसी पुरुषमें वेदका अर्थ जाननेकी विशेषता होती है वैसे ही किसी किसी जीवकी सर्वज्ञता—सब जाननेकी शक्ति—भी अनुमान-सिद्ध है। मीमांसा-शास्त्रके अनुयायी इसपर कहते हैं कि जैसे किसी देश या किसी समयमें किसी गधेके सींग नहीं होते वैसे ही हस्त-पद-विशिष्ट कोई पुरुष भी किसी देश या किसी समयमें सर्वज्ञ नहीं होता। किन्तु यह उनका उपमान प्रमाण भी इष्टविरोध दोषसे दूषित है अतएव असंगत है। यदि ऐसा मानोगे तो हस्त-पद-विशिष्ट पुरुषरूप आकाशगामी विद्याधर आदिका आकाशमें चलना भी असिद्ध हो जायगा। इसलिए किसी पुरुष विशेषमें सर्वज्ञता सिद्ध है और वैसे ही किसी गर्दभविशेषके सींग होना भी अंगीकृत है। अर्थापत्ति-प्रमाणसे भी सर्वज्ञताका अभाव नहीं सिद्ध होता।

क्योंकि यदि सर्वज्ञभाव नहीं मानते तो सर्वज्ञाभावका समर्थ कौन करेगा- अर्थात् यदि सर्वज्ञ था ही नहीं तो उसका अभाव कैसा ? किसी पुरु-षके बनाये हुए या अपौरुषेय शास्त्रके प्रमाणसे भी जीवकी सर्वज्ञताको बाधा नहीं पहुँचती। क्योंकि शास्त्रको यदि अपौरुषेय कहते हो तो सर्वथा असंभव है ; विना किसी पुरुषके शास्त्रकी कल्पना होही नहीं सकती। यदि कहो कि किसने शास्त्र बनाये यह स्मरण नहीं, तो इससे शास्त्रके कर्ताका अभाव नहीं सिद्ध होता। क्योंकि जिन वाक्योंके कर्ताका हमको ज्ञान नहीं है ऐसे वाक्योंसे व्यभिचार आता है । तथा इस प्रकारकी कोई विशेषता उनमें नहीं है जो कि आगमको अपौरुषेय मानने पर ही सम्भव हो और पौरुषेय मानने पर सम्भव न हो। यदि कहो कि अतीन्द्रिय विषयका निरूपण आगमको अपौरुषेय माने विना सम्भव नहीं, सो यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि आगमको सर्वज्ञोक्त माननेपर भी अतीन्द्रिय पदार्थका निरूपण हो सकता है। इस कारण विवादविषयको प्राप्त शास्त्रका कोई कर्ता अवश्य है। यह अनुमान होता है; कि जिनका कर्ता देखनेमें आता है उनहीं शास्त्रोंके तुल्य ये भी हैं। इसी लिए जैसे अक-लंक आदि शास्त्रोंके कर्ता देखे जाते हैं वैसे ही उनका भी कोई कर्ता है। इस प्रकार जीवकी सर्वज्ञताको बाधा पहुँचाने-वाला अपौरुषेय शास्त्र नहीं है। और जो पुरुषप्रोक्त शास्त्र हैं उनके दो भेद हैं। (१) सर्वज्ञ पुरुषके बनाये और (२) असर्वज्ञ पुरुषके बनाये। जो असर्वज्ञ पुरुषका बनाया शास्त्र है उसका प्रमाण तो इन्द्रिया-तीत विषयमें माना ही नहीं जा सकता। और जो सर्वज्ञ पुरुषके बनाये हैं वे जीवकी सर्वज्ञताका विरोध नहीं, बल्कि प्रतिपादन ही करते हैं। प्रस्तुत अनुमानको सर्वज्ञके विषयमें साधक होना सिद्ध है, इस लिए प्रमाणपञ्चक-का अभाव भी सर्वज्ञताको बाधा नहीं पहुँचाता। इस प्रकार छहों प्रमा-

णोंसे सर्वज्ञता असिद्ध नहीं होती, इस कारण सर्वज्ञ कोई है इस प्रकारका शास्त्रसे उत्पन्न निश्चय ही इसका प्रमाण हैं; क्योंकि उसको बाधा पहुँचानेवाला कोई प्रमाण नहीं है। जिसका बाधक प्रमाण नहीं होता वह प्रमाण होता है जैसे इन्द्रियजन्य ज्ञान। प्रत्यक्ष जब अनुमानसे सर्वज्ञ जीवका होना सिद्ध हुआ तब रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र)के द्वारा होनेवाला परम निर्वाण भी जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर और निर्जरा इन छह तत्त्वोंके साथ सिद्ध होगया।

इसप्रकार तत्त्व-विषयको बतलानेवाले चुम्बक-सदृश वचनोंसे यतिराजने शल्य-तुल्य खटकनेवाले राजाके सन्देहको उनके हृदयसे खींच लिया। विद्वान् मुनिके कथनको 'भगवान्, जैसा आपने कहा वैसा ही है' यों स्वीकार करके प्रसन्न चित्त राजाने उनसे अपने होचुके और आगे होनेवाले जन्मोंका वृत्तान्त पूछा। तब मुनिराजने राजा पद्मनाभसे उनके जन्मोंका सिलसिलेवार वृत्तान्त कहना आरम्भ किया और वहाँपर उपस्थित श्रेष्ठ भव्य मण्डली उसे मन लगाकर सुनने लगी।

मुनिवर बोले—राजन्, तीसरे पुष्करार्द्ध द्वीपमें पूर्वमन्दर नाम एक पर्वत है। जिसके सुन्दर लतामण्डपोंमें किन्नरगण क्रीड़ा किया करते हैं। उसके पश्चिम-विदेहक्षेत्रमें शीतोदा नाम नदीके उत्तर-तटको अलंकृत किये हुए सुगन्धि नाम एक देश है। जिसके प्रदेश, ऊँचे और बड़े दण्डवाले पिण्डाकार छत्र—सदृश सुपारीके पेड़ोंसे राजाओंके समान शोभायमान हैं। वह सुगन्धि देश सब दिशाओंको सब तरफ अपने पुष्पोंके सुवाससे सुगन्धित करता हुआ अपने नामको सार्थक कर रहा है। उस देशमें विना जोते बोये ही खूब अन्न उत्पन्न होता है। वहाँ दुर्भिक्ष नहीं पड़ता और वहाँ ईतिकी बाधा नहीं है। वहाँ रहनेवाले लोग सदा आनन्द पाते हुए मुक्त पुरुषसे रहते हैं। वहाँके खेत अन्नके ढेरोंसे परिपूर्ण रहते हैं। इसप्रकार वह देश सब ओर सुखी और सम्पन्न

देख पड़ता है। परलोकके कर्मोंमें लगे हुए वहाँके लोग धर्मके लिए धनोपार्जन करते हैं और वंश चलानेके लिए कामभोग करते हैं। उनको धन कमाने या कामभोग करनेका व्यसन (लत) नहीं है। वहाँके पथिकजन निरन्तर लगे हुए बागोंमें विश्राम करके अपनी थकावट दूर करते हैं और मार्गको घरके आँगनके समान समझते हैं। वह देश सदा चितचाही वस्तुयें अपने निवासियोंको देकर कल्पवृक्षोंसे परिपूर्ण पृथ्वी अर्थात् (भोगभूमि) को जैसे जीतनेकी इच्छा करता है। वहाँ स्वभावसे ही स्थिर न रहनेवाली चंचला (बिजली) ही चंचल देख पड़ती है; लक्ष्मी नहीं। ऐसे ही वहाँ वर्षकालके मेघ ही काले देख पड़ते हैं, लोगोंके चरित्र कलुषित (बुरे) नहीं हैं। उसके गाँवोंमें कहीं गऊ–बछड़े और बैलोंके शब्द सुन पड़ते हैं; कहीं ईख पेरनेके यन्त्र (कोल्हू) चल रहे हैं, उनके शब्द सुन पड़ते हैं; कहीं मस्त मयूर बोल रहे हैं; जिससे वे बड़े ही सुन्दर जान पड़ते हैं। नहाती हुई स्त्रियोंके झुण्डके कुच–कुङ्कुम घुल घुल कर बहनेसे वहाँकी नदियाँ लाल वस्त्र धारण कियेसी जान पड़ती हैं।

उस देशमें बड़ा वैभवशाली एक श्रीपुर नामका पुर है; जो वहाँके रहनेवालोंके पुण्यसे उत्पन्न दूसरी देवतोंकी पुरी जान पड़ता है। वहाँ बने हुए ऊँचे ऊँचे महलोंकी चोटियों पर जड़ी हुई रत्न–शिलाओंकी कान्तिसे सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतिर्गणकी कान्ति सदैव छिपी रहती है। वहाँके महलोंकी दीवारें इतनी ऊँची हैं कि रहनेवाले लोग सूर्य और चन्द्रमाका उदय नहीं देख पाते; वे सूर्योदयमें सूर्यकान्त मणियोंसे निकलनेवाली अग्नि और चन्द्रोदयमें चन्द्रकान्त मणियोंका प्रसीजना देखकर ही सूर्य और चन्द्रके उदयका अनुमान कर लेते हैं। महलोंकी चोटियोंपर लगी हुई पद्मराग-शिलाओंकी कान्ति पड़नेसे, लाल हुए आकाशको देखकर असमय भी, वहाँके लोग सन्ध्याकालका धोखा खाजाते हैं। सबेरेके समय ऊँचे महलोंकी अंटियोंपर धीरे धीरे चढ़ कर सूर्यदेव पूर्ण

कलशके समान शोभायमान होते हैं। वहाँ नित्य रातको दीवारकी चोटीके पास आये हुए तारागण दीपोत्सव (दिवाली) का भ्रम पैदा करते हैं। चारों तरफ़ जैसे नक्षत्रोंको धारण किए हुए वहाँकी चहारदीवारी स्वर्ग-लोकको देखनेके लिए उत्कण्ठितसी देख पड़ती है। जैसे राजा मानमें उन्नत होता है वैसे ही वहाँके महल भी मान (परिमाण) में उन्नत (ऊँचे) हैं। जैसे राजा महाभोग-शाली होते हैं वैसे ही वहाँके महल महाभोग (बड़े विस्तार) से युक्त हैं। जैसे राजा मत्तवारण (मस्त हाथी) रखते हैं वैसे ही वहाँके महलोंमें मत्तवारण (बरामदे) शोभा-यमान हैं। जैसे राजाओंके बहुत भूमि होती है वैसे ही उनमें भी बहुतसी भूमि है। इस प्रकार वहाँके महल राजोंके समान हो रहे हैं। उस पुरके चारों ओर खुदी हुई जलभरी खाईकी अपूर्व शोभा है। कहींपर कमलकुसुमोंसे झड़कर गिरे हुए घने परागसे जल ढक गया है जिससे खाईका उतना अंश सुवर्णनिर्मित भूखण्डकीसी शोभा धारण किये हुए है। कहींपर किनारे लगे हुए वृक्षोंका प्रतिविम्ब उसके जलमें पड़ रहा है; जिसे देखकर पेड़ों पर बैठे हुए पक्षियोंको पाताल-वाटिकाका भ्रम हुआ करता है। कहींपर काश-सदृश पंखोंको हिलाते हुए हंसोंकी शोभा देखनेसे जान पड़ता है कि उस खाईके जलसे उठे हुए फेनके पुंज हवासे हिल रहे हैं। कहीं-पर, किनारे लगे हुए घने वृक्षोंके कारण जलमें बिल्कुल हवा नहीं लगती वह निश्चल हो रहा है। भोली भाली थोड़ी अवस्थाकी स्त्रियोंको वह स्थिर स्वच्छ जल देखनेसे बिल्लोरके बने हुए फ़र्शका धोखा हुआ करता है। स्नान करती हुई पुरनारियोंके केशपाशसे गिरे हुए चमेलीके फूल बहनेसे वह खाई सर्वत्र तारागण-मण्डित आकाशसी शोभायमान देख पड़ती है। उस पुरके निवासियोंकी बुद्धि तीक्ष्ण है; वचन नहीं। स्त्रियोंके कुचोंमें कठि-नता पाई जाती है; हृदयोंकी नहीं। भंग (टेढ़ापन) स्त्रियोंके केशोंमें पाया जाता है; तपस्वियोंमें व्रत-भंग नहीं पाया जाता। कुकविताओंमें ही रस-

भंग दोष देख पड़ता है; पति-पत्नीमें नहीं । वि-रोध (पक्षियोंको बंद कर रखना) पिंजड़ोंमें ही होता है; महात्माओंके मनोंमें विरोध (वैर-विरोध) नहीं पाया जाता । स्त्रियोंकी नाभिमें ही नीचापन (गहराई) पाया जाता है; गृहस्थोंके आचारणोंमें नहीं । चहारदीवारी, खाई और अन्तर्वेदिकाओंसे घिरा हुआ वह श्रीपुर तीन मण्डलोंसे घिरे हुए चन्द्रमण्डलके समान शोभायमान है । वहाँ वनिये और तर्कशास्त्रके पण्डित लोग दोनों ही, लोक-प्रसिद्ध, अविरोधी और व्यभिचार-दोष-रहित मान (तौलमाप और दूसरे पक्षमें प्रमाण)से वस्तुओं (रत्नादि पदार्थों और दूसरे पक्षमें अग्नि आदि पदार्थों)को तोलते या प्रमाणित करते हैं । बावड़ी, बाग, चैत्य, महल और सरोवरोंसे रमणीय, तथा स्वर्ग वैभवको भी नीचा दिखानेवाले ऐश्वर्यके अभ्युदयसे सम्पन्न उस पुरका यथार्थ वर्णन तो साक्षात् बृहस्पति भी नहीं कर सकते; फिर मुझ ऐसा अल्पबुद्धि पुरुष क्या कह सकता है ।

इति द्वितीयः सर्गः

तृतीय सर्ग ।

इस पुरके राजाका नाम श्रीषेण था। अपने बन्धुरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करके न्याय-रूपी किरणोंसे अन्याय-रूपी अन्धकारको मिटानेवाले राजा श्रीषेणने वैरि-वधुओंके मुखचन्द्रको फीका कर दिया। इस प्रकार वे सर्वथा सूर्यके समान थे। उनके प्रताप-रूपी अग्निसे जलते हुए सब शत्रुगण ऐसे घबराये कि दिशा-विदिशा कुछ न देखकर भागे और उल्लुओंकी तरह पहाड़ोंकी गुफाओंमें जाकर रहने लगे। अनुराग उत्पन्न करनेवाले उनके यशसमूहसे सब दिशायें प्रकाशित हो रही थीं। अतएव वहाँके लोगोंको केवल दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले चन्द्रमाकी चाह अधिक नहीं रही। शरदऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर कीर्तिलताके विस्तारसे सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलको घेरने--व्याप्त करलेनेवाले महाराज श्रीषेण पालन करने, शिक्षा देने और कष्ट दूर करनेके कारण सारी प्रजाके स्वामी, गुरु और सुहृद भी थे। वे सब व्यसनोंसे दूर थे, उनमें नम्रता बहुत ही थी और उनकी बुद्धि स्वभावसे ही निर्मल और तीक्ष्ण थी। मानों परस्पर एक दूसरेको देखनेके लिए उत्सुक होकर राजाओंके जानने योग्य सब विद्यायें श्रीषणमें एकत्रित हुई थीं। वे सुमेरुके समान उच्च, देवेन्द्र-विष्णुके समान समर्थ, चन्द्रमाके समान सुन्दर, मुनीन्द्रोंके समान जितेन्द्रिय, सिंहके समान शूर, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् और समुद्रके समान गम्भीर थे। वे अपने तेजसे ही मण्डलेश्वर राजोंको आधीन करके समग्र पृथ्वीमण्डलका उपभोग करने लगे। हाथी, पैदल, घोड़े, रथ आदि चतुरङ्गिणी सेना तो उनके यहाँ केवल शोभाके लिए थी। अहङ्कारने यही सोचकर कि

'सारे गुण जिस राजामें रहें उसमें मेरे साथ ही रहें; मगर न जाने यह राजा कैसा है कि मुझसे शत्रुता रखता है और क्षमा आदि गुणोंका सत्कार-सराहना करता है' श्रीषेणके पास आना छोड़ दिया। उनका वक्षःस्थल लक्ष्मीका, दोनों भुजायें श्रेष्ठ वीर लक्ष्मीका, सारा शरीर कान्तिका, हृदय क्षमाका, और मुख सरस्वतीके ऐश्वर्यका निवासस्थान था। सच है, सज्जनोंके प्रयत्नसे सभीको आश्रय मिलता है। वे अजल* थे, परन्तु न-दीन † थे। वे पृथ्वीमण्डलके तिलक* होनेपर भी अशोक §थे। वे कलाधर† होनेपर भी दोषाकर ‡ नहीं थे। बड़ोंकी सभी बातें अचरजमें डालनेवाली होती हैं। वे धर्मसे अर्थसञ्चय करते थे, अर्थ (धन) से कामभोग करते थे और उससे इन्द्रिय-सुख प्राप्त करते थे। धर्म, अर्थ, काम तीनों जिनसम्बन्धी नैगम-संग्रह आदि नयकी तरह निरन्तर एक दूसरेकी आकांक्षाको नहीं छोड़ते थे। अपने योग्य किसी विशेष स्थानकी अभिलाषा रखनेवाले उदारता, धैर्य, विनय आदि सारे गुणोंके आदरपूर्वक प्रार्थना करनेपर मानों विधाताने सब गुणोंके आश्रयरूप श्रीषेणको पृथ्वीपर उत्पन्न किया है। अगर सूर्य जरा सौम्य स्वरूप धारण करे अथवा चन्द्रमा कुछ तेजस्वी हो तो प्रजाप्रिय और तेजस्वी राजा श्रीषेणकी उपमा उनसे दी जा सकती है।

चन्द्रमा जैसे निर्मल कलासे सम्बन्धको प्राप्त होता है उसी प्रकार उन सकल जन मनोहर राजाका विवाहसम्बन्ध श्रीकान्ता नाम रानीसे

---

* एक अर्थ हुआ जलसे रहित और दूसरा अर्थ हुआ जड़ नहीं अर्थात् पण्डित। संस्कृतमें 'ल' और 'ड' को सवर्ण मानते हैं। इसीसे जलको जड़ भी पढ़ सकते हैं। † एक अर्थ हुआ नहीं दीन और दूसरा अर्थ हुआ नदियोंका इन अर्थात् स्वामी=सागर। *तिलक-स्वरूप श्रेष्ठ और दूसरा अर्थ तिलकका वृक्ष §शोकसे रहित और दूसरा अर्थ अशोकका वृक्ष। †बहत्तर कलाविद्या जाननेवाले और दूसरा अर्थ चन्द्रमा। ‡दोषोंका खान और दूसरा अर्थ दोषा=रात्रिको करनेवाले चन्द्रमा।

हुआ। वह रानी कमलनिवासिनी लक्ष्मीके समान सुन्दरी और राजाके शरीरसे अभिन्न अर्थात् सच्ची अर्धांगिनी थी; अथवा यों कहो कि वे दोनों 'एक प्राण दो-देह' थे। प्रशंसनीय और शरदऋतुके स्वच्छ चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल सारे पातिव्रत्य आदि गुण मानों अपने शरीरको अत्यन्त उज्ज्वल करनेके लिए शरीरकान्तिशोभा-रूपी निर्मल जलमें नहाकर, उस सुन्दरीके शरीरमें इकट्ठे हुए थे। लक्ष्मीने सारे संसारकी सुन्दरियोंमें शील, क्षमा, विनय और रूप गुणके कारण पूजनीया जो श्रीकान्ता रानी हैं उन्हें अपने स्वामी श्रीषेणके मनको रमानेमें सहायक रूपसे सादर स्वयं स्वीकार किया। देवसभामें गाया गया जो त्रिभुवनमें व्याप्त श्रीकान्ता रानीके रूपका चन्द्रमाके समान स्वच्छ यश है उसे सुनकर उनका सौन्दर्य्य पानेकी अभिलाषा करके तप करनेके लिए देवोंकी स्त्रियाँ भी स्वर्गसे पृथ्वीपर आनेकी इच्छा रखती हैं। सूर्यकी सबेरेके समयकी द्युतिके समान श्रीकान्ता रानी, चन्द्रमाकी कान्तिको परास्त किये हुए थी। सूर्यकी कान्ति दोषा अर्थात् रात्रिके सम्बन्धसे रहित होती है, रानी भी दोषके सम्बन्धसे रहित थी। सूर्यकी कान्ति तम 'अन्धकार'से रहित होती है, रानी भी तम 'अज्ञान या तमोगुण' से शून्य थी। वह भी रम्य होती है, यह भी रम्य थी। सूर्यकी कान्ति कमलोंको प्रफुल्लित करती है, रानीने भी अपने बन्धु-बान्धवोंको प्रफुल्लित कर रक्खा था। राजा श्रीषेणका यश चन्द्रमाके समान उज्ज्वल और दिशाओंको प्रकाशित किये हुए था। वे राजा धर्म और अर्थको बाधा न पहुँचने देकर उस रानीके साथ मान करने और मनानेके सुखका अनुभव करते हुए बहुत दिनोंतक आनन्द भोग करते रहे।

किन्नरगण जिनकी कीर्तिको गाते हैं ऐसे राजा श्रीषेण एक दिन सब कामोंसे निपट कर अन्तःपुरमें पधारे तो उन्होंने देखा कि उनकी

प्यारी रानी हथेली पर कपोल रक्खे आँखोंमें आँसू भरे हुए बैठी है। रानीकी यह दशा देखकर उसके समान ही दुःख राजाको भी हुआ। मानों रानीके दुःखको बँटानेके लिए ही घबराये हुए राजाने शीघ्रताके साथ रानीसे ऐसे भारी शोकका कारण पूछा। राजाने कहा—हे कमल-नयने! मैंने बड़े बड़े पराक्रमी शत्रुओंको परास्त कर रक्खा है और मेरा प्रबल प्रताप पृथ्वीमण्डल भरपर फैला हुआ है। ऐसे मुझ जीविते-श्वरके जीवित रहते किसी दूसरेके द्वारा तुम्हारा अपमान होना तो किसी प्रकार संभव ही नहीं है। और हे मत्तगजगामिनि! संतापका मुख्य मित्र जो तुम्हारा विरह है उसे मैं क्षण भर भी नहीं सह सकता। इस कारण तुम निश्चय समझो कि मुझसे भी प्रणयभंगकी संभावना नहीं है। हे चन्द्रमुखि! तुम्हारी सखियाँ भी तुम्हारे चरणोंकी दासी हैं, उनका जीवन तुम्हारे अधीन है, वे सर्वथा तुम्हें प्रसन्न रखनेमें तत्पर रहती हैं, वे सरला हैं, उनका शरीर अर्थात् हृदय तुम्हारे हृदयसे भिन्न नहीं है। ऐसी सखियोंसे कोई कपट या अपराध होना भी असम्भव ही है। हे तन्वि! तुम्हारे भृत्यवर्ग और बान्धवगण तुम्हारी इच्छाके अनुसार ही सब काम करते हैं; अन्तःपुरकी सब स्त्रियाँ दासीकी तरह तुम्हारी आज्ञाका पालन करती हैं—वे तुम्हारी टेढ़ी भौंहको देख भी नहीं सकती। ऐसी दशामें यह भी अनुमान नहीं किया जा सकता कि किसीने तुम्हारी आज्ञा न मानी होगी। हे देवि! तुम्हारे दुःखके इतने ही कारण हो सकते हैं। बतलाओ, इनमेंसे तुम्हारे इस शोकका कारण क्या है? इस प्रकार राजाके पूछने पर लज्जाके मारे रानीने कुछ कहा तो नहीं, किन्तु वे अपनी बाल्यकालकी सखीके मुखकी तरफ़ देखने लगीं। दूस-रेके इशारेको समझनेवाली उस रानीकी सखीने लज्जाके कारण मीठी और धीमी आवाज़में यों कहा कि, हाँ देव, आपका कहना सच है। आपके भारी प्रेमको पाकर परम पूजनीया हमारी महारानीका तिरस्कार

या अपमान होना सर्वथा असम्भव ही है। महाराज, हमारी महारानीके इस विषादका कारण कुछ और ही है। दैव अर्थात् पुण्यके सिवा और किसीके द्वारा वह दूर नहीं किया जासकता। तथापि वह सब मैं महाराजके आगे वर्णन करती हूँ। आगे कर्तव्य वस्तुमें प्रमाण तो नियति ही है, अर्थात् जो बदा होता है वही होता है। ये महारानी आज महलकी छतपर मेरे साथ इस आपके प्रभावसे समृद्धिशाली नगरकी शोभा निहारनेको गई थीं। वहाँपरसे इन्होंने देखा कि सुन्दर सुन्दर धनियोंके बालक हाथकी थपकियाँ देदेकर गेंद खेल रहे हैं। उन चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाले बालकोंको देखकर चिन्तासे इनका मुखारविंद मलिन होगया। इन्होंने सोचा कि ऐसे बालकोंको गर्भमें धारण करनेसे जिनका जन्म सफल होचुका है वे स्त्रियाँ धन्य हैं—मैं उनको अपनेसे कहीं अधिक भाग्यशालिनी समझ कर उनके समान होनेकी कामना करती हूँ। जिन्होंने पूर्वजन्ममें पुण्यसञ्चय नहीं किया है, और इसी कारण जो मेरे समान पुष्पवती होकर भी फलसे हीन हैं वे 'बाँझ' स्त्रियाँ वन्ध्या लताओंके समान इस लोकमें सुशोभित नहीं होती और सब लोग उनके निष्फल जन्मकी निन्दा करते हैं। गर्भ धारण ही स्त्रीका प्रसिद्ध धर्म है। जो स्त्री गर्भधारणके बिना ही स्त्रीशब्दको धारण करती हैं वे उसी अन्धेके समान, जो अपनेको सुलोचन कहलाना चाहता हो, जगत्में हँसी जाती हैं। जब चन्द्रमा आकाशमार्गमें नहीं रहता तब सूर्यदेव उसे अलंकृत करते हैं और ऐसे ही हंसोंसे शून्य सरोवरको कमलके कुसुम-समूह सुशोभित करते हैं। किन्तु कुलकामिनियोंके लिए वंशको बढ़ानेवाले बीज-रूप पुत्रके सिवा और कोई भूषण नहीं है। उस अपने कुलके एकमात्र अलंकार तथा सौभाग्य, सुख और वैभवके स्थिर कारण पुत्रसे रहित जो मैं हूँ उस पुण्यहीनाको बन्धु-बान्धव, सुहृद्गण या पतिकी प्रसन्नता अथवा आदर कोई भी सुखी नहीं बना

सकता। हे देव! इसप्रकार विषादको प्राप्त रानीने उदास होकर अपना दुःख मुझसे कहा और आप पलँगपर पड़ रहीं। महाराज! मैंने देवीको बहुत तरहसे समझाया बुझाया भी पर उनका शोक रत्तीभर भी कम नहीं हुआ। सखीके मुखसे इसप्रकार रानीके विषादका कारण सुनकर राजाने एक लम्बी साँस ली और फिर उसके बाद रानीसे कहा कि, हे देवि! जो वस्तु दैवके अधीन है उसके लिए शोक करना किसी तरह ठीक नहीं। देखो, यह शोक शरीर, इन्द्रियों और हृदयको सुखा डालता है। प्रिये! तुम्हारे दुःखसे पहले तो मुझे ही दुःख होगा और मेरे दुःखसे सारी प्रजाको दुःख होगा। हे कृपामयी! इस प्रकार सारे जनसमूहको सन्ताप देनेवाले बढ़ते हुए शोककी वशवर्तिनी मत बनो। पहले जन्ममें अपने परिणामके वशवर्ती होकर जिसने जो अच्छा या बुरा कर्म किया है उसीके अनुसार इष्ट या अनिष्ट फल प्राप्त होता है। फिर तुम अकारण क्यों शोक कर रही हो? हे मन्दगामिनि! पुत्रकी प्राप्तिको अत्यन्त असाध्य मत समझो। यदि भाग्य सर्वथा प्रतिकूल न होगा तो तुम्हारा यह मनोरथ बहुत ही शीघ्र पूर्ण होगा। इस जिनसमयमें केवलज्ञानी और अवधिदर्शी आदि अनेक प्रकारके रिद्धिधारी मुनि वर्तमान हैं। उनको, प्रबुद्ध और मोहको प्राप्त यह चराचर संसार करतलगतसा ज्ञात है। तुम्हारे शोकको दूर करनेके लिए सर्वथा उद्यत होकर मैं उन मुनियोंके निकट जाकर तुम्हारे पुत्र न होनेका कारण पूछूँगा और उसकी बाधा दूर करनेका पूरा प्रयत्न करूँगा। सब दिशाओंके राजाओंसे 'कर' लेनेवाले उन राजाने इस प्रकार मनोहर वचनोंसे अपनी प्यारी रानीका शोक दूर कर दिया।

एक समय, जब कि उपवनमें वसन्त ऋतुकी शोभा फैली हुई थी, अत्यन्त कौतुकके साथ सुहृद्गण सहित राजा श्रीषेण अपने क्रीड़ावनमें उसकी शोभा देखनेके लिए गये। उस बागमें मयूर नाच रहे थे,

कोकिलायें मन्द-मधुर शब्द कर रही थीं, स्वाद-भरे सुन्दर फल लगे हुए थे, पुष्पोंकी सुगन्ध फैली हुई थी, शीतल मन्द पवन डोल रहा था। ऐसे सब इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाले उस बागमें महाराज श्रीषेण विहार करने लगे। इसी बीचमें श्रेष्ठ शोभा धारण करनेवाले और २५ प्रकारके मलोंसे रहित शुद्ध सम्यक्त्वको धारण करनेवाले राजाने सहसा देखा कि भारी तपस्याके तेजसे शोभायमान और आकाशचारी अनन्त नाम अवधिज्ञानी मुनिराज आकाशसे नीचे उतर रहे हैं। आनन्दके मारे राजाके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने तमालतरुके तले विराजमान उन मुनिराजके संसारसागरके पार जानेके लिए नौकास्वरूप चरणोंमें भारी भक्तिके भारसे आप ही झुका हुआ मस्तक रखकर प्रणाम किया। दोषरहित परम आगमका उपदेश देनेवाले मुनिराजने अपने स्वरूपके ध्यानमें लगी हुई समाधिको समाप्त करके श्वेतकमलके समान उज्ज्वल और धर्माभिषेकके जल सरीखी पवित्र मंद मुसकानसे राजाको नहलाते हुए आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद पानेके उपरान्त महाराज श्रीषेणने कली हुए कमलकुसुमके समान शोभायमान हाथ जोड़कर अपने उज्ज्वल दाँतोंकी चमकसे मुनिवरके चरणोंमें चन्दन चढ़ाते हुए यों विनयपूर्ण वाणी कही—पापनाशके लिए बहुत दूर जाकर भी जिनके पवित्र रज-पूर्ण चरणोंका दर्शन करना चाहिए वे आप मुनिवर स्वयं मेरे यहाँ पधारे हैं! आपके इस आगमनका कारण मेरे पूर्वजन्मके पुण्योंके सिवा और क्या हो सकता है? भगवन्! आपका दर्शन थोड़े पुण्यसे नहीं प्राप्त हो सकता। हे सुचरित! आपके दर्शनसे कल्याणकी वृद्धि होती है, विवेक बढ़ता है, पाप नष्ट होते हैं और ऐश्वर्यका अभ्युदय होता है। कहाँतक कहें आपका दर्शन सम्पूर्ण मङ्गलोंका मूल कारण है। हे मुनिनाथ! जो हो गया है और जो होगा वह सब आप जानते हैं। इस लिए प्रसन्न होकर आप यह बताइए कि संसारका सारा हाल अच्छी

तरह जाननेपर भी अवतक उससे मुझे वैराग्य क्यों नहीं होता ? वे मुनिवर राजाके मनकी चिन्ताको जानकर उनके यों कहनेके उपरान्त बोले कि राजन् ! जबतक पुत्रकी अभिलाषा बनी हुई है तबतक तुम्हें वैराग्य नहीं हो सकता। और जबतक तुम्हारे शत्रुकुलसंहारक वीर बालक नहीं उत्पन्न होता तबतक वह मानसिक चिन्ता मिट नहीं सकती। परन्तु पुत्र पैदा होनेपर भी तुम्हारे वैराग्यमें विघ्न करनेवाला और एक पूर्वजन्मसम्बन्धी कारण वर्त्तमान है। वह कारण कहता हूँ —सुनो। यह तुम्हारी पटरानी पूर्वजन्ममें इसी नगरके देवांगद नाम वनियेकी लड़की थी। इसकी माताका नाम श्री और इसका नाम सुनन्दा था। यह परम गुणवती थी और इसके पितासे सब बन्धु-बान्धव परम प्रसन्न थे। नासमझ सुनन्दाने जवानीमें ही गर्भकी पीड़ासे व्याकुल और शिथिल शरीर हो जानेके कारण शोभाहीन एक दूसरी स्त्रीको देखकर ऐसी इच्छा की कि अन्य जन्ममें भी जवानीमें मेरी ऐसी दशा न हो। यही इसके इस जन्ममें अवतक पुत्र न होनेका कारण है। सुनन्दा श्रावकाचारका पालन करते हुए वह शरीर छोड़कर सौधर्म नाम स्वर्गमें देववधू हुई। उसके बाद स्वर्गभोग समाप्त होनेपर यह फिर पृथ्वीपर आई और शेष पुण्यके कारण राजा दुर्योधनकी कन्या और तुम्हारी स्त्री हुई है। इस कारण पूर्वजन्मके अशुभ कारणसे जवानीमें तुम्हारी रानीके कोई बालक नहीं हुआ। राजन् ! कुछ दिनोंमें उस दोषके शान्त होने पर निःसंशय तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा। चन्द्रमाके समान सबके मनको हरनेवाले उस परम तेजस्वी पुत्रको पृथ्वीके पालनका भार देकर तुम जिनदीक्षा ग्रहण करोगे और फिर सारे कर्मबन्धन क्षीण हो जानेपर तुम्हें निर्वाण प्राप्त होगा इस प्रकार संक्षेपसे ये वचन कहकर इष्ट-लाभकी सूचनासे राजा श्रीषेणको भलीभाँति आनन्दित करके वे मुनिवर यथेष्ट स्थानको चले गये।

और श्रावक–व्रतरूपी आभूषणोंसे अपने शरीरको अलंकृत किये हुए राजा भी अपनी राजधानीमें गये। पूर्वोपार्जित पुण्यसे ही पुरुषोंको इष्टकी प्राप्ति होती है, यह जानकर राजाने धर्ममें अपनी बुद्धिको लगाया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाग्यशाली लोगोंकी ही धर्ममें बुद्धि होती है; क्योंकि धर्ममें निष्ठा ही भविष्य अभ्युदयका प्रधान कारण है।

वे निरन्तर संयमी भिक्षुओंको आहार–दान और जिनेन्द्रकी पूजा करते थे। इसी तरह दिन बीतते बीतते नन्दीश्वर नामका महापर्व आगया। असुरलोक, देवलोक और नागलोकमें सर्वत्र उस उत्सवकी धूम मच गई। उस पर्वके दिन रानी सहित राजाने व्रत धारणपूर्वक जगद्विजयी जिनेन्द्रकी भारी पूजा की और फिर अपनी कामना पूर्ण होनेकी अभिलाषासे जिनबिम्बका अभिषेक किया। चन्द्रमाकी कला और कुल-देवताकी तरह सन्तोष–सम्पादन और अभीष्ट प्रदान करती हुई रानीने, सीप जैसे उत्तम मोतीको धारण करती है उसी तरह गर्भ धारण किया। गर्भ धारणकी अवस्थामें बड़ी बड़ी आँखोंवाली रानीका शरीर कुछ शिथिलसा हो गया और मुखकमल कुछ पीला पड़ गया। गर्भमें स्थित बालकके असंख्य गुणोंके भारी बोझसे ही जैसे उसकी गति दिन दिन धीमी पड़ने लगी। चन्द्रमाकी कान्तिको भी तिरस्कृत करनेवाले रानीके दोनों स्तनोंके अग्रभाग अधिक काले पड़ गये और उनका घेरा कुछ उज्ज्वल पीले रंगका हो आया। जिससे वह चकोरनयनी उस कमलिनीके समान जान पड़ने लगी जिसके दो फूलोंको मदान्ध भौंरे चूम रहे हों। कुचोंपर फैली हुई उज्ज्वल आभाके आगे मोतियोंके हारकी कान्ति फीकी पड़ गई। इसी कारण मानों उसने संघर्षण (रगड़ या डाह) से स्तनोंके मुखपर मैल जमा कर दिया। सच है, ऐसा कोई बिरला ही गुणी* होगा जो किसीको गुणी देखकर उससे डाह न करने

* हारमें गुण अर्थात् डोरा होता है, इसीसे उसको भी गुणी कह सकते हैं।

लगता हो । जमुहाई सखीकी तरह सदा उसके पास ही रहती थी और आलस्य भी श्रेष्ठ मित्रकी तरह उसका साथ नहीं छोड़ता था । लज्जा पेटके साथ ही बढ़ने लगी और नाभिकी त्रिवलीकी तरह फुर्ती मिट गई। रानीके दोनों नेत्र दिनपर दिन यह सोचकर उज्ज्वल होने लगे कि हमने अपनी सहज कान्तिसे ही नीलकमलोंको जीत लिया है; अब हम श्वेतकमलोंसे लागडाँट करेंगे ।

जब स्त्रियाँ गर्भवती होती हैं तब उन्हें जिस चीज़की चाह या अभिलाषा होती है उसे दौहृद कहते हैं । मौलसिरीके फूलोंके समान सुकुमार शरीरवाली रानीको केवल जिन-पूजाका ही दौहृद था । वह दौहृद, वचनहीन होनेपर भी गर्भ-स्थित बालकके जन्मान्तर-सम्बन्धकी सूचना दे रहा था;अर्थात् यह जता रहा था कि बालक अन्य जन्ममें जिन होगा। प्रसव-काल आनेपर, शुभतिथिमें, जब कि सब शुभ ग्रह'उच्च' स्थित थे, रानी श्रीकान्तासे,अपनी उज्ज्वल शरीर-कान्तिसे अन्धकारको दूर करनेवाला भावी तीर्थङ्कर कुमार उत्पन्न हुआ। सूर्यके समान परम तेजस्वी उस बालकका अभ्युदय होनेपर आकाश निर्मल होगया, और सरोवरोंमें कमलिनी-समूहकी शोभा सहसा खिल उठी । मलिनता मिट जानेसे दिशा—रूपी स्त्रियोंकी आभा उज्ज्वल हो गई और वे भली भाँति शोभाको प्राप्त हुईं । बादलोंके समान गंभीर शब्दवाले डंके और नगाड़े बजनेसे राजाका घर गूँज उठा । प्रसन्न पुरवासी लोग शीघ्रताके साथ अपने अपने घरमें भारी उत्सव—धूमधाम करने लगे । वाराङ्गनाओंके झुंडके झुंड अपने अपने घरसे निकल कर, बाहर आकर, नृत्य करने लगे । प्रजाजन इस प्रकार उच्च स्वरसे कहने लगे कि हे पृथ्वी, आज तूने अपना अद्वितीय पति पाया; अतएव तू प्रसन्न हो—तेरी बढ़ती हो । जिन्होंने आ-आकर राजकुमारके जन्मका सुसमाचार सुनाया उनको, प्रसन्नताके मारे, क्या देने योग्य है और क्या

नहीं—इसका कुछ भी विचार न करके, आनन्द-विह्वल महाराज श्रीषेणने मुँह-मागा पुरस्कार दिया। सच है, जब मन आपेमें नहीं रहता तब वह विचार नहीं कर सकता। राजकुमारके जन्मकी खुशीमें चारों ओर इतना गाना—बजाना और नाचकूद हो रहा था कि सारा नगर ही मानों मस्त हो रहा था। उस नगरमें ऐसा कोई शत्रु भी न था जिसका मन भीतरसे प्रसन्न न हो उठा हो। राजा श्रीषेणने कुलके बड़े बूढ़े लोगोंके साथ अच्छे दिन और मुहूर्तमें सुवर्ण-पुष्पोंसे सर्वज्ञ जिनदेवकी पूजा करके उस कुमारका मङ्गलकारी श्री-शब्दसे युक्त श्रीवर्म्मा यह नाम रक्खा। उदय अर्थात् ऐश्वर्यकी खान जो राजकुमार है उसका जन्म होनेसे राजा श्रीषेण भी अधिकाधिक लाभसे परम प्रसन्न हुए। उन्होंने तीव्र तेजवाले अभिमानी शत्रुओंका सिर झुका दिया और किसीके वशमें न रहनेवाली पृथ्वीको अपने पराक्रमसे वशमें कर लिया। उनको सैकड़ों निधियोंके महालाभ होने लगे और सैकड़ों राजे कर-स्वरूप धन-प्रदान करने लगे।

इति तृतीयः सर्गः।

चतुर्थ सर्ग ।
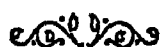
शोभासम्पन्न सुन्दर वे राजकुमार प्रजा-समूहके नेत्रोंको आनन्द देते हुए दिन दिन सरोवरकी तरह बढ़ने 'भरने' लगे। बढ़ती हुई उज्ज्वल कलाओंसे उन्नतिको प्राप्त होकर सब लोगोंको आनन्दित करते हुए कान्तियुक्त राजकुमारको लोग चन्द्रमाकी उपमा देने लगे। सूर्यके समान तेजस्वी राजकुमारने श्रेष्ठ गुरुओंकी अच्छी तरह उपासना करके उनसे कुछ ही दिनोंमें विधिपूर्वक चारों विद्या और चौसठ उपविद्या सीखलीं और उन विद्याओं और उपविद्याओंके जाननेवाले लोगोंमें सर्वोच्च आसन प्राप्त कर लिया। खानसे निकले हुए रत्नके समान अवस्थामें छोटे होनेपर भी वे राजकुमार उज्ज्वल किरणतुल्य अपनी कलाओंके बढ़े हुए गुणोंमें सबसे बड़े हुए। राजकुमारको अपने अपने गुणकी श्रेष्ठ शिक्षा देनेके लिए धनुर्विद्या, खड्ग-विद्या, हाथी और घोड़ेपर चढ़नेकी विद्या आदिके उस्ताद लोग सदा सेवामें रहते थे। लक्ष्मी अर्थात् शोभा रातको चन्द्रमाके पास रहती है और दिनको कमलके पास चली जाती है, इसप्रकार स्वभावसे ही चञ्चल होनेपर भी राजकुमारके शरीरको छोड़नेकी उसे इच्छा ही नहीं होती थी। कुमारकी भारी उदारताको देखकर अन्य उदार लोगोंने अपनी उदारताका वृथा अभिमान त्याग दिया। सो उन्होंने ठीक ही किया। दूसरेसे परास्त होजानेपर मानीका मान करना नहीं सोहता। उनके साथसे और कायर लोग भी शूर होगये, फिर उन महात्माका क्या कहना है। उनमें तो सिंहकी ऐसी शूरता स्वाभाविक ही थी। नीतिशास्त्रको जाननेवाले लोग जिनकी इच्छा करते हैं वे उदारता, शूरता और सत्य ये तीन गुण एक साथ ही जैसे

आपसमें चढ़ा ऊपरी करके, उनमें बढ़ने लगे। सब प्रजामण्डलको धनधान्यसे परिपूर्ण और महान् गुणोंसे युक्त बनाते हुए नीतिदर्शी राजकुमार ही आश्रित लोगोंके यथार्थ प्रभू और गुरु हुए। सम्पूर्ण गुणोंके आधाररूप राजकुमारने केवल अपने पक्षके लोगोंको ही अत्यन्त हर्षित नहीं किया; किन्तु दुष्ट-स्वभाववाले शत्रुओंको भी खुश कर दिया। पुण्यात्मा लोगोंके लिए ऐसा कोई कार्य्य नहीं जो असाध्य हो। त्रैलोक्यकी शोभाको परास्त करदेनेवाला उनका रूप देखकर ही उसे देखनेके लिए अतृप्त ब्रह्माने अपने चार मुख कर लिये। इसके सिवा उनके चतुरानन होनेका और कोई कारण हमें नहीं जान पड़ता। वे कुमार ऐश्वर्यके निवास-स्थान और विजय-लक्ष्मीके आश्रय-स्थान तथा सबके मनको भानेवाले और सम्पूर्ण नीति-निष्ठ थे तो भी उन्हें गर्वका लेश न था। सच है, महानुभाव लोगोंको अभिमान नहीं होता। उन कुमारने काम, क्रोध, हर्ष, मान, लोभ और मद इन भीतरी छहों शत्रुओंको जीत लिया था। वे कृतज्ञ (गुणग्राहक) और स्वयं सब श्रेष्ठ गुणी लोगोंमें भी श्रेष्ठ थे। इस प्रकार उन कुमारमें सब गुणोंको रहते देखकर ईर्षाके मारे ही मानों सब दोष-समूह उन्हें छूते भी न थे। उन कुमार श्रीवर्माने अपने पिताकी आज्ञासे विधिपूर्वक एक परम सुन्दरी राजकुमारीसे अपना विवाह किया। शरीरमें प्रभाका अधिक प्रभाव अर्थात् चमत्कार होनेसे उस राजकुमारीका प्रभावती यह नाम सर्वथा सार्थक था। इसके बाद विवाहके उपरान्त महाराज श्रीषेणने जितेन्द्रिय जनोंमें श्रेष्ठ उन कुमार श्रीवर्माको युवराज बना दिया और आप निश्चिन्त चित्तसे निर्विघ्न राजसुख भोग करने लगे। इच्छा करते ही निकट प्राप्त जो मनोहर भोग हैं उनमें राजाका चित्त ऐसा रम गया कि बहुत समय बीतनेपर भी उन्हें यह ख्याल नहीं हुआ कि कितने दिन बीते। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मोहमें ज्ञान शिथिल हो जाता है।

एक दिन वे राजा अपने महलमें वैठे हुए थे, इतनेमें उन्हें आकाशसे उल्का-पात होते देख पड़ा। वैसे ही उन्हें सहसा विषयभोगसे वैराग्य हो गया। विषयभोगमें बीते हुए अपनी आयुके पिछले समयका भी उन्हें ध्यान आया। वे इस प्रकार चिन्ता करने लगे "अहो! मनुष्योंका जीवन और जवानी सब कुछ इसी तरह अस्थिर है। तथापि मेरे समान पुत्र और स्त्रीकी ममतामें मूढ़ मन्दमति मनुष्य उसे नहीं जानता! यह मूर्ख जीव नदी-तरङ्गके समान चंचल रूप-रस आदि पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंमें ऐसी लोभ-लालसा करने लगता है कि फिर मोहवश होजाता है और अनन्त दुःख देनेवाले आरम्भ-दोषोंपर ध्यान ही नहीं देता। यदि यह मूढ़-बुद्धि जीव क्षणभरमें क्षीण होजानेवाली आयु अर्थात् जीवनको नित्य समझकर अभिमान न करे तो कर्म-पाशसे विवश होकर अनन्त योनियोंमें इसे दुःख न भोगना पड़े। स्वप्नके समागमके समान क्षण-स्थायी ये पुत्र स्त्री आदि घड़ीभरमें नष्ट होजाते हैं और फिर घड़ीभरमें दृष्टिगोचर होते हैं। इसीसे ज्ञानी पुरुष इन कर्म-बन्धके कारण-रूप सम्बन्धोंपर विश्वास नहीं करता; अर्थात् इन्हें नित्य समझकर इन्हींमें नहीं फँसा रहता। जो दुःखसे-बड़े कष्टसे मिलती है, चंचल है, जिसका अन्त दुःखदायक है अर्थात् जिसका वियोग अनेक दुःखोंका कारण है उस लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्यके लिए यह जीव इतना परिश्रम करता है। अहो, इसके मोहको तो देखो! जो लोग क्षय-रहित अथवा निर्विघ्न मुक्तिको छोड़कर अनेक प्रकारसे क्षय होनेवाके अथवा अनेक विघ्नोंसे परिपूर्ण ऐश्वर्यके पानेका यत्न करते हैं वे अज्ञानी शीतल चन्दनके पानीको छोड़कर कीचड़का पानी पीते हैं! यह मूर्ख जीव "यह मेरा है" और "मैं इसका हूँ" इस प्रकारके अभिमानके बन्धनमें पड़कर रत्तीभर सुखके लिए पहाड़ इतने दुःखको कैसे स्वीकार करता है! पाप-कर्म क्षय होनेपर काकतालीय न्यायसे किसी तरह यह मनुष्य-

जन्म पाकर संसारका हाल जाननेवाले पुरुषको अपना हित करनेमें असावधानता कभी न करनी चाहिए। संसारकी असारतापर यों अपने मनमें विचार करते हुए राजा श्रीषेणको वैराग्य होगया–विषयानुराग जाता रहा। अपने हितमें प्रवृत्ति होना ही बुद्धिका फल है। दूसरे दिन राजाने युवराजको बुलाया और प्रणाम करके हाथ जोड़े खड़े हुए युवराजसे, उनके मुखपर वैराग्यको सूचित करनेवाली दृष्टि डालकर, यों कहा–जैसे आँधी झोपड़ीको हिला देती है उसी तरह बुढ़ापा आकर जबतक शरीरको नहीं शिथिल कर देता और बढ़ा हुआ नेत्र-दोष (तींगुर) जबतक देखनेकी शक्तिको नहीं नष्ट कर देता, तीर्थस्थानोंमें जानेमें समर्थ ये पैर जबतक अपनी गति-शक्तिको नहीं गँवाते, और धर्मकथाओंके सुननेका साधन जो श्रवण-शक्ति है वह जबतक समय पाकर घट नहीं जाती, अवस्थाके धर्मानुसार बढ़ा हुआ मोह जबतक ज्ञानको भ्रष्ट नहीं कर देता और जबतक शास्त्र पढ़नेमें प्रवीण वाणी लटपटाती नहीं, तबतक अर्थात् उसके पहले ही, मैं, दुःख दावानलमें जलते हुए आत्माको, जिनदीक्षा लेकर, यत्नपूर्वक संसारसे निवृत्त करना चाहता हूँ। इसमें रुकावट डालकर तुम मेरे शत्रु न बनना। संसारका सिलसिला बनाये रखनेवाली लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्यसे तो मेरा चित्त पहलेहीसे हटा हुआ है। मैं केवल तुम्हारे ही अभ्युदयकी नित्य अपेक्षा करता हुआ राज-पदपर स्थित था। अब तुम विपत्तिरहित या जितेन्द्रिय और शान्तशील होकर अपने तेजसे शत्रुओंके उदयको मिटाते हुए इस समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीमण्डलका पालन करो। जिसतरह सूर्योदयसे चक्रवाक पक्षी प्रसन्न होते हैं उसीतरह जिसमें सब प्रजा तुम्हारे अभ्युदयसे खेदरहित अर्थात् सुखी हो वही, चरों (जासूसों) के द्वारा देखकर जानकर, करो। वैभवकी इच्छासे तुम अपने हितू लोगोंको पीड़ा मत पहुँचाना। नीतिके पण्डितोंका कहना है कि प्रजाको खुश रखना–अपनेपर

अनुरक्त बनाना अथवा प्रजासे प्रेमका व्यवहार करना ही वैभवका मुख्य कारण है। जो राजा विपत्ति-रहित है उसे नित्य ही सम्पत्ति प्राप्त होती है और जिस राजाका अपना परिवार वशवर्त्ती है उसे कभी विपत्तियाँ नहीं होतीं। परिवारके वशवर्ती न होनेसे भारी विपत्तिका सामना करना पड़ता है। परिवारको अपने वश करनेके लिए तुम कृतज्ञताका सहारा लेना। कृतघ्न पुरुषमें और सब गुण होनेपर भी वह सब लोगोंको विरोधी बना लेता है। तुम कलिदोष जो पापाच्-रण है उससे बचे रहकर 'धर्म'की रक्षा करते हुए 'अर्थ' और 'काम'को बढ़ाना। इस युक्तिसे जो राजा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक दोनोंको बना लेता है। सावधान रहकर सदा मंत्री पुरोहित आदि बड़े-बूढ़ोंकी सलाहसे अपने कार्य करो। गुरु (एक पक्षमें उपाध्याय और दूसरे पक्षमें बृहस्पति) की शिक्षा प्राप्त करके ही नरेन्द्र सुरेन्द्रकी शोभा या वैभवको प्राप्त होता है। प्रजाको पीड़ा पहुँचानेवाले कर्मचारियोंको दण्ड देकर प्रजाके अनुकूल कर्मचारियोंको दानमानादिसे तुम बढ़ाना। ऐसा करनेसे बन्दी-जन तुम्हारी कीर्त्तिका कीर्त्तन करेंगे और उससे तुम्हारी कीर्त्ति दिग्दिग-न्तरमें व्याप्त हो जायगी। तुम सदा अपनी इच्छाको छिपाये रखना। काम करनेसे पहले यह न प्रगट हो कि तुम क्या करना चाहते हो। क्योंकि जो पुरुष अपने मन्त्र (सलाह) को छिपाये रखते हैं और शत्रुओंके मन्त्रको फोड़फाड़ कर जान लेते हैं वे शत्रुओंके लिए सदा अगम्य रहते हैं। जैसे सूर्य तेजसे परिपूर्ण हैं, और सब आशाओं (दिशाओं) को व्याप्त किये रहते हैं, तथा भूभृत् जो पर्वत हैं उनके सिरके अलंकाररूप हैं, एवं उनके कर अर्थात् किरणें बाधाहीन होकर पृथ्वीपर पड़ती हैं वैसे ही तुम भी तेजस्वी होकर सबकी आशाओंको परिपूर्ण करो और भूभृत् जो राजा लोग हैं उनके सिरताज बनो तथा

तुम्हारा 'कर' पृथ्वीपर बाधाहीन होकर प्राप्त हो अर्थात् अनिवार्य हो। इस प्रकार राजाने शिक्षाके साथ साम्राज्य-सम्पत्ति अपने पुत्रको दी। पुत्रने भी पिताके अनुरोधसे उसे अङ्गीकार किया। सुपुत्र वही है जो सर्वथा पिताके अनुकूल कार्य करे। इसके बाद पुत्रको राज्य-शासनका भार सौंपकर और अपने बन्धु-बान्धवोंसे पूछकर-विदा होकर वे संग-मुक्त राजा श्रीप्रभाचार्यके चरणोंके निकट तप करके सिद्धि-रूपिणी वधूके वर बने, अर्थात् मोक्षको प्राप्त हुए।

इधर कुमार श्रीवर्मा भी पिताके वियोगसे कुछ दिन शोक करते रहे। उसके बाद मंत्री, मित्र आदि सहायकोंके समझानेसे शोक शून्य होकर दिग्विजय करनेके लिए निकले। नीतिशास्त्रके ज्ञाता श्रीवर्माने अपने पास मंत्री, पुरोहित, सेनापति, दुर्गाधिकारी, कर्माधिकारी, कोषरक्षक और ज्योतिषीको रक्खा। और, शिकारी, भील, शबर आदिकी सेनाको सबसे आगे रक्खा; बीचमें प्रबल सेनासहित सामन्तगणको। इस प्रकार मुकुटकी चूड़ामणिके प्रकाशसे दिशाओंके प्रकाशित करते हुए श्रीवर्माने दिग्विजय यात्रा की। उनके उछल कर चलते हुए घोड़ोंकी टापोंसे उड़ी हुई पृथ्वीकी गधोंके रंगकी काली धूलने केवल दिशाओंके मुखोंको ही मैला नहीं कर दिये, बल्कि शत्रुओंकी स्त्रियोंके मुख भी मैले कर दिये। अनुकूल वायुकी झोंकमें फहराती हुई उनकी सिंहादिके चिन्होंसे युक्त सेनाकी ध्वजाओंसे केवल सूर्य ही नहीं छिप गया, किन्तु शत्रुओंका प्रभाव भी छिप गया (अथवा अस्त हो गया)। प्रस्थानके समय उनके हाथियोंके बहते हुए मद-जलसे केवल धूल ही नहीं बैठ गई, उसके साथ ही शत्रुओंका तेज भी बुझ गया। उनके प्रस्थानके समय उसकी सूचना देनेवाले नगाड़ेके शब्दने पर्वतोंकी कन्दराओंमें व्याप्त होकर केवल पर्वतोंके शिखर ही नहीं गिरा दिये; बल्कि शत्रुओंके हृदयोंको भी गिरा दिया—साहसहीन कर दिया। जहाँ जहाँ वे पहुँचे वहाँ वहाँके रत्न भरे

थाल (भेंटके लिए) और दही (मङ्गलके लिए) लिये हुए दूरहीसे झुक कर प्रणाम करते हुए ग्रामाधिकारियों और पुरवासियोंने आ-आकर उनकी अगवानी की। अतुल पुण्यकी शक्तिसे सम्पन्न श्रीवर्माने पराक्रम प्रकट करनेके लिए दिग्विजय-यात्रा की है, यह समाचार सुनकर बड़े भारी भयसे व्याकुल हो रहे हैं मन जिनके ऐसे शत्रु लोगोंमें इस प्रकारकी चेष्टायें देख पड़ने लगीं। कोई तो उनकी सेनाके द्वारा अपने दलेमले जानेके भयसे स्त्री और पुत्र आदिको छोड़कर केवल अपने शरीरकी रक्षाको ही गनीमत समझ कर--अर्थात् अपने प्राण लेकर ऐसे भागे कि हरिणोंके साथ जंगलोंमें पहुँच गये। बहुतसे भयसे विह्वल हो कठोर धारावाले कुठारको कंठसे लगा कर उन शरणागत-रक्षक महाराजकी शरणमें आगये। जैसे भव्य पुरुष गर्वरहित हो जिनदेवकी शरणमें आते हैं। कुछ लोग महागर्व-रूपी गजराज पर चढ़कर अपनी वीरताके घमंडमें भरी हुई सेनाके साथ उनके शस्त्रोंकी अग्नि-शिखामें पतंगके समान भस्म होगये। कुछने दर्पहीन होकर वाहन, धन-धान्य और सम्पूर्ण रत्न भेंटमें देकर हेमन्त ऋतुके वृक्षोंकी तरह (हेमन्तमे पतझाड़ होता है) केवल अपनी जान बचाली। शत्रुओंसे हाथ जुड़वा कर, उनके मान-मदको मिटाकर और उनसे सारांश-स्वरूप रत्न आदि लेकर श्रीवर्माने फिर उनको उनका राज्य दे दिया। सज्जनोंका कोप झुकते ही जाता रहता है। युद्धभूमिमें मारे गये शत्रुओंके पुत्रगण कण्ठमें कुठार दिये हुए शरणमें आये। दयालु श्रीवर्माने उन पर अनुग्रह किया। दीनों पर दया दिखाना कृपालु लोगोंके लिए उचित ही है। जिनके गर्व जाते रहे हैं और जो अभय पागये हैं ऐसे मण्डलाधिप राजा लोग सेनासहित श्रीवर्माके साथ चलने लगे। उनके आ-आकर मिलनेसे श्रीवर्माकी सेना समुद्रको भी मानों अपने विस्तारसे जीतनेका उद्योग करने लगी। भेंटमें आये हुए हाथियोंसे श्रीवर्माका सिंहद्वार किसी समय शून्य नहीं रहता था। उन

हाथियोंके मदजलके सुगन्धको पाकर दूर दूरसे भौंरे खिंचे चले आते थे और मदजलकी धाराओंसे भीगकर धूल बैठी रहती थी। सेवावृत्तिमें चतुर पहाड़ी लोग भयके मारे हाथीदाँत, चमरी-गायके बाल (जिनके चँवर बनते हैं) और पिंजड़ोंमें बन्द शेरोंके बच्चे आदि सामग्री लेकर श्रीवर्माकी सेवामें आकर उपस्थित हुए। श्रीवर्माने अपने अपने द्वीपों (टापुओं) की विचित्र वस्तुएँ लेकर उपस्थित हुए द्वीप-पति राजोंको कृपादृष्टिसे सन्तुष्ट और सत्कृत किया। प्रभुओंको उचित व्यवहारकी पूरी जानकारी होती ही है। सूर्य जिस दिशाको छोड़ते हैं उसे 'अंगारिणी' और जिस दिशाको जाते हैं उसे 'प्रधूमिता' कहते हैं। सूर्यके समान श्रीवर्मा भी जिस दिशाको छोड़ते थे वह शत्रुओंके शवोंकी चिताओंसे अंगारिणी (आगके अंगारोंसे युक्त) होती थी और जिस दिशाको जाते थे वह दिशा भागते हुए शत्रुओंकी सेनाओंके रजसे प्रधूमिता (मैली) हो जाती थी। समुद्रने भी, उसके तट पर जब श्रीवर्माकी सेना पहुँची, तब लहर-रूपी हाथोंसे चमकीले मोतियोंके ढेर किनारे लगाकर, जैसे डरके मारे उनको 'कर' दिया। पुण्यकी राशि जो श्रीवर्मा हैं उनकी आज्ञाके प्रतिकूल चलनेवाला कोई पुरुष किसी द्वीपमें, किसी दुर्ग (गढ़) में किसी देशमें, दिशामें या विदिशामें कहीं नहीं था। दैवके अनुकूल होने पर कौन नहीं अनुकूल होता? पहले 'कर' (एक अर्थ हाथ और दूसरा राज-स्व) से सर्वत्र स्पर्श करके फिर समान रति (एक अर्थ भोग और दूसरा अनुराग) प्रदान कर समुद्र-जल-वस्त्रधारिणी सारी पृथ्वीको उन्होंने स्त्रीके समान वश-वर्त्तिनी बना लिया। इस प्रकार चारों समुद्र-पर्यन्त सीमावाली सब प्राणियोंका धायके समान पालन करनेवाली जो पृथ्वी है उसको अपने अधिकारमें करके बन्दीजनोंके अभिनन्दन और अभिवन्दनको ग्रहण करते हुए श्रीमान् श्रीवर्मा महाराज फिर अपने श्रीपुरमें आकर उपस्थित हुए। नवीन उदय (ऐश्वर्य) को प्राप्त

प्रतापपूर्ण और सब दिशाओं पर अधिकार जमाये हुए श्रीवर्मा, जब सूर्यके समान लौट कर आये, तब प्रजाओंके झुंड, उन्हें प्रणाम करनेके लिए, अर्घ्य (पूजाकी सामग्री) हाथमें लेकर उनकी ओर चले । बाहरी मैदानोंमें लगी हुई साग-पातकी वारियोंसे मनोहर श्यामशोभा-सम्पन्न स्थलोंको देखते हुए पुराने गजराज पर चढ़े हुए राजा श्रीवर्मा अपने सिंहद्वारके सामने आये । जोरको सह सकनेवाले मजबूत पेड़ोंकी जड़ोंमें जंजीरोंसे बँधे हुए, मदान्ध, भ्रमर-शोभित-मस्तक गजराजोंको श्रीवर्माने देखा, मानों वे सिर हिलाकर उन्हें प्रणाम कर रहे हैं। खाईके किनारे चारों ओर बैठे हुए मनोहर शब्द करते शंखके समान श्वेतवर्ण राजहंसोंके झुंडने आये हुए श्रीवर्माके मनको चलनेकी शक्तिके साथ ही हर लिया । अर्थात् उनको देखकर राजा ऐसे मोह गये कि आगे बढ़ ही न सके । उन्होंने देखा कि कमल-रजसे सुनहले रंगकी हुई मछलियोंके झुंड मानों उन्हें देखनेके कुतूहलसे ही खाईके जलके ऊपर चारों ओर उछल उछल कर निकल रहे हैं । झरोखोंसे बाहर अपने मुखारविन्दोंको निकाल निकाल कर पुरकी स्त्रियाँ उनके नयन-मनोहर रूपको नेत्र-रूप अञ्जलियोंसे मानों पीने लगीं । उनके नीवी-बन्धन कामोद्दीपनसे ढीले पड़ गये; पर उन्हें कुछ भी होश न था । बढ़ते हुए नवयौवनके उदयकी शोभासे सम्पन्न और अपने शरीरकी कान्तिसे चन्द्रमाको भी परास्त करनेवाले महाराज श्रीवर्माने पुरमें प्रवेश किया । और, उसके साथ ही अन्तःपुरकी रानियोंके हृदयमें कामदेवने भी प्रवेश किया । शत्रुओं पर विजय पाये हुए महाराज श्रीवर्मा, चन्द्रमाके समान कान्तिवाली शील-सौभाग्यवती विमल-मूर्तिधारिणी साक्षात् कामकी शक्ति (रति) के समान रानी प्रभावती देवीके साथ हास-विलास-पूर्वक अपूर्व रति-सुखको भोगते हुए श्रीपुरमें राज्य करने लगे ।

एक दिन प्रकृतिकी शोभाको देखते हुए शत्रु-विजयी महाराज श्रीवर्माने शरद् ऋतुमें मेघोंको उत्पन्न होते ही मिट जाते देखा। इसीसे संसारकी स्थितिको जाननेवाले राजाको सहसा वैराग्य हो आया। सज्जन लोग विषयोंमें अत्यन्त आसक्त नहीं रहते। तब उन्होंने अपने पुत्र श्रीकान्तको सारा राज्य सौंप दिया; और फिर श्रीप्रभ मुनिको प्रणाम करके प्रव्रज्या ग्रहण-पूर्वक शान्तिमें मन लगाकर ऐसा कठिन तप किया जिसे हर एक नहीं कर सकता। उसके बाद ७२ वर्षकी अवस्था तक यहाँ रहकर, वे श्रीधर नामसे सौधर्म-नामक प्रथम स्वर्गमें, परम ऐश्वर्यसे सन्तुष्ट हो, देव-दाराओंके नेत्रोंको नित्य प्रसन्न करते हुए, जाकर रहने लगे।

इति चतुर्थः सर्गः।

पञ्चम सर्ग।

दक्षिण दिशामें एक धातकी-खण्ड है। उसमें उसका अलङ्कार स्वरूप एक इषुकार नाम (बाणके आकार) का पर्वत है। वह पर्वत बहुत ऊँचा है। उसके सभी स्थान सुशोभित हैं। उस पर्वतके शिखरों पर देवता लोग विचरते हैं। उसके पूर्व भरत-क्षेत्रमें, जहाँ भरत आदि राजा जन्म लेचुके हैं, अलका नाम प्रदेश है, जिसका वर्णन बड़े बड़े कवि ब्रह्मा भी नहीं कर सके। वह देश अपने हृदयमें (अर्थात् भीतर) रमणी ऐसी स्थल-कमलिनियोंको धारण किये हुए है। कमल-पुष्प ही उनके मुख हैं (क्योंकि मुखकी कमलसे उपमा दी जाती है); भँवरी ही उनकी आँखें हैं (क्योंकि नेत्रकी उपमा मधुकरीसे दी जाती है); नवीन नाल-दण्ड ही उनकी दुर्बल बाहुएँ हैं (कमलिनीकी डंठीसे बाहुओंकी उपमा दी जाती है)। उस देशके आसपासके गाँवोंके किनारे लगी हुई अन्नकी ढेरियाँ पहाड़ोंके समान धरती पर फैली हुई, भारी, और अपनी चोटियोंसे बादलोंको छूनेवाली अर्थात् आकाशसे बातें कर रही हैं। वहाँके सरोवर महात्मा लोगोंकी बुद्धिके समान विमल आकारवाले, गंभीर और इसीसे आदरपूर्वक प्रवेश करनेवालोंके लिए भी अथाह तथा सब लोगोंके मनभाये हैं। लोगोंके नहाने लायक जलवाली नहरों और पक्षियोंके शब्दसे मनोहर तटवाली नदियों तथा कमल-काननोंसे अलङ्कृत सरोवरोंसे वह देश चारों ओर सुशोभित है। वहाँ न कभी प्रचण्ड गर्मी होती है, न तेज़ जाड़ा पड़ता है, न आँधीसे धूल उड़ती है। वहाँ सदा समयके अनुकूल माफ़िककी गर्मी सर्दी और वर्षा होती है; जो किसीको खलती नहीं। वहाँके रहनेवाले किसी भी ऋतुमें कभी व्याकुल नहीं होते। वह देश अपनी स्त्रियोंके समान सुपयोधरा (नदी पक्षमें सुन्दर जल धारण करनेवाली और स्त्री-पक्षमें सुन्दर स्तनवाली) महानदियोंको गोदमें

लिए हुए है। भारी रेती उनकी उज्ज्वल भारी जंघायें हैं। भँवर जिनमें नाभिके समान जान पड़ते हैं ऐसे मध्य-स्थल ही उनकी 'पेटी' हैं। वहाँ जवान लोगोंको जुआ आदि बुरे व्यसन (लतें) नहीं हैं। वृद्ध लोगोंकी बुद्धि या स्मरण-शक्ति मोहसे भ्रष्ट नहीं होगई है। गुणी लोग निन्दित दोषों (दुराचारों) से दूषित नहीं हैं और कोई अपमृत्युसे नहीं मरता। विना किसी बाधा-विघ्नके उपजे हुए नवीन अन्नोंके ढेरोंसे चारों ओर परिपूर्ण वह देश 'देव-कुरु' की उपमाको प्राप्त होकर सब लोगोंके नेत्रोंको आनन्द देता है। वहाँ वृक्षोंकी पङ्क्तियाँ पुष्प-परिपूर्ण हैं। सब पुष्प फल-युक्त हैं। सब फल मधुर हैं। वहाँ कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो जन-समूहको आनन्द-दायक न हो। उस प्रदेशमें त्रिलोक-प्रसिद्ध कोशला नाम पुरी है। उसमें बड़े बड़े वैभवशाली पुण्यजन (पुण्यात्मा कुबेरकी पुरीके पक्षमें देवगण) रहते हैं; अत एव वह कुबेरकी अलका-पुरीसे समता रखती है। उस पुरीमें, शरद ऋतुके आगमनके समय, अत्यन्त ऊँचे महलोंकी चोटियोंसे पेट फट जानेके कारण ही मानों पतली तहवाले बादल बड़ी बड़ी बूँदोंसे बरसते हैं। रतिके समय पतिके पास रत्न-दीपकोंको साधारण दीपक समझ कर, बुझानेकी इच्छासे नई ब्याह कर आई मुग्धा लज्जासे सिर झुकाये हुए अपनी मालाके पुष्पोंका पराग फेंकती है और उसका यह भोलापन देखकर पति हँसता है। पुण्यात्मा लोगोंके महलोंके मणिमय फर्शों पर तारागणका प्रतिबिम्ब पढ़नेसे वे कुन्द-पुष्प-समूहसे जान पड़ते हैं। कृष्णपक्षके अन्धकार-मय सन्ध्याकालमें अभिसार करके अपने प्रियतमोंके पास पधारनेकी इच्छा करनेवाली परकीयाओंके गमनमें मंद मुसकानसे अन्धकारको मिटानेवाला उनका मुखचन्द्र ही विघ्न डालता है। वहाँके ऊँचे महलोंकी चोटियों पर नीलमकी शिलायें जड़ी हुई हैं। उनकी कान्ति मिल जानेसे चन्द्रमाके मण्डलमें श्याम आभा देख पड़ती है; जिससे जान पड़ता है कि वहाँकी

स्त्रियोंके मुखचन्द्रकी कान्तिके आगे परास्त होकर ही जैसे चन्द्रमा काला पड़-गया है-अर्थात् मलिन होगया है। उस पुरीकी चहारदीवारीके शिखरों (बुर्जियों) पर लिपटे हुए शरद् ऋतुके बादलोंके टुकड़े देखकर अनुमान होता है कि मानों वे सूर्यके घोड़ोंके मुँहका फेन है और वह फेन उस चहार-दीवारीको लाँघनेमें थक जानेके कारण ही घोड़ोंके मुँहसे निकला है। स्त्रियोंसे गतिकी शिक्षा प्राप्त करनेकी इच्छासे ही मानों राजहंस-समूह वहाँके घरोंमें बने हुए क्रीड़ा-सरोवरोंको छोड़कर निकटवर्ती निर्मल जलवाले मानसरोवरमें नहीं जाते। वहाँ, रातको, अनेकानेक गोपुरों (अंटियों) के शिखरों (बुर्जियों) पर लगी हुई स्फटिक-शिलाओं-के ऊपर प्रतिबिम्ब पड़नेसे अनेक-किरण-युक्त होकर, नक्षत्र भी सहस्र-किरण (हज़ार किरणवाले, पक्षान्तरमें सूर्य) बन जाते हैं। उस पुरीकी स्त्रियोंको देववधुओंके समान सुन्दर सुकुमार शरीरवाली बनाकर, पीछेसे विधाताने मानों इस डरसे कि देवतोंकी स्त्रियाँ और ये स्त्रियाँ एकमें मिल न जायँ, उनके नेत्रोंमें पलकें लगादीं; और, इस भेदसे उन्हें भिन्न कर दिया। (देवतोंके पलकें नहीं लगतीं—ऐसा प्रसिद्ध है) अपनी शोभा और वैभवसे देव-पुरीको परास्त करनेवाली उस पुरीमें यही एक बड़ा भारी दोष है कि भ्रमरगण कमलके भ्रमसे सुमुखी सुन्दरियोंके मुखोंको घेरे रहकर उन्हें सताते हैं।

उस पुरीमें एक अजितञ्जय नामके राजा हुए। उनमें नित्य वृद्धिको प्राप्त प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति, ये तीनों शक्तियाँ थीं। उनके चरणकमलोंको बड़े बड़े राजा आकर, सिर झुका कर, प्रणाम करते थे। उन्होंने न्याय और पराक्रमसे सब जगत्को जीत लिया था। चन्द्रमाकी तरह उन्होंने कमल-नाल-तन्तुके समान उज्वल, जनसमूहके सन्तापको दूर करनेवाले और तुला (राशि और पक्षान्तरमें उपमा) से अतीत अपने किरण-सदृश गुणोंसे संसारमें सब दिशाओंको उज्ज्वल कर

दिया। "मेरे प्रताप (एक पक्षमें पराक्रम, दूसरेमें तेज) को इस जगत्में कौन जीत सकता है—" यों गर्व करके सूर्य पहले उदित होते हैं। परन्तु पीछेसे राजा अजितञ्जयके महान् तेजको देखकर लज्जितसे होकर वे अस्त हो जाते हैं। वे सत्पुरुप राजा जैसे ऐश्वर्यसे बड़े थे वैसे ही अपनी स्वाभाविक नम्रतासे भी महत्वको प्राप्त थे। वास्तवमें महत्त्वका कारण केवल ऐश्वर्य ही नहीं होता। गुण-सम्पत्ति ही पुरुषको गौरव देती है। त्रिभुवनमें व्याप्त राजाकी कीर्तिसे उनके महान् धैर्यगुण अर्थात् गंभीरताका निश्चय करके लवण समुद्रने अपनी कीर्ति (गंभीरताकी प्रसिद्धि) के कम होनेसे ही मानों अपने कलेवरमें कालिमा धारण करली है—अर्थात् शोचसे काला पड़ गया है (खारी समुद्रका जल श्यामवर्णका है)। शत्रु-वंश-समूहके लिए अग्नि-तुल्य और मित्रोंके मुख-कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले उन राजाने अपने तेजसे केवल सूर्यको ही नहीं परास्त किया, वल्कि कान्तिकी कमनीयतासे चन्द्रमाको भी जीत लिया। वे राजा गुरु (शिक्षादाता और बृहस्पति), ईश्वर (समर्थ और शिव), नरकभित् (नरक-नाशक और नरकासुरको मारनेवाले कृष्ण-रूप विष्णु), धनद (धन देनेवाले और कुबेर), कमलालय (लक्ष्मीके निवासस्थान और ब्रह्मा), शिशिरगु (शीतल वचनवाले और चन्द्रमा), बुध (पण्डित और बुधग्रह) और सुगत (पूर्णज्ञानी और बुद्ध) होनेके कारण इस पृथ्वीमण्डलमें सचमुच ही सर्व देवमय थे। अपने पराक्रमकी आगमें शत्रुओंको स्वाहा करनेवाले और अपने गुणोंसे सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका मनोरञ्जन करनेवाले उन महातेजस्वी महाराजके रक्षक होने पर यह पृथ्वी सर्वदा उपद्रवसे रहित होकर भरीपुरी होने लगी। शत्रुनारियोंके आँसुओंके जलसे महान् वैरकी आगको बुझानेवाले उन सत्पुरुष राजाका भारी प्रताप सूर्यके त्रिभुवनगामी तेजका सहायक अर्थात् साथी हुआ।

स्वयं अपने पराक्रमसे ठाने हुए रणमें अनुराग रखनेवाले वे राजा गर्वित सिंहशावककी तरह युद्धभूमिमें परम प्रतापी शत्रुसेनाको कीड़ेकी तरह समझते थे। उन राजाने अपने अतुल प्रतापसे सूर्यके तेजको भी परास्त कर दिया। उनके दिग्विजय करने पर दिशाओंके राजा लोगोंके अपने त्रिभुवन-प्रसिद्ध नाम अर्थ-शून्य रह गये। वे राजा जय-शाली थे (जय नामका एक दिग्गज भी है) और सहज भद्रता अर्थात् भलेपन या मंगलसे विभूषित थे (भद्र जातिका हाथी भी होता है)। वे भारी वंश (कुल, पक्षान्तरमें हाथीके पीठकी हड्डी) वाले थे। ऐसे कीर्त्ति-शाली वे राजा दिक्करी (दिग्गज और पक्षान्तरमें सब दिशाओंके राजा-ओंसे 'कर' लेनेवाले) होने पर भी मद (अहङ्कार) और मद-जलसे रहित थे। परिघ (बेलन) ऐसी परिपुष्ट भुजाओं पर समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका भार उन राजाके धारण करलेने पर भारी भारसे दबे हुए शेषनागको बहुत दिनोंके बाद शिर उठाने (गर्दन सीधी करने) का अवसर प्राप्त हुआ।

अपने रूपके विलाससे मनको रमानेवाली और उत्तम कुलकी कन्या अजितसेना देवीके साथ महाराज अजितञ्जयका विवाह हुआ। उस समय वे प्रदोषके समय चाँदनीसे संयुक्त चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए। सब सुरों और असुरोंकी सुन्दरियोंका समूह बनाते बनाते विधाताको जो अपने कार्यमें निपुणता प्राप्त हुई थी उसे प्रकट करके (अर्थात् उसका नमूना) दिखानेके लिए ही मानों उसने अजितसेना देवीकी सृष्टि की। उनके शरीरके ललित अङ्ग-प्रत्यङ्ग ऐसे सुडौल और सुन्दर थे कि उनके आगे रतिके रूपकी शोभा भी फीकी थी। ऐसे शुभलक्षण-सूचक अङ्गोंसे विभूषित होनेके कारण रानीको आभूषणोंकी कोई ज़रूरत नहीं थी। आभूषणोंको केवल विभवके लिए—मङ्गलके लिए वे धारण किये हुए थीं। चन्द्रमाके अस्त होने पर भी पृथ्वीतल चन्द्रमासे रहित नहीं

होता था। उन रानीका मुखचन्द्र मंद मुसकानकी उज्ज्वल चाँदनी फैला-कर प्रकाशमान रहता था। गुण-रूप आभूषणोंसे विभूषित उन राजा और रानीके, सौधर्म नामक स्वर्गसे आकर स्वर्गपति श्रीधरदेवने अलौकिक सुन्दर शरीरसे जन्म लिया। इस जन्ममें उनका नाम अजितसेन हुआ। जन-समूहके मन भानेवाले-अनुराग बढ़ानेवाले—सुन्दर स्वरूप धारी पृथ्वी-तिलक अजितसेन लड़कपनमें ही चन्द्रमाके समान विद्याभ्याससे, कलाओं (कलाविद्याओं और चन्द्रमाके पक्षमें कलाओं) से परिपूर्ण होने लगे। गुणों (कमल-तन्तुओं और पक्षान्तरमें शूरता आदि) से निर्मित, सुरभित (राजाके पक्षमें निष्कलङ्क अथवा उज्ज्वल और कुमुद-पक्षमें सुगन्धित) अनुराग उत्पन्न करनेवाले, अतएव श्वेत-कमलके सदृश राजाकी कीर्ति-किरणोंसे ही जगत् प्रकाशित हो उठनेके कारण लोग चन्द्रमाके उदयको व्यर्थ समझने लगे। मैं तो समझता हूँ कि अजितसेनके रूपकी शोभासे हार कर ही लज्जाके मारे कामदेव मर गया है और यह जो प्रसिद्ध है कि शिवके नयनानलने कामदेवको भस्म कर दिया है सो बिलकुल झूठ है—गप है। उदारता आदि गुणोंसे युक्त अजितसेनका इन्द्रसे भी बढ़कर वैभव नीतिका अनुगामी था। स्वाभाविक विनीत भाव या शिष्टाचार वैभवका अनुगामी था। ऐसे ही महान् क्षमा-गुण विनयका अनुगामी था और पराक्रम क्षमा-गुणको अलंकृत किये हुए था। अपने गुणोंकी सम्पत्तिमें सारे जगत्से बढ़े हुए अपने पुत्र अजितसेनको देखकर राजा अजितञ्जय वैसे ही अत्यन्त प्रसन्न हुए जैसे पूर्ण चन्द्रमाको देखकर समुद्र उमढ़ उठता है। वे यों सोचने लगे कि मेरे सूर्य-सदृश पुत्रने अपने तेज (पराक्रम या प्रताप) से सब दिशाओंको व्याप्त कर लिया है; अब मेरा यह जन्म सफल हुआ, अथवा मुझे अपने जन्मका फल मिल गया। चन्द्रमा जैसे अपनी किरणोंसे आकाशको प्रकाशित करता है उसी तरह इस पुत्रने, अपने उदारता आदि गुणोंसे, निर्मल और महान्

अर्थात् प्रतिष्ठित तथा सम्पूर्ण तेजस्वियों (आकाश-पक्षमें ज्योतिर्गण) के उदयका स्थान जो मेरा वंश है उसे प्रकाशित किया है। जैसे फूल ही वृक्षकी परम शोभा है, जवानी ही शरीरका परम शृंगार है, शान्ति ही शास्त्रके ज्ञाता पण्डितका आभरण है वैसे सुपुत्र ही मनुष्यके वंशका सबसे बढ़कर अलङ्कार है।

एक दिन नृपसमूह-समन्वित राजा अजितञ्जयने पृथ्वीके तिलक-स्वरूप कुमार अजितसेनको भारी उत्सवके साथ, जगत्के हितके लिए, पूज्य युवराज-पदवी दी। शास्त्राभ्याससे शुद्ध बुद्धिवाले कलाधर (६४ कला-विद्या जाननेवाले, पक्षान्तरमें चन्द्रमा) कुमारने इन्द्रपदसे भी बढ़े हुए अत्यन्त श्रेष्ठ पिताके पदको पाकर राजा लोगोंके कर-कमलोंको मुकलित कर दिया; अर्थात् वे लोग उनको हाथ जोड़ने लगे। नयन-मनो-हर और कलंक-रहित शरीरधारी तथा नवीन अभ्युदयको प्राप्त बाल-चन्द्रमा सरीखे राजकुमारको सब लोग सिर झुका कर प्रणाम करने लगे। एक दिन महाराज अजितञ्जय मनोहर सभाभवनमें युवराज-सहित सुखसे बैठे हुए अच्छी भेंटें लेकर सेवामें उपस्थित अनुगत मण्डलाधि-पति नरेशोंकी मण्डलीको निहार रहे थे। कुमार अजितसेनसे और चण्डरुचि असुरसे पहलेका कुछ वैर था। उसी वैरको स्मरण कर वह क्रुद्ध प्रसिद्ध असुर सब सभासदोंको मूर्च्छित करके राजकुमारको हर लेगया। असुरकी मायासे होनेवाला मोह क्षण-भरमें जाता रहा। होशमें आकर राजाने विस्मयके साथ देखा कि सारे सभाभवनमें कुमारका कहीं पता नहीं है। राजाने कहा—सभाभवनमें मुझे कुमार नहीं देख पड़ते, यह क्या बात है? इन्द्रजाल है, या धातु-विकार है, अथवा मुझे ही भ्रम हो रहा है? या पूर्वजन्मके विरोधको याद कर कोई कुपित निर्दय मायावी राक्षस या असुर मेरे प्राण-प्यारे पुत्रको एकाएक हर लेगया है? इस प्रकार रानीसहित सोच-विचार करते उन

राजाको कुमार-रहित सभा जीर्ण जङ्गलकी तरह जान पड़ी और वे व्याकुल हो उच्च स्वरसे इस प्रकार विलाप करने लगे। हे मेरी गोदके आभूषण! सहसा मुझे यों असहाय अवस्थामें छोड़कर हाय तुम कहाँ चले गये? मुझे शीघ्र दर्शन दो! मैं तुम्हारे विना अपने प्राण धारण करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ! लड़कपनमें तुम्हारे ढिठाई करने पर भी मैंने कभी तुमको कुछ कठोर वचन नहीं कहे। फिर क्या कारण है कि मुझ असाधारण स्नेह करनेवाले पितासे आज अकारण ही तुम रूठ गये! अपने अमृतमय वचन सुनाकर पहलेकी तरह मेरे कानोंको सुखी करो। मैं तुम्हारा पिता तुम्हारे अकारण अनिष्टकी आशङ्कासे आकुल हो रहा हूँ। तुम मेरी दशा पर क्यों ध्यान नहीं देते? अच्छा, पुत्र, अगर किसी कारणसे तुम मुझसे अप्रसन्न होगये हो तो अपनी इस माता पर जो तुम्हारा स्वाभाविक स्नेह था उसे अकारण ही क्यों तुमने तोड़ दिया? गुणी, सैकड़ों आशाओं और मनोरथोंके आश्रय-स्थल और अपने वंश-रूप सागरके चन्द्रमा जो तुम हो उन्हें छीन लेनेवाले विधाताने सचमुच पहले निधि दिखाकर पीछेसे आँखे फोड़दीं (गुड़ दिखाकर ईंट मारी)। हे स्वजन-वत्सल! तुम तम (अज्ञान, पक्षान्तरमें अन्धकार) को लाँघकर तपते हो और भुवन-रूप उदयाचलमें उदित उसके चूड़ामणि (पक्षान्तरमें सूर्य) हो, तुमसे रहित सब दिशाओंमें मुझे अन्धकार ही अन्धकार देख पड़ता है। मेरे जीवनके दिन उत्सव राहित होगये। मेरे आत्मीय स्वजन असहाय होगये। और तुम्हारे असह्य वियोगसे दुर्बल शरीरवाला मैं आज मुर्दा हो रहा हूँ। मेरे यश, सुख, वैभव तथा तेजका कारण तुम ही थे। हे भुवनभूषण! तुम्हारे जानेसे ये सब तुम्हारे साथ ही एक साथ चले गये। ललित भौंह और नेत्रोंवाला वह सुन्दर मुख और चन्द्रमाकी चाँदनीके समान शीतल और मधुर तुम्हारे वे वचन, सब चीजे, हे पुत्र, मेरे पापोंसे स्मृति-शेष रह गईं। मुझ पापीको वह परम

उत्सवका दिन फिर भी आवेगा जिस दिन मैं तुम्हारे मुख-कमलको देखूँगा। यदि तुम निठुर होकर जानेके लिए उत्सुक थे तो हे पुत्र, अपने साथ खेले हुए इन अपने मित्रोंसे स्नेहका नाता न तोड़ना था। इनसे भी तुमने कुछ बातचीत नहीं की। अपने स्वामीके दुस्सह कष्टसे दुःखित असहाय और विलाप करते हुए इन नरेश-भ्रमरोंको तो शीघ्र अपने चरण कमल दिखाकर सुखी बनाओ। हे पुत्र! वर्षाकालके समान इस असह्य शोकके दुर्दिनमें जो बन्धु-बान्धवोंके आँसुओंकी नदी बढ़ रही है उसे सुखानेके लिए एकाएक प्रकट होकर ग्रीष्म ऋतु बन जाओ। पुत्रशोकसे घायल हृदयवाले राजा इस प्रकार विलाप करते हुए रोने लगे। क्षण भर उनके दुःखको दूर करनेके लिए कृपा करके ही मानों मूर्च्छाने उन्हें अपनी गोदमें सुला लिया। चन्दनका जल छिड़कना आदि उपायोंसे कुछ देरमें राजाको होश आया तो उन्होंने अन्तरिक्षमें तपोभूषण नामक चारण-मुनिको देखा। अपने शरीरकी अनुपम कान्तिके मण्डलसे घिरे हुए, मण्डल-युक्त चन्द्रमाके समान शोभायमान उन मुनिराजको, सब सभासद् लोग विस्मयके साथ गर्दन उठाकर निहारने लगे। उन्हें देखकर सब लोग अपने मनमें तर्क करने लगे कि ये सूर्यनारायण तो नहीं हमारे राजाको विलाप करते देख करुणासे कोमल भाव धारण कर सम-झानेके लिए आ रहे हैं? इतनेहीमें वे मुनिराज शीघ्र ही राजाके निकट आकर उपस्थित हो गये। अपने तपोमय शरीरके तेजसे प्रकाशमान उन मुनिराजको देखते ही राजाका पुत्र-वियोग-शोक एकाएक कम होगया। पवित्र रजवाले मुनिके चरण पृथ्वी पर पहुँचने भी नहीं पाये कि राजाने पहले ही जल्दीसे पास पहुँच कर सादर अपना दुपट्टा बिछा दिया। कर्मचारी लोग जल्दीसे अर्घ्य आदि पूजाकी सामग्री ले आये। पूजाके उपरान्त राजाने अपने हाथसे मुनिराजको ऊँचा आसन बैठनेके लिए दिया और वे उस पर विराजमान हुए। अपने प्राण-प्रिय पुत्रके वियोगसे राजाको उतना शोक

नहीं हुआ था जितना उन मुनीश्वरके आनेसे उनको अभूतपूर्व सन्तोष हुआ। वे मुनीश्वर आकाशचारी थे, इस कारण उनके पैरोंमें कहीं नामको भी धूल नहीं थी तथापि राजाने शान्तिजलके लिए सादर आनन्दाश्रु-मिश्रित जलसे उनके पैर पखारे। वे साधुप्रवर जब आशीर्वाद कर चुके तब कुन्द-कुसुम-सदृश दन्त-प्रभाकी किरणोंसे उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलिसी अर्पण करते हुए राजाने विनयपूर्वक यों कहा—मुनिवर, पूर्ण काम होकर भी केवल मुझ पर अनुग्रह करनेके लिए जो आप यहाँ पधारे इससे मैं इस समय चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कीर्तिवाला, धन्य, कृतार्थ और जगत् भरका मान्य होगया। आप कृतकृत्य हैं, इस लिए आपको कोई कामना नहीं है और आप समदर्शी हैं, इस लिए आपको किसी पर अनुराग भी नहीं है। बात यह है कि आप सरीखे सिद्ध लोग जगत्के हितके लिए ही इस प्रकार भ्रमण करते रहते हैं। मैं इस समय ऐसे पुत्रवियोग-दुखके सागरमें डूब रहा था, मेरी बुद्धि मूढ़सी हो रही थी, तथापि आपके दर्शनसे मुझे परम सन्तोष प्राप्त हुआ। इसका कारण यही है कि आप पुत्र आदि बन्धुओंसे भी बढ़कर बन्धु (हितकारी) हैं। कानोंको आनन्ददायक ऐसे वचनोंको कहते हुए और भक्ति-भारसे नम्र राजासे वे भव्यजनरूप कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य-रूप मुनीश्वर इस प्रकार मनोहर वचन बोले—राजन्, अपनी दिव्य दृष्टिसे मैंने देखा कि तुम प्रिय पुत्रके वियोगमें दुखी हो रहे हो। इसीसे, तुम्हारे गुणों पर अनुराग होनेके कारण यहाँ मैं आया हूँ। सच बात तो यह है कि गुणों पर किसके मनको अनुराग नहीं होता। तुमने शास्त्रका अभ्यास किया है और तुम्हारी बुद्धि तत्त्वज्ञानमें लग रही है। तुम्हारा यह अन्तिम शरीर है। इसके बाद तुमको निर्वाणपदकी प्राप्ति होगी। तुमको संसारकी स्थिति बतलाना उसी तरह है जैसे स्वर्गाधिप इन्द्रको स्वर्गकी कथा सुनाना। सब शरीर धारियोंको प्रियका वियोग और अप्रियका

संयोग होना इस संसारका साधारण नियम है। इस प्रकार अपनी बुद्धिसे विचार करके ज्ञानी लोग विषादसे अपने मनको खिन्न नहीं करते। इस कारण अपने शरीरको सन्ताप देनेवाला यह शोक करना तुम्हें उचित नहीं है। भाग्यसे प्राप्त ऐसी विपत्तियोंके अवसर पर कायर लोग ही खेदको प्राप्त होते हैं, धीर (ज्ञानी) लोग नहीं। पृथ्वी-मण्डल-मण्डन, अपने पुत्रके अकुशलकी आशङ्का करके तुम कुछ भी खेद न करो। समृद्धिको प्राप्त तुम्हारा कुमार कुछ ही दिनोंमें आकर तुमसे मिलेगा। इस प्रकार निश्चित अर्थवाली बातें कह कर वे मुनिवर अपने आश्रमको चले गये और राजाने भी सब अनुगत नरेशों, सभासदों और मन्त्रियोंको विदा करके दिनके सब कृत्य पूरे किये। राजाने जब जाना कि "प्रसिद्ध गुणराशिवाला पुत्र कुछ ही दिनोंमें आ जायगा और उस उग्रतेजवाले कुमारका परम अभ्युदय होगा" तब वे मुनिवरके वचनों पर विश्वास करके सुखपूर्वक रहने लगे। बन्दीजन उनकी चन्द्र-कला-तुल्य कीर्तिका कीर्तन करते थे।

इति पंचमः सर्गः।

षष्ठ सर्ग।
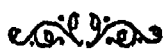
इधर उस असुरने, जो राजकुमारको क्रोध करके हर लेगया था, राजकुमारको आकाशमार्गमें लेजाकर घुमाकर फेंका। वे राजकुमार मनोरम नाम सरोवरमें आकर गिरे। उसके गिरनेसे सरोवरके उग्र ग्राह आदि जीव ऊपरको उछल पड़े। आकाशसे सरोवरमें उन राजकुमारके गिरनेसे पानी जो चारों ओर उछला तो घड़ी भरके लिए जलमय स्थान स्थलमय होगया और स्थलमय स्थान जलमय होगया। वे कुमार पूर्व-पुण्यकी शक्तिको प्रकट करके घने घूँसे और कुहनियोंके प्रहारोंसे मछली आदि जलजन्तुओंको चूर्ण करते हुए पानीसे पैरकर किनारे आगये। श्वेत-अरुण-श्यामवर्ण दृष्टि डालकर सब दिशाओंको विचित्र वर्णकी बनाते हुए उस सरोवर-तट-स्थ वीर कुमारने पुरुषा नाम एक अटवी (जंगल) देखी। वह जंगल सब ओरसे अगम्य था। उसमें चारों ओर लम्बे चौड़े घने वृक्षोंके झुंड छाये हुए थे। सूर्यके पाद (किरण, पक्षान्तरमें पैर) भी जैसे कुश-कण्टकके भयसे ही उस जंगलके भीतर नहीं पड़ते थे। उस जंगलके भीतर सिंहके तमाचेसे फटे हुए हाथियोंके मस्तकोंसे गिरकर बिखरी हुई गजमुक्ताओंको देखकर जान पड़ता है कि वहाँके ऊँचे वृक्षोंकी डालियोंसे टूटे हुए तारागण आकाशसे गिर पड़े हैं। अत्यन्त भयानक भीलोंके भल्ल बाणोंसे घायल मृगोंके रुधिरसे लाल हुई वहाँकी भूमि, वनदेवियोंके पैरोंके महावरसे रँगीसी मनोहर रहती है। बहेलियोंके हाथों मारे गये बाघोंकी खालें एक ओर पेड़ोंकी शाखाओं पर पड़ी सूखती हैं, और दूसरी ओर सिंहोंके मारे हाथियोंकी हड्डियोंके ढेर लगे हुए हैं। वह जंगल मृत्यु-पुरीके समान लोगोंके लिए भयानक हो रहा था। उस जंगलमें, हाथीके मदकी ऐसी तीखी सुगन्धवाले सप्तपर्ण (कर्पूर-कदली) के वृक्षोंको, जिनके आस-

पास घनी लताओंके द्वारा घना अन्धकार रहता है, हाथी समझ कर, उन पर आक्रमण करनेवाले सिंहोंका कोप व्यर्थ हो जाया करता है। वहाँ अजगरोंकी साँससे गर्म होकर चारों ओर फैली हुई हवासे पर्वतों पर चढ़े हुए वानरोंका जाड़ा दूर हो जाया करता है और वे शीतकालको सुखसे विताते हैं। घने वृक्षोंके सटे हुए रहनेके कारण दुर्गम उस वनमें पहले तो कुमारको दिग्भ्रम हो गया। उसके वाद कुछ देरमें भील वहेलिये आदि जंगली लोगोंके जानेकी पगडंडी पाकर वे कुमार निर्भय होकर आगे बढ़े। गजराजके समान गतिवाले कुमारने अपने ही समान एक पर्वत देखा। कुमार वड़े वंशके थे; उस पहाड़में भी वहुतसे वंश (वाँस) थे। कुमारमें अपरिमित सत्त्व (वल या पराक्रम) था; उस पहाड़में भी असंख्य सत्त्व (प्राणी) थे। कुमारकी स्थिति भी उन्नतिशालिनी थी; वह पहाड़ भी वहुत उन्नत (ऊँचा) था। वह पर्वत राजाके समान वहुत नाग (सर्प, राजाके पक्षमें हाथी) वाला, खड्गी (गैंड़े, राजाके पक्षमें खड्गधारी सिपाही)—समूहसे सेवित और आशाओं (दिशाओं, राजाके पक्षमें याचकों और प्रजाओंकी कामानाओं) को पूर्ण करनेवाला था। वनका ओर-छोर देखनेके लिए कुमार उस पर चढ़ गये। वर्षाऋतुके वादलोंके समान नीलवर्णवाला एक करालमुख पुरुष, जिसके ओठ क्रोधके मारे फड़क रहे थे, जो दोनों हाथोंसे एक भारी लठ हिला रहा था, सहसा उनके आगे उस वनमें प्रकट हुआ। उसके शब्दसे पहाड़ी दर्रोमें—कन्दराओंमें प्रतिध्वनि होने लगी। वह पुरुष जल्दीसे पास आकर कठोर शब्दवाले असत्य वचनोंसे इस प्रकार राजकुमारको धमकाने लगा। तू मेरी इस पृथ्वीमें, जहाँ और कोई नहीं आसकता, इस तरह घुस आया है। क्या तुझे अपने वलका वड़ा घमण्ड है या तू कोई विशेष विद्या जानता है? मैं इन विशाल वाहुओंसे इस शिखर-सहित पर्वतकी रक्षा करता हूँ। मेरी आ-

ज्ञाके विना देवता या दानव, कोई भी यहाँ घुस नहीं सकता। जलके झरनोंसे मिलकर ठंडी हवा यहाँ चलती है। ऐसे इस पहाड़ पर मेरे प्रतापके कारण सूर्यकी किरणें भी ठंडी ही रहती हैं, तपती नहीं हैं। हे मूर्ख! तुझे किसने बहका दिया है जो तूने मरनेके लिए मेरे विरुद्ध यह कार्य्य किया? अथवा तूने मेरा नाम ही नहीं सुना? क्योंकि जानने बूझनेवाला आदमी सोचे विचारे विना काम नहीं करता। जय-लक्ष्मीके आधार-स्वरूप राजकुमारने उस पुरुषकी ऐसी घमंडभरी और बाणके समान मर्म्मस्थलोंको काटनेवाली वाणी सुनकर कुपित होने पर भी सहूलियतके साथ यह उत्तर दिया—इन तेरी बे-मतलबकी बातोंसे कायरोंके सिवा निर्भय हृदयवाला वीर पुरुष कभी डर नहीं सकता। मैं अकेला सुरों और असुरोंसे भिड़नेवाला योद्धा हूँ। तुझ सरीखे मनुष्य-कीटोंकी गिनती ही क्या है? इस लिए अब इस बकबकको बन्द कर। सज्जन लोग बहुत थोड़ी बातचीत करते हैं। अगर पौरुष हो तो वार कर। नहीं तो अभी मेरे घूँसेसे पिस जायगा। राजपुत्रके यों कहते ही उस पुरुषने वेगसे वह लोहेका लठ चलाया। राजपुत्रने भी उस प्रहारको बचाकर उस पुरुषको अपनी भुजाओंके भीतर दबा लिया। लड़नेके लिए जिनके अंगोंमें खुजली उठ रही हो ऐसे दो लोकपालोंके समान एक दूसरेसे लिपटे हुए वे दोनों योद्धा देख पड़ते थे। छिपी हुई वन-देवतायें निश्चल होकर वृक्षजालोंके भीतरसे यह तमाशा देख रही थीं। पैंतरे, लपट और हाथों पैरोंकी चोटोंसे प्रचण्ड शक्तिवाले दोनों योद्धा बहुत देर तक लड़ते रहे। कभी एककी और कभी दूसरेकी जीत होती थी। राजपुत्रने एक बार दोनों हाथोंसे पकड़ कर उस पुरुषको ऊपर आकाशमें उछाल दिया। वहाँ पर उसने सोलहों आभूषणोंसे भूषित दिव्य-रूप दिखलाया। उस पुरुषने वहाँसे कहा कि मैं स्वर्गलोकका निवासी ऐश्वर्य्यशाली हिरण्य-नामक देवता हूँ। सुमेरु पर्वत पर चैत्योंको प्रणाम

करके इस पर्वत पर क्रीड़ा करनेके लिए आया था। मैंने दूसरा रूप धारण करके नकली युद्धसे तुम्हारी परीक्षा ली थी। तुम्हारे इस साहस-सामर्थ्य-से मेरा यह चित्त पराधीन होगया है—तुम पर मुग्ध होगया है। हे कमलनयन! देवतों और दैत्योंको भी अपना चमत्कार दिखलानेवाला जिसका चरित्र है, ऐसा तुम सरीखा पुत्र जिसकी कोखमें रहा वह तुम्हारी माता ही धन्य है। लज्जाके मारे यह कहनेकी शक्ति तो मुझमें है नहीं कि तुम मनमाना वरदान माँगो। तुम सरीखे पुण्यात्मा लोगोंके लिए संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो दूसरेसे माँगनी पड़े। तथापि यह मैं कहता हूँ कि अगर कोई ऐसा काम आपड़े कि उसमें उद्योग करनेकी आवश्यकता हो तो उस समय तुम मुझे अवश्य स्मरण करना। उद्यमशाली पुरुषको भी सहायकके विना सिद्धि नहीं प्राप्त होती। इसके सिवा मैं तुम्हारे दूसरे जन्मोंका वृत्तान्त तुमसे कहता हूँ, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो—

इस जन्मसे तीसरे जन्ममें तुम सुगन्धि देशमें श्रीपुरके राजा थे। उसी पुरमें शशि और सूर्य नामक दो खेतिहर गृहस्थ रहते थे। एक दिन सुरंग लगाकर शशि सूर्यका सारा धन हर लेगया। यह सब हाल जान कर शशिको तुमने सूली देदी और सूर्यको उसका धन दिलाया। शशि दूसरे जन्ममें चण्डरुचि नामक असुर हुआ। मैं भी उस समय पूर्व पुण्यका बचा हुआ फल भोगनेके लिए हिरण्य-नामक देव हुआ। पहले जन्ममें मैं ही सूर्य था। वह शशि पहलेका वैर चुकानेके लिए इस जन्ममें तुमको हर लाया है। मैं तुम्हारा मित्र हूँ। वह हिरण्य नामक देव इस प्रकार मधुर मनोहर अक्षरोंवाले वचन कहकर सहसा अन्तर्द्धान होगया। राजकुमारने उस देवताके प्रभावसे अपनेको उस घोर वनके किनारे पर खड़ा पाया। राजकुमार अपने मनमें कहने लगा कि यह कैसी अद्भुत घटना है कि मैं एकाएक वनके किनारे आगया। तब राजकु-

मारको मालूम पड़ा कि यह सब उसी हिरण्य नामक देवताकी महिमा है। तब वह राजकुमार बनको छोड़कर ऐसे देशमें आया जहाँ निरन्तर नगर और गाँव बसे हुए थे। उसने देखा कि सब तरफ डरके मारे लोग भागे जा रहे हैं। तब डरके मारे जिसके रोमाञ्च हो आया है ऐसे एक आदमीके पास जाकर राजकुमारने कौतूहलवश भागनेका कारण पूछा। राजकुमारके इस प्रश्नसे विरक्त होकर उस पुरुषने कहा कि तुम क्या आकाशसे फट पड़े हो जो इस प्रसिद्ध बातको भी नहीं जानते ? यह धन-धान्यसे परिपूर्ण प्रसिद्ध अरिंजय नामक देश है। नवीन अन्नोंके अंकुरोंसे हरीभरी यहाँकी पृथ्वी कभी शोभाहीन नहीं होती। इस देशकी नाभि अर्थात् बीचोबीचमें श्रेष्ठ विपुलपुर है। वह अपने नामके अनुसार विपुल अर्थात् भारी है। ऊँचे महलोंकी चोटियोंसे आकाशको छूता हुआ वह पुर विद्याधरोंकी नगरीके समान जान पड़ता है। उस नगरका राजा विजयी जयवर्मा है। जिसके कोमल कर (राजाके पक्षमें जमीनका लगान और चन्द्रमाके पक्षमें किरणें) से सन्तापहीन पृथ्वीको चन्द्रमाके उदयकी पर्वा नहीं रहती। सूर्यकी आभाकी तरह आशा (दिशा और रानीके पक्षमें प्रार्थियोंकी आशा) पूर्ण करनेवाली, कामदेवकी पत्नी रतिकी तरह कामसुख (रतिसुख और दूसरे पक्षमें कामनाका सुख) देनेवाली, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली उन युद्धमें विजयलक्ष्मी पानेवाले राजाकी स्त्रीका नाम जयश्री है। इन स्त्रीपुरुषोंके परम सुन्दरी शशिप्रभा नाम कन्या हुई। चन्द्रमाके समान उसका सुन्दर शरीर अपनी लुनाईके सागरमें जैसे तैर रहा था। महेन्द्र नामक एक राजाने जयवर्मासे उसकी कन्यासे विवाह करनेकी इच्छा जताई। राजा राजी हो गया। लेकिन ज्योतिषीने मना किया, कहा, इसकी मृत्यु निकट है। मनोरथ विफल होने पर सब राजोंके साथ मिलकर उसने जयवर्माके ऊपर चढ़ाई करदी है। इस समय युद्धमें जयवर्माकी सब सेनाको मार कर वह

पुरको घेरे हुए है । सो अपने विनाशकी आशंकासे इस राष्ट्रके सब आदमी भागे जा रहे हैं । उस पुरुषका यह कथन सुनकर अजितसेन युवराज विपुल-नगरकी ओर चला । उसने वहाँ जाकर देखा, शत्रुकी सेना उस नगरको इस तरह घेरे हुए है जैसे चन्द्रोदय होने पर उमड़े हुए समुद्रकी लहरें किनारेके जलको घेर लेती हैं । अननुमत होनेसे अविचलित-बुद्धि वह राजकुमार राजाकी निषेधकी आज्ञा न मानकर हाथियोंसे परिपूर्ण मार्ग होकर पुरके फाटककी तरफ चला । तब महेन्द्र राजाके सैनिकोंने उससे कहा, क्या तू अपने जीवनसे ऊब गया है ? क्या तुझे अपने सिरसे काम नहीं है ? जो अन्यके लिए अनतिक्रमणीय राजाकी आज्ञाका उल्लंघन कर बे-खटके इधर चला आ रहा है ? उसके यों कहने पर राजकुमारको क्रोध चढ़ आया । धीर कुमारने यह कहते कहते एकके हाथसे धनुष छीन लिया कि अगर तुममें ताकत हो तो अपने राजाके साथ अपने प्राण बचाओ । वह चतुरंगसेना समुद्रके समान थी । पहाड़ ऐसे ऊँचे हाथी उसमें उग्र घड़ियाल थे । चालमें हवासे लागडाँट रखनेवाले घोड़े ही उसमें लहरी-लीलाका अनुकरण कर रहे थे । पुरवासियोंने उस समुद्रमें युवराजको मन्दराचलके समान फिरते देखा । विष-वन्हि-शिखरके समान बाण-वर्षा करते हुए सर्पसदृश योद्धा लोगोंको गरुड-समान युवराजने विमुख कर दिया । उसके बाद महेन्द्रके पास वह पहुँचा । सूर्यकी उल्का-ज्वालाके समान बाण-समूहकी वर्षा करनेवाले महेन्द्र पर लीलापूर्वक एक बाण चलाकर युवराजने उसकी राज्यलक्ष्मीको विधवा कर दिया । शत्रु-पक्षके लिए दावानलके समान उस अकारण मित्र राजकुमारको साथ लेकर जयवर्माने अपने पुरमें प्रवेश किया । पुरमें सब मकान और महल सजाये गये और बड़े बड़े उत्सव होने लगे । राजाके पीछे चलते हुए राजकुमारने बड़े बड़े झंडोंसे सुशोभित राजभवनमें प्रवेश करते समय

पुरवंधुओंके हृदयोंमें उन्मादके ऐसे विविध भाव पैदा कर दिये । राजा जयवर्माने कुमारका इन्द्रके समान सुडौल सुन्दर शरीर और कान्ति तथा अद्वितीय पौरुषको देखकर बात किये बिना ही यह जान लिया कि यह किसी उच्च जाति और ऊँचे घरानेका लड़का है । इन्द्रके समान पराक्रमी कुमार राजासे सत्कार पाकर कुछ दिन वहाँ रहे । अपने प्रतापसें सब राजोंको दबा कर कुमारने सारी पृथ्वी पर जयवर्माका राज्यशासन फैला दिया ।

एक दिन राजा और रानी दोनों एक पलँग पर बैठे हुए थे । इसी समय पराये मनका भाव जानलेनेमें चतुर शशिप्रभाकी सहेलीने आकर पहले प्रणाम किया और फिर वह इस प्रकार कहने लगी । राजन्, आपकी कन्याने महेन्द्रको परास्त करनेवाले उस युवकको जबसे देखा है तबसे उसका यह हाल है कि वह न सुगन्धित अंगराग लगाती है और न माला इत्यादि धारण करती है । इस प्रकार उसे अपने शरीरकी भी सुधबुध नहीं है । वह उदास शून्य मनसे कुछ सोचा करती है । उसके कपोल पीले पड़ गये हैं । दासियाँ अन्न-जल ले जाती हैं तो वह बिना ज्वरके भी अरुचि दिखलाती है । उसके अँग पालेके मारे कमलके समान हो रहे हैं । उसके हृदयमें चिन्ता उठते ही गर्म आँसुओंसे उसके भीतरी तापका पता लग जाता है । वियोगकी आगके धुएँके समान गर्म और लम्बी साँसोंसे कमलके धोखे मुँहके पास आनेवाले भौंरे दूर हट जाते हैं । "इसके मुखकी शोभाने मेरी शोभाको चुरा लिया है" मानों यही सोच कर चन्द्रमा कोपसे मृगनयनी राजकुमारी पर बारबार विष बहानेवाली किरणोंके छोड़कर उसे मूर्च्छित कर देता है । सखियाँ उसके सन्तापको कम करनेके लिए जो नवपल्लवोंकी सेज बनाती हैं वह भी उसके कमलकोमल शरीरको दावानलकी ज्वालाके समान जलाती है । भुजंगके साथी मलयाचलके चन्दनका लेप अगर ताप पैदा करे तो ठीक भी है; लेकिन आश्चर्य

तो यह है कि दक्षिण पवन भी उसे जलाता है। रतिके रूपको हरनेवाली राजकुमारी पर बहुत ही कुपित होकर कामदेव अवश्य ही उसके विनाशके लिए असाधारण प्रयत्न कर रहा है। स्वामिन्! इस लिए विचार कर जो अच्छा समझिए वह शीघ्र कर डालिए। नहीं तो वह कमलमुखी कामदेवकी दसवीं दशा (मरण) को प्राप्त हो जायगी। अपने इरादेके अनुकूल ही अपनी कन्याकी रुचि देखकर हर्षसे राजाके रोमाञ्च हो आया। दूसरे दिन राजाने एकाएक ज्योतिषीको सादर बुलाकर मुहूर्त-पूछा। उसने जो शुभ दिन बताया उस दिन जयवर्माने कन्याका वाग्दान कर्म सम्पन्न किया। प्रसिद्ध प्रतापी राजकुमार कामदेवके बाणोंकी चोटें सहते हुए उस दिनसे प्रियतमासे मिलनेके लिए उत्कण्ठित होकर ब्याहके दिन गिनने लगे।

अपने शिखरोंसे तारागणको ऊपर उठाये और अपने विस्तारसे उस दिशाको रूँधे हुए विजयार्ध नामक एक प्रसिद्ध पर्वत है। उस पर आकाशचारी विद्याधर लोग बसते हैं। वह बहुतसी पृथ्वीसे सुशोभित चाँदीका पहाड़ चारों ओर चन्द्रमाकी ऐसी श्वेत किरणोंको फैलाता हुआ आकाशरूपी सर्पकी श्वेत केंचुलके समान जान पड़ता है। उस पर्वतके दक्षिण ओर आदित्यपुर नामक एक भारी रमणीय पुर है। चाँदीकी चमकसे उज्ज्वल वह पुर, जान पड़ता है, देवलोकका प्रतिबिम्ब पृथ्वी पर आपड़ा है। उस पुरका शासक बलवान् धरणीधर नामका एक विद्याधर था। जिसने इन्द्रके समान सब आकाशचारी राजों (इन्द्रके पक्षमें पर्वतों) को विपक्ष (पर्वतोंके पक्षमें पक्षहीन और राजोंके पक्षमें शत्रु) बनाकर विनष्ट कर दिया—सिर उठाने लायक़ नहीं रक्खा। एक दिन वह राजा अपनी सभामें बैठा था। उसने देखा कि श्रावक-व्रत-निरत और जपमाला आदि यतियोंके चिन्ह धारण किये प्रियधर्म नामक ब्रह्मचारी आ रहे हैं। विद्याधरराजने स्वयं सिंहासनसे उठकर बहुतसे धन-रत्नादिके

साथ पूजा करके उनका स्वागत किया। यह बात निश्चित है कि उचित कर्तव्यकी जानकारी प्राप्त करनेके लिए बड़े लोगोंकी बुद्धियाँ पराये उपदेशकी अपेक्षा नहीं रखतीं। चरणसेवाके लिए आये हुए सब विद्याधर बन्धुओं और मन्त्रियोंको विद्याधरराजने विदा कर दिया। तब आशीर्वाद देकर आसन पर विराजमान यतिवरने मुसका कर कहा—हे विद्याधरराज, मैं योगी हूँ, तथापि न-जाने क्यों मेरा मन वान्धववत्सल जो तुम हो उनके प्रति स्नेह करता है। अहो, संसारमें यह मोह बड़ा ही प्रबल है। हे मानहीको अपना सर्वस्व समझनेवाले महाराज, मेरी मति सब तरह तुम्हारा प्रिय करना चाहती है। मैं सब तरह तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ। मैंने सुधर्मा नामक मुनिसे जो तुम्हारे सम्बन्धमें सुना है वह कहता हूँ, सुनो—अरिंजय नामक देशमें इन्द्रपुरीके समान विपुल नामक एक नगर है। सब वैरियोंको अपने वशमें किये हुए जयवर्मा नाम राजा उसका स्वामी है। मृगनयनी होने पर भी विलासचतुर और चन्द्रमुखी होने पर भी लाञ्छन हीन शशिप्रभा नाम उस विजयी और पृथ्वीमण्डलसे कर लेनेवाले राजाके एक कन्या है। कामदेवके धनुषके समान लोचदार अंगोंवाली उस कन्याको जो भाग्यशाली पुरुष व्याहेगा वह पुण्यराशि पुरुष तुमको मारकर इस भरतक्षेत्र पर आधिपत्य करेगा। भाग्यके वज्रके समान चोट पहुँचानेवाली यह मुनिकी वाणी सहसा सुनकर विद्याधरराजको बड़ा खेद हुआ। घबराहटके मारे शरीरसे इतना पसीना निकला कि वे भीग गये। यतिवरसे उन्होंने कहा—हे गुणवत्सल, इस वारेमें मेरी चिन्तासे आप व्याकुल न हों। मैं ध्यान देकर इसका कोई प्रतीकार करूँगा। इस प्रकार उन विद्याधरराजाने कहकर सिर नवाकर उन मुनिवरको विदा किया। मनमें अपने कर्त्तव्यको सोचकर उस भावको छिपाये हुए विद्याधरराजने वह दिन विताया। दूसरे दिन सारी सेना साथ लेकर मणिमय क्षुद्रघण्टिकाओंसे युक्त विमा-

नोंके द्वारा उसने जयवर्माके पुरको जाकर घेर लिया । सब पुरवासी भयभीत होकर उसके इस उद्यमको निहारने लगे । उद्धत नामक बातचीत करनेमें होशियार दूतको अपना अभिप्राय बतला कर उसने जयवर्माके पास भेजा । उस दूतने सभामें जाकर, अपना परिचय देकर, जयवर्मासे कहा । हे राजन्, जिनकी आज्ञाको कोई नहीं टाल सकता वे धरणीध्वज इस सार्थक नामको धारण करनेवाले विद्याधर चक्रवर्ती मेरे द्वारा आपसे कहते हैं कि– आपके कोई सचमुच ही चन्द्रमाकी प्रभाके समान सुन्दरी शशिप्रभा नाम कन्या है । मैंने लोगोंसे सुना है कि तुमने किसी विदेशीको अपनी वह कन्या दे डाली है । आप ऊँचे घरानेके हैं । आपका यश निर्मल है । आपको ऐसा करना कभी उचित नहीं है । ऐसा करिएगा तो सारे पृथ्वीमण्डलमें आपकी बदनामी होजायगी । यदि अपनी कन्याकी प्रीतिके कारण घर आये हुएको कोई दामाद बनाना चाहे तो उसे भी अवश्य ही कुलका ख़याल करना चाहिए । क्योंकि वरमें यही मुख्य देखनेकी बात होती है । इसको तुम अपना पुण्य ही समझो जो तुमने अब तक अपनी कन्या उसे नहीं ब्याहदी । सो बस अब अपने हाथसे मेरे हठ करनेके पहले ही अपनी वह कन्या मुझे देदो । दूतके इस कथनसे कुपित होकर जयवर्माने संक्षेपमें यह उत्तर दिया कि दूत, तू बुद्धिमान होने पर भी लौकिक व्यवहारमें कुछ भी जानकारी नहीं रखता । कुलीन हो या अकुलीन, जिसे मैं कन्या दे चुका उसे दे चुका । अब वह बात पलट नहीं सकती । अगर कोई बलपूर्वक उसे लेनेकी शक्ति रखता हो तो वह शीघ्र आवे, विलम्ब क्यों कर रहा है ? दूतको बिदा करके जयवर्माने शीघ ही यह बस समाचार अजितसेनको सुनाया । तब क्रोधसे भौंहें टेढ़ी किये कुमारने भुजदण्डोंको देखते देखते अपने ससुरसे कहा- शत्रुओंके सिरमें शूल पैदा करनेवाले मेरे बने रहते आपको इस प्रकार व्याकुल न होना चाहिए । आप इस दुष्ट

विद्याधरको अभी कालके गालमें जाते देखिएगा। इस प्रकार जयवर्माको धीरज देकर अजितसेनने अपने हृदयमें हिरण्य नामक देवका स्मरण किया। स्मरण करते ही वह दिव्य शस्त्रोंसे परिपूर्ण रथ लेकर सामने उपस्थित हुआ। विस्मित पुरवासियों और शत्रुओंके सामने उस रथ पर राजकुमार सवार हुआ। हिरण्य उसका सारथी बन गया। वह बाणोंकी वर्षा करता हुआ शत्रुसेनाकी ओर चला। सूर्यके समान तेजसे दुर्निरीक्ष्य राजकुमारको देखकर भारी लज्जासे विवश होकर बाण, शक्ति, चक्र, कुन्त आदि शस्त्रोंको हाथोंमें लिये हुए विद्याधरोंने क्षात्र धर्मका ख्याल न करके एक साथ कुमार पर आक्रमण किया। धैर्यशाली राजकुमारने, सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे कुमुदसमूहको संकुचित कर देता है वैसे ही, फुर्तीके कारण जिनका छूटना नहीं देख पड़ता उन बाणोंसे सबको संकुचित कर दिया। राजकुमारको मनुष्योंके अस्त्रशस्त्रोंसे अजेय समझ कर और अपनी सेनाको नष्ट होते देखकर धरणीध्वज विद्याधरने मोहित करनेके लिए तामस अस्त्र छोड़ा। कुमारने देखा, वह अस्त्र सब दिशाओंके प्रकाशको मिटाकर अन्धकार करता हुआ आ रहा है। हिरण्यके दिये हुए सूर्यास्त्रको छोड़कर राजकुमारने उस अस्त्रके प्रभावको कम कर दिया। राजकुमारने शत्रूके सर्पास्त्रको गरुड़ास्त्रसे, अग्न्यस्त्रको वारुणास्त्रसे, पर्वतास्त्रको वज्रास्त्रसे, मोहन अस्त्रको उद्यमास्त्रसे, मेघास्त्रको पवनास्त्रसे और सिद्ध्यस्त्रको विघ्नविनायकास्त्रसे रोका। सब शस्त्रोंके प्रतिहत होने पर म्यानसे तरवार निकाल कर क्रोधके मारे वेगसे वह विद्याधर दौड़ा। शशिप्रभाके प्यारे अजितकुमारने अमोघशक्ति मारकर धरणीध्वजको मार डाला। शत्रुसेनाके नायकके मरजाने पर सेनाके बचे हुए विद्याधर पक्षियोंके समान भागकर आकाशमें उड़कर विजयार्ध पर्वत पर चले गये। तब हिरण्यको विदा करके अक्षतशरीर राजकुमारने पुरवासियोंके किये उत्सवोंसे मनोहर पुरमें प्रवेश किया। थोड़े ही समयमें सब प्रकारकी

तैयारियाँ करके महान् इच्छावाले जयवर्माने एक पवित्र दिनमें भारी उत्साह और उत्सवके साथ कन्याका व्याह कर दिया। विधिपूर्वक राजकुमारीसे व्याह करके कुछ दिन वहाँ रहकर ससुरकी अनुमतिसे उत्सुक वन्धुवान्धवोंसे मिलनेके लिए राजकुमार अपनी पुरीको चल दिये। पिताको आश्वास देनेके लिए चञ्चल हो रहा है चित्त जिनका ऐसे राजकुमारने उस वहुत दिनोंके रास्तेको वहुत ही थोड़े समयमें समाप्त कर दिया। सच है, वन्धु-समागम किसे उत्सुक नहीं वना देता। अजितसेनके पिताने जव सुना कि शत्रुको मारकर भारी सम्पत्ति और स्त्री प्राप्त करके राजकुमार आये हैं तव आनन्दके मारे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। परिजन और पुरवासियोंके साथ पुरके वाहर आकर राजाने पुत्रका स्वागत किया। आँखोंमें आनन्दके आँसू भरे हुए राजाने पुत्रको आगे करके पुरमें प्रवेश किया।

इति षष्ठः सर्गः।

सप्तम सर्ग ।

पूर्व जन्ममें पुण्यकर्म करनेवाले इन्द्र के समान तेजस्वी चक्रवर्ती अजितसेनको शत्रुचक्रको काटनेवाला एक श्रेष्ठ चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । किरणोंके जालसे आकाशमण्डलको व्याप्त किये हुए होनेके कारण दुस्सह और दुर्निरीक्ष्य उस चक्ररत्नको देखकर मनुष्योंने समझा कि सेवा करनेके लिए राजाके पास मानों सूर्यका विम्ब आया है। शत्रुओंको डरानेवाली और अपनी कान्तिसे आकाशको प्रकाशित करनेवाली तवार (खङ्गरत्न) उन चक्रवर्ती महाराजको प्राप्त हुई। मानों उस तवाररूपी जीभको निकाले स्वयं यमराज उनकी सेवा करने लगे। वस्त्र, धूल, जल और घामको रोकनेवाला चन्द्रमाके समान श्वेत छत्ररत्न उनके सिर पर देखकर जान पड़ता था कि लक्ष्मीने अपनी सेवा जतानेके लिए उनके सिर पर अपना करकमल रक्खा है। समुद्रके जलमें तैर जाने आदि कामोंमें उपयोगमें आनेवाला श्रेष्ठ चर्मरत्न उन महाराजको पुण्यके वैभवसे प्राप्त हुआ। उज्ज्वल ज्योतिवाला और विस्तृत मण्डलवाला आकाश मानों उन चक्रवर्तीकी महिमासे परास्त हो संकुचित होकर चर्मरत्नके रूपसे पृथ्वी पर उनके आश्रयमें आगया । पर्वत और वज्र तोड़नेमें प्रवीण श्रेष्ठ दण्डरत्न उन्हें पूर्वजन्मके किये शुभकर्मोंके द्वारा प्रेरित होकर प्राप्त हुआ । अपनी प्रभासे सम्पूर्ण आकाश और दिशाओंको प्रकाशित किये हुए वह दण्डरत्न अजितसेनके भयसे जिनकी छाती धड़क रही है उन इन्द्रके हाथसे गिरे हुए वज्रके समान शोभायमान हुआ। सूर्य आदिके प्रकाशकी पहुँच जहाँ पर नहीं है वहाँके अन्धकारको मिटानेवाला चन्द्रकलाके समान उज्ज्वल काकिणी नामक रत्न किङ्करके समान उनकी सेवामें उपस्थित हुआ । वर्षाकालीन घनघटाके समान घने अन्धकारको भी दूर करनेमें समर्थ, लक्ष्मीका रत्न-दर्पण ऐसा, प्रज्वलित दीपककी शिखाके

समान प्रकाशमान चूड़ामणि नामक रत्न उन्हें प्राप्त हुआ। उनके बहते हुए मदजलसे शोभित और चलते हुए चँवरोंसे सेवित गजरत्नको देखकर यह जान पड़ता था कि उनके गौरवगुणसे परास्त महामेरु पर्वत हाथीके मिससे सेवा कर रहा है। उनके अप्रतिहत-गति बड़े बली मनोजव अश्व-रत्नको देखकर जान पड़ता था कि स्वयं वायुदेव अश्वके मिससे उनकी सेवा कर रहे हैं। उनका सेनापतिरत्न भी बड़ा ही शूर और शत्रुओंको भयंकर होनेके कारण कार्तिकेयके समान था। कार्तिकेय शत्रुओंके लिए असह्य-शक्ति नामक शस्त्रसे भयानक है और वह भी शत्रुओंके लिए असह्य शक्ति (सामर्थ्य) से भयानक था। कार्त्तिकेयने तेजसे तारका-धिप अर्थात् तारकासुरको जीता है और उसने भी तेज अर्थात् कान्तिसे तारकाधिप (चन्द्रमा) को जीत लिया था। देवता, मनुष्य और अशुभ ग्रहोंकी लाई हुई आपत्तियोंको दूर करनेकी क्षमता रखनेवाला उनके घर पुरोहितरत्न देहधारी पुण्य-पुञ्जके समान जान पड़ता था। अभि-लाषा करते ही उसी समय इन्द्रके महलोंके समान भवनोंको बनानेवाला ब्रह्मा या विश्वकर्माके समान सब बातोंमें कारीगर स्थपति (शिल्पिरत्न) उनके यहाँ था। अपने चित्तपटल पर ही आमदनी-खर्चका हिसाब नोट करलेनेवाला, नित्यकृत्य और गृहकार्यमें निपुण, लोकचरित्रका ज्ञाता उदार धीर बुद्धिवाला उनका गृहपतिरत्न था। इस प्रकार उस भाग्यशाली राजाको शशिप्रभा सहित उक्त चौदहों रत्न प्राप्त हुए। पुण्यके उदय होने पर क्या दुर्लभ है! पुण्यात्मा अजितसेनके घरमें रत्न ऐसी नवो निधियाँ उपस्थित हुईं। नित्य उपस्थित निधियोंके देवता मनचाही विचित्र वस्तुएँ राजाको देते थे। उनमें पाण्डु नामक निधि भूख-प्यासके हरनेवाले उर्द, चने, अलसी, तिल, धान, चाँवल, जव, मूँग, कोदो आदि अन्नोंको नित्य देती थी। पिंगल नामक निधि रत्नोंकी कान्तिसे मनोहर चितचाहे सुन्दर कुण्डल, अँगूठी, चन्द्र-हार, मणिमेखला आदि आभूषणोंको देती थी। काल नामक निधि सब

ऋतुओंमें होनेवाले वृक्ष-गुल्म-लता आदि वनस्पतियोंके मनोहर चितचाहे फलों ओर पल्लवोंको देती थी। शंख नामक निधि उन चक्रवर्त्ती राजाको बाँसुरी, मुरज, वीणा आदि कानोंको सुख देनेवाले बाजे देती थी। पद्मक नामक निधि विचित्र सूक्ष्म वस्त्र, चीनके रेशमी वस्त्र, कमरबन्द, लाल कम्बल, दुपट्टे और अन्यान्य साधारण वस्त्र सुखदायक मनोहर कपड़े देती थी। महाताल नामक निधि सुन्दर ताँबे, सुवर्ण, शीशे, चाँदी और लोहेके बने सब मन्दिरके सामान देती थी। माणव नामक निधि प्रास, बाण, चक्र, मुद्गर, शक्ति, शंकु, खड्ग, तोमर आदि शत्रुओंको नष्ट करनेवाले चमकदार शस्त्रोंको देती थी। नैसर्प निधिने तकिया, बिछौना, पलँग आदि सब देहको आराम पहुँचानेवाली कोमल वस्तुएँ उन राजाको दीं। विचित्र रत्नों और मणियोंकी किरणोंसे आकाशमें इन्द्र धनुषकी शोभा प्रकट करते हुए सर्वरत्न नामक निधिसे राजाकी सब कामनायें पूर्ण होती थीं। मदको पैदा करदेनेवाली ऐसी लक्ष्मीको पाकर भी अजितसेनको कुछ भी घमंड नहीं हुआ। सज्जनोंका परम्परागत धर्म ही यह है कि वे वैभव पाकर अपने स्वभावको नहीं छोड़ते। सुन्दर श्रेष्ठ चन्दन, धूप, पुष्प और परम सम्पत्तिके द्वारा अजितसेनने बन्धु-बान्धवेंके साथ वीतराग भगवानके चरणोंकी पूजा करके निधियों और रत्नोंकी पूजा की। एक दिन स्वयं उनके पिताने राजगणको बुलाकर उनके आगे चक्रवर्तीके वैभवके अनुरूप कुमारके पट्टाभिषेकका उत्सव किया। कुमारके अभिषेक जलसे केवल पृथ्वीतल ही दूर तक उच्छ्वसित नहीं हुआ। उसके साथ ही आनन्द सागरमें मग्न इष्ट मित्रोंका मानस भी उच्छ्वसित हो उठा। प्रसाद और विकाससे सुशोभित तारा (नेत्रतारा) वाला और निर्मल अम्बर (वस्त्र) से मनोहर पुरनारियोंका मण्डल ही नहीं हुआ; बल्कि प्रसाद और विकाससे सुशोभित तारा (तारागण) वाला और निर्मल अम्बर (आकाश)

से मनोहर दिशाओंका मण्डल भी देख पड़ा। सुगन्धि-गुणको पाकर जिनके विकासयुक्त दलोंको भौंरोंके झुण्ड घेरे रहते हैं ऐसे पृथ्वी परके फूलोंसे ही पृथ्वी परिपूर्ण नहीं हुई; बल्कि स्वर्गके फूलोंने भी पृथ्वीको पाट दिया। नित्यके उत्सवमें मन लगाये हुए मित्रोंके ही मन्दिर उदित-केतु (जिनमें झंडे फहरा रहे हैं) नहीं हुए; बल्कि जिन पर आपत्ति आनेवाली है उन शत्रुओंके घरो पर भी केतु (बुरे ग्रह) का उदय हुआ। (अथवा 'उ' को आश्चर्यके अर्थमें अलग करलेनेसे 'दितकेतु' बचता है; अर्थात् खण्डित ध्वजावाले)। वेश्याओंके आश्चर्य बढ़ानेवाले नाचने-गानेसे केवल पृथ्वीतलने ही मनोहर भाव नहीं धारण किया; बल्कि किन्नर कामिनियोंके नाचने गानेसे स्वर्गका भी वही हाल हुआ। राजाके मन्दिरके आँगनमें नट-नर्त्तक आदि आकर मङ्गल गान करने लगे। वैसे ही आकाशमें कोयलकी ऐसी मीठी आवाज-वाले तुम्बरु आदि गन्धर्व भी गाने-बजाने लगे। छिड़काव करनेवाले लोगोंने ही सड़कों पर छिड़काव करके धूलको नहीं दबाया; बल्कि बार-बार बादलोंने भी फुहारें गिराकर उस काममें सहायता की। उस पुण्यात्मा राजाने रत्नबन्धसे प्रकाशमान सिंहासनको ही नीचे नहीं रक्खा; बल्कि गुरुजनोंकी अभिलाषासे भी बढ़ी हुई लक्ष्मीको प्राप्त करके गुरुजनोंके आशीर्वादोंको भी नीचे रक्खा। पिताके हाथोंसे अभिषेक होजाने पर चक्रवर्ती राजाकी सम्पत्ति पाकर सहज ही प्रकाशमान आजि-तसेन सूर्यके तेजसे सूर्यकान्त मणिके समान और भी अधिक शोभाय-मान हुए।

इसी समय बड़े बड़े देवता जिनके चरणोंमें सिर नवाते हैं वे स्वयं-प्रभ नामक जिन भव्य लोगोंको प्रबोध देते हुए वहाँ पधारे। सिंहासन पर विराजमान उन अविनाशी जिनको पास ही अवस्थित सुनकर चक्रवर्ती पुत्रसहित राजा अजितंजय जल्दीसे उन्हें प्रणाम करनेके लिए चल

दिये। बड़े ध्यानी तपस्वी मुनियों करके सेवित निर्मल तीर्थस्वरूप उन महामुनिको बड़ी भक्तिसे हाथ जोड़कर बन्धन और मोक्षके सम्बन्धमें राजाने यह प्रश्न किया। नाथ, बतलाइए, यह जीव इस संसारमें शुभाशुभ कर्मोंके द्वारा किस प्रकार बँधता या उससे मुक्त होता है? देव, संशय और विपर्ययसे व्याकुल यह सारा जगत् आपमें स्थित है—आप सारे संसारको प्रत्यक्ष जानते हो। वस्तु-स्थितिको जाननेकी इच्छा रखनेवाले राजाकी यह वाणी सुनकर अधरोष्ठ-स्पन्दन-हीन भावसे एक योजन तक सुनपड़नेवाली गंभीर वाणीसे तीर्थंकर भगवान्‌ने यों कहना आरम्भ किया। मिथ्यादर्शन[1], अविरति[2], प्रमाद[3], कषाय[4] और योग[5] ये बंधके कारण हैं। इनके द्वारा जीव ज्ञानावरण आदि कर्मबंधको प्राप्त होता है। चुम्बककी ओर आकृष्ट लोहेकी तरह आठ प्रकारके कर्मोंके वशवर्त्ती होकर वह शरण रहित जीव संसार सागरमें गोते खाया करता है। प्रमाद (कषाय)के कारण कर्मोंके वशवर्ती जीव बहुतसी योनियोंमें घूमता हुआ, गंजेके सिर पर बेलका फल गिरनेकी तरह अनायास, कभी मनुष्य योनिमें उत्पन्न हो जाता है। कठिनाईसे मनुष्य जन्म पाकर भी पुत्र, बान्धव, स्त्री आदिके मोहमें पड़ा हुआ जीव उन कर्मोंका सञ्चय करता

१—जीवादि पदार्थोंके असत् श्रद्धानको 'मिथ्यादर्शन' कहते हैं। इसके पाँच भेद है। २—हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापोंके न छोड़नेको 'अविरति' कहते हैं। इसके बारह भेद हैं। ३—धार्मिक क्रिया—सामायिक, पूजनपाठादिमें अनादर करनेको प्रमाद कहते हैं। इसके पन्द्रह भेद हैं। ४—आत्मस्वभावका घात करनेवाले और दुर्गतिके कारण क्रोधादि परिणामको कषाय कहते हैं। इसके पच्चीस भेद हैं। ५—मन, वचन और शरीरकी क्रिया द्वारा कर्मोंके आनेकी शक्तिको योग कहते हैं। इसके पन्द्रह भेदे हैं।

ये पाँचों कर्मबंधके कारण हैं। इनका विस्तारसहित वर्णन 'गोम्मटसार' 'राजवार्तिक' आदि ग्रन्थोंसे जानना चाहिए।

है जिनसे फिर बुरी योनियोंमें जाना पड़ता है। यह जान कर, जन्म-मरणके दुःखसे डरनेवाले अच्छी बुद्धिके लोग कर्मबन्धनसे मुक्त करने-वाली सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रकी सम्पत्तिका संग करते हैं। आत्मज्ञानियोंने पदार्थोंके सच्चे ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहा है, जिनमत पर विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहा है और हिंसा आदि कर्मोंकी निवृत्तिको सम्यक्चारित्र कहा है। इन तीनों बातोंके एकत्र होनेसे सब कर्मोंकी निवृत्ति हो जाती है। इन तीनों बातोंमेंसे एक एकके होनेसे वह बात सिद्ध नहीं होती। ये तीनों अंधे और लँगड़ेके समान परस्पर सहायसापेक्ष हैं। सम्यग्ज्ञानसे भावी कर्मका आगमन रुद्ध होता है; सम्यक्चारित्रसे पूर्वार्जित कर्मका नाश होता है और सम्यग्दर्शनसे इन दोनोंकी पुष्टि होती है। इस प्रकार ये तीनों परस्पर उपयोगी हैं। मूर्ख लोग केवल, ज्ञानको ही संसारक्षय–कारक समझते हैं, पर यह ठीक नहीं। सम्यक्चारित्रकी भी बड़ी आवश्यकता है। केवल दवाका नाम जान लेने-से रोग शान्त नहीं होता; उसके लिए दवा पीनेकी जरूरत होती है। जिनदेवके मुखारविन्दसे इस प्रकार बन्धन और मोक्षका कारण सुनकर तत्क्षण अजितंजय महाराज विरक्त हो गये। भव्यता सदैव मोक्षके लिए शीघ्रता कराती है। शान्तचित्त अजितञ्जय बन्धु, पुत्र, स्त्री आदिके प्रेमको छोड़कर, अजितसेनको राज्य देकर श्रमणों करके सेवित मोक्षपद पानेके लिए प्रस्तुत हुए। मन-वाणी-कायासे शुद्ध चक्रवर्त्ती राजा अजितसेनने भी जिनमत पर विश्वास स्थापित किया। सज्जनों द्वारा पूजित जिने-श्वरकी तीन परिक्रमायें करके बड़े ऊँचे विशाल फाटकोंवाले पुरमें उन्होंने प्रवेश किया।

एक समय राजवृन्द सहित राजा अजितसेनने अपने तेजस्वी सेनापतिको आगे करके दिग्विजयकी इच्छासे युद्धयात्रा की। उफने हुए फेनके समान श्वेत छत्र यात्राके समय राजाके सिर पर ऐसा जान पड़ता था, मानों

छत्रके वहाने स्वयं चन्द्रमा उनकी सेवा करने आया है। विचित्र रत्नोंसे परिपूर्ण कोखवाले गंभीर ध्वनि करते हुए समुद्रोंके समान सब निधियाँ चलते हुए रथके रूपसे उनके साथ चलीं। सहस्रों व्यन्तर देवतों द्वारा सुरक्षित और अपने अपने कामके करनेमें लगे हुए सब रत्न उनके मार्गमें आगे आगे चले। उन चक्रवर्तीकी सेनाके घोड़ोंकी टापोंसे उठे हुए रजोराशिने सूर्यका मार्ग रूँध लिया। उस रजसे परिपूर्ण दिशायें किरणोंके भयसे ही मानों अदृश्य होगईं। यह वड़ी विचित्र वात हुई कि राजा अजितसेनके वहुत दूर रहने पर भी उनकी दौड़ती हुई सेनाकी धूलने शत्रुनारियोंकी आँखोंमें घुसकर ऐसा किया कि उनके वरावर आँसू गिरने लगे। सव रत्नोंको अपने वशमें किये हुए महावली उन चक्रवर्त्तीको आगे आया जानकर सव राजा लोग भेंटें लिये हुए हाथ जोड़े आ-आकर मिलने लगे। अद्वितीय दैववल-सम्पन्न और विस्तृतकीर्तिसे सव दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले वे राजा शक्तिसे वढ़े हुए नरपतियोंको झुकाते हुए समुद्र तट पर पहुँचे। उसी समय क्षोभको प्राप्त सिंहासनसे उठकर प्रभास नामक देवताने चक्रवर्त्ती राजाको समीप आये हुए जानकर, सामने उपस्थित होकर, हाथ जोड़कर दिव्य रत्नोंसे सत्कार पूजन किया। आकर विचित्र आभूषण अर्पण करके हाथ जोड़कर और यह कहकर कि "देव, प्रसन्न रहिए, जय हो, पृथ्वीकी रक्षा करिए" मागध (मगध-नरेश) ने भी सचमुच मागध (वन्दीजन) का काम किया। मुकुटको झुकाकर मद-मान-शून्य वरतनु नामक देवने भी द्वीप समुद्र और खानोंकी चीजोंके मनोहर तोहफ़े देकर परिवारकी तरह उनकी अधीनता स्वीकार करली। अजितसेनने पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाके नरपति, विद्याधर और देवता आदिको जीतकर आकाशगमनका गर्व रखनेवाले विजयार्ध पर्वतके निवासियोंको भी जीत लिया। प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्तिसे युक्त अजितसेन सवको जीत-

नेकी शक्ति रखते थे। उन सूर्यकी कान्तिको भी फीकी बना देनेवाले तेजस्वी राजाने अगर विजयार्ध पर्वतके निवासी विद्याधरोंके जीत लिया तो आश्चर्य ही क्या है ? शत्रुओंके पराक्रमको नीचा दिखानेवाले अजितसेन विविध रत्नोंसे युक्त पृथ्वीको वशमें करते हुए नित्य वैभवको बढ़ाकर सब लोगोंसे प्रीति करने लगे । नित्य प्रति उनके सभामें जाने पर बत्तीस हज़ार पृथ्वीके मुख्य राजोंके मस्तकों पर उनके चरणोंकी रज पटवासचूर्णकी शोभाको प्राप्त होती थी । पूर्वजन्मके किये अलौकिक पुण्यके प्रतापसे छानवे हज़ार स्त्रियोंके मुखकमलके रस लेनेवाले भ्रमर वे चक्रवर्ती राजा थे। उनके मन्दिरका आँगन वर्षाकालके विना भी मंदगामी चौरासीलाख हाथियोंके मदजलकी कीचड़से दुर्लंघ्य बना रहता था। उनकी सेनाका समूह, तरंगोंसे समुद्रके समान, वायुके समान चञ्चल चालवाले अठारह करोड़ उत्तम घोड़ोंसे सदा क्षोभको प्राप्त रहता था। शुद्ध कुन्दकुसुमके समान उज्ज्वल तीन करोड़ गउओंसे व्याप्त अजितसेनके राज्यान्तर्गत वनभूमियाँ शरदऋतुके बादलोंसे परिपूर्ण दिशाओंके समान देख पड़ती थीं। कामदेवके समान सुन्दर अजितसेनकी समुद्रमेखला पृथ्वी एक करोड़ हलोंसे जोती जाकर इच्छानुरूप अन्न देती थी। समर्थ अजितसेनको सेना, नाट्य, निधि, रत्न, भोजन, आसन, शयन, पात्र, वाहन, पुर—यह दस प्रकारका भोग प्राप्त था। पृथ्वीके तिलकस्वरूप उन महाराजकी सेवा सोलह हज़ार अमर करते थे। उन्होंने इन्द्रके समान अपने दुःसह तेजसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त कर दिया। अजितसेनने कुछ ही दिनोंमें मनुष्य, विद्याधर, देवता और बहुतसे रत्नोंको उत्पन्न करनेवाली खानोंसे परिपूर्ण आर्यखण्डको म्लेच्छखण्ड सहित अपने अधीन कर लिया। प्रचण्ड धनुषसे शत्रुओंको मारनेवाले बलवान् पृथ्वीतिलक सम्राट् अजितसेन इस प्रकार छह खण्डोंसे सुशोभित भरतखण्डको अपने वशमें कर

उसके बाद वे उत्कण्ठित बन्धुजनोंसे परिपूर्ण अयोध्यापुरीको लौट आये। पुरीमें बाजारोंमें तरह तरहकी सजावटें और सफाइयाँ कीगई थीं। दरवाजों पर तोरण स्थापित किये गये थे। उसके भीतर कामदेवके समान सुन्दर महाराजने जब प्रवेश किया तब उन्हें देखनेके लिए झुण्डकी झुण्ड पुरनारियाँ उमड़ चलीं। प्रवेशकालमें बजते हुए डंकेकी आवाज़से सचेत होकर राजमार्गकी ओर दौड़ती हुई स्त्रियोंको गुणयुक्त होने पर भी कुचकलशों और नितम्बोंका भार खल-गया। राजाके रूपको देखनेमें मोहित नेत्रवाली किसी स्त्रीके कमरका कपड़ा शिथिल गाँठ होजानेसे गिरने ही वाला था, किन्तु बुद्धिमान् पुरुषकी तरह पसीनेने उसे उस जगहसे हटने नहीं दिया। किसी स्त्रीने घरकी दीवारोंमें विचित्र चित्र बनाना छोड़ दिया और झरोखेसे टकटकी लगाकर वह राजकुमारको देखने लगी। वह चकोरनयनी राजाका रूप देखनेसे और ही चित्र अपने चित्तमें अङ्कित करने लगी। अन्य जनोंसे भरे-हुए मार्गमें जाती हुई किसी दुर्बलांगी रमणीके पसीनेकी बूँदोंसे सुशोभित कुचकलशोंके बीचमें शोभा न पानेसे लज्जितसी होकर माला टूट गई। कोई स्त्री पैरोंमें उसी समय महावर लगाकर आई थी, उसके अधर भी लाल थे। जान पड़ा कि राजाके रूपको देखकर उसके भीतर इतना अनुराग उत्पन्न हुआ कि वह भीतर नहीं समाया और बाहर निकल पड़ा; वह स्त्री इस प्रकार जा रही थी। एक स्त्री उँगलियोंसे उँगली मिलाकर दोनों हाथोंको सिर पर धनुपाकार करके जँभाई लेने लगी। जान पड़ा कि राजदर्शनसे हृदयमें प्रवेश किये कामदेवके लिए वह मंगलसूचक तोरण बना रही है। एक आँखमें रुचिर अंजन लगाये और दूसरी आँख वैसे ही लिये हुए एक स्त्री दौड़ी जा रही थी। उसे देखकर मुसकाते हुए लोगोंको शिवके अर्धनारीश्वर रूपका स्मरण हो आया। बिखरे हुए बालोंको एक हाथसे सँभाले हुई अन्य एक स्त्रीको

उसके शिथिल नीवीवाले वस्त्रको रोके हुए और रोमोद्गमकी वृद्धिसे तकलीफ़ पहुँचानेवाली कर्धनी एक साथ ही कोप और प्रेमका पात्र (शृंगारके कारण प्रेमका पात्र और चलतेमें तकलीफ़ पहुँचानेके कारण कोपका पात्र) बनी। कादम्बरी मदके समान अन्तःकरणको मोहित करता, चित्तभ्रमके समान स्मृतिशक्तिको मिटाता और वायुके समान देहमें कम्प उत्पन्न करता कामदेव ग्रहतुल्य होकर स्त्रियोंमें क्रीड़ा करने लगा। नीतिनिपुण, क्षोभशून्य, शत्रुओंको क्षीण करनेवाले, कमलनयन, तेजसे सूर्यको जीत लेनेवाले राजाने इस प्रकार विजलीके समान कान्तिवाली पुरनारियोंको मोहित करते हुए, स्थापित कलश आदि मङ्गल-वस्तुओंसे शोभित राजभवनके द्वार पर पहुँच कर उसमें प्रवेश किया। राजा अजितसेन मन्दिरके भीतर प्रवेश करके उत्सवकी चौक पर वैठे, और वृद्धाओंकी उतारी मांगलिक आरतीको स्वीकार कर हाथ जोड़े गुरुजनोंके चरणोंमें उन्होंने प्रणाम किया। इस प्रकार झुककर भी उन्होंने उन्नति प्राप्त की; यही परम अद्भुत हुआ। चक्रवर्ती अजितसेनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञाको शिर पर धारण करके राजा लोग, विद्याधर लोग और देवगण दूसरे दिन अपने अपने स्थानोंको गये। दिव्य रूपवाली स्त्रियोंके साथ दशांग भोग करनेवाले अजितसेन सब प्रकारके भोग भोगने लगे। इस प्रकार निःशंक होकर शत्रुओंको राज्यभ्रष्ट करके अजितसेन पूर्व पुण्यके प्रतापसे साम्राज्यका शासन करने लगे।

इति सप्तमः सर्गः।

अष्टम सर्ग।

चरणकमलोंमें प्रणत जनसमूहकी रक्षा करनेवाले अजितसेनके पृथ्वीका शासन करने पर गिरते हुए मधुको पीनेवाले भ्रमरोंको प्रसन्न करता हुआ वसन्त आगया। अश्रुपूर्ण रमणीय नेत्रोंसे रमणियोंका मनोरञ्जन करनेवाले विरही लोग नव वृक्षोंके नव मुकुलों पर स्थित भ्रमरोंकी पंक्तिको न देख सके। कामदेवको उत्पन्न करनेवाला सूक्ष्म चंपेका पराग झड़ते देखकर दुःखित पथिक सुरकामिनी सदृश मनोरम वाणीवाली प्रियाका स्मरण करने लगे। कलियुगके समान श्यामवर्णवाली नागकेसरके वृक्षकी कली प्रियतमके स्थान पर न पहुँची हुई स्त्रियोंके चित्तमें भारी कामपीड़ा उत्पन्न करने लगी। अन्तःपुरके बागोंमें कमलपुष्पको हिलाकर अनेक प्रकारका मधु पीते हुए भ्रमरोंके समूहने और चारों ओर शब्द करती हुई कोकिलाओंने कामिनियोंके कलेजे काटना शुरू कर दिया। बौराये हुए आमको देख-कर कामदेवके बाणोंसे घायल होकर किस स्त्रीने प्रसन्नता प्राप्त कराने-वाली सुरति प्रियसे नहीं की? वनभूमिके शीतल वायुने प्रियके पास जानेके लिए व्यग्र हुई स्त्रियोंको उत्कण्ठापूर्ण करते हुए उनके मुख-कमलको प्रफुल्लित करके हरएक पल्लवसे सुन्दर नृत्य कराना आरम्भ कर दिया। कोकिलाओंका शब्द पथिकोंसे मानों यह कहता था कि फूलोंके गुच्छोंसे झुका हुआ कुरबकका पेड़ तुम्हें क्यों नहीं सन्ताप पहुँचाता, जो तुम परदेसमें बसे हुए हो। प्रियतमके साथ किये गये मानको न सह सकनेके कारण कुलकामिनियाँ आम्रमञ्जरीके परागसे परिपूर्ण और कामकी कुमुक पाये हुए वायुसे पीड़ा पाने लगीं। फूलोंसे झड़ते हुए मधुमें आसक्त भ्रमरसमूहका विषम गुंजरण सुनकर परदेसमें पड़े हुए पुरुषको चन्दनमाला आदि प्यारी चीजें विषके समान जान पड़ने लगीं। उन दिनों वसन्तऋतुके फूलोंको देखकर नित्यतपोनिष्ठ यतियोंके चित्तमें भी

कामविकार उत्पन्न होगया। धीरे धीरे हिलते हुए मौलसिरीके पेड़ोंकी सुगन्ध लिये हुए पवनके शरीरमें लगनेसे और मधुर कोकिलाका पञ्चम राग सुननेसे स्त्रियोंको अपनी सुधबुध नहीं रही।

एक सखी दूसरी सखीसे कहती है—वह प्राणप्रिय मुझ प्राणप्यारीसे दगाबाज़ी करता है, इसीसे मेरा शरीर दुबला होता जा रहा है। मैं तुमसे कैसे छिपा सकती हूँ? तुम मिलनेके लिए आग्रह न करो। उसको मेरी ममता भी नहीं है, इसीसे मेरे मनको बड़ा सन्ताप है। सो हे सखि, इसी कारण उसके पैरों पड़नेसे भी मेरा सन्ताप नहीं घटता। जो सैकड़ों अपराध करनेवाला भारी दुर्जन है उस पतिके होनेसे क्या सुख मिल सकता है? इससे महिमा करानेवाला मान ही करना हमें ठीक जान पड़ता है। इस दुःखित शरीरके तापको न चन्दनका जल दूर कर सकता है और न चन्द्रमा ही। तथापि नित्य अप्रिय करनेवाले प्रियको घर लानेके लिए मैं चेष्टा नहीं करती। जो स्त्रियाँ अन्य ऋतुओंमें दूतीसे इस प्रकार कहती थीं, वसन्तने उन्हें सुन्दर और कामदेवके प्रतिनिधि प्राणवल्लभके वशमें गजराजकी तरह कर दिया।

अन्य कोई कमलनयनी नायकके साथ क्रीड़ा करनेकी इच्छासे इस प्रकार विनती वचन कहने लगी, जिसमें आगे विरहका दुःख न उठाना पड़े। उसने कहा—सब कलाओंसे (६४ कला विद्या, दूसरे पक्षमें चन्द्रमाकी सोलह कला) युक्त चन्द्रमाकी समान सज्जनों (नक्षत्रों और सज्जन पुरुषों) को सन्तोष देनेवाली, समर्थ, तुम सरीखी सखी मुझे बड़े पुण्योंसे मिली है। इस लिए हे सखि, प्राणनाथके पास जाकर प्यारे और उचित वचन कहना। क्योंकि जो बात मीठे बोलसे मिलती है वह बात अप्रिय वचन कहनेसे नहीं प्राप्त होती। हे मृगनयनी, मैं सदा तुम्हारी दासी बनी रहूँगी। मेरा मन सन्तापयुक्त और संभोगकी इच्छा रखनेवाला है।

तुम प्राणनाथको यहाँ ला सकती हो । अतः प्रियतमको लाकर मुझे सुखी करो। हे सम्माननीये, मेरे दुःखित मनको ये वसन्तके दिन बहुत ही जलाते हैं। इस कारण महान् ऐश्वर्य और सम्मानसे युक्त मेरे प्रियको मीठी बातोंसे मुझ पर सदय बनाओ।

अनुपम, परदेसी और वसन्तमें सुखदायक अपने पतिका स्मरण करते करते कामरूप बहेलियेके बाणोंसे घायल होकर अनेक स्त्रियाँ प्राणोंसे हाथ धो बैठीं । सर्प मनुष्य देवता आदिको प्रसन्न करके बकुलके पुष्प प्रफुल्लित देख पड़ते हैं, और वे शरदृतुके श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल स्त्रियोंकी हँसीकी उपमाको प्राप्त होते हैं। चमकसे उज्ज्वल बिजलीको भी लजानेवाले कचनारके फूलों पर मतवाली रसीली भौंरियाँ मन्द गुञ्जरण करती हुई रमने लगीं । "हे नीतिचतुर, आपके वियोगशोकसे मलिन हृदयकमलमें पीड़ित उस स्त्रीको चन्द्रमाकी किरणें जलाती हैं और कामदेव भी मारता है । हे स्वरूपसे कामदेवको जीतनेवाले, सवाँर सिंगारकी चेष्टासे रहित और पालेकी मारी कमलिनीके समान मुरझाई हुई उस स्त्रीकी रक्षा करोगे तो यह तुम्हारा गुण है। अथवा उसे तिला-ञ्जलि देदो। रातोंमें जो कामदेवका बाण उसके हृदयके भीतर घुसकर स्थिर होगया है उसे अगर सम्भोगके द्वारा निकालोगे तो वह उस हृदयके साथ न जायगा। हे सुभंग, इस कारण लोहेकी ऐसी कठिन-ताको छोड़कर जाओ, और प्यारीको रमाओ । हे कामदेवकी पीड़ाको मिटानेका रहस्य जाननेवाले, वह चन्द्रमुखी विरहबाधा सहनेके योग्य नहीं है" कुपित नायकने इस प्रकार दूतीके वचन सुनकर तत्क्षण अरी मानको त्यागकर प्रियाके पास प्रस्थान किया।

विधवाओंके लिए अन्तकस्वरूप कनेरका फूल गन्ध-गुणसे शून्य देख पड़ा । विधाताने यद्यपि बड़ी विचित्र सृष्टि की है, तथापि

योग्यको योग्य वस्तु देनेमें अक्सर वह चूकता ही चला गया है । वृक्षपंक्तिरूपिणी स्त्रीके ओठोंके समान अपार शोभाधारी टेसूके फूलोंको देखकर जान पड़ता था कि वे वसन्तकी खूनसे तर तरवार हैं। शमदममें हानि पहुँचानेवाले भौंरेका गान शुरू होने पर दक्षिण पवन पुष्पपरागपरिपूर्ण लताओंको नृत्यकी शिक्षा देने लगा । अशोकवृक्षकी कुमुक पाये हुए कामदेव विरहिणी स्त्रियोंके भारी गर्वको याद कर उन्हें एक साथ ही मृत्युके समान लीले लेता है। पहले जो विरहिणी स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न मनसे रहती थीं वे अब वसन्तमें अत्यन्त दुस्सह कामदेवसे सताई जाकर दुख पाने लगीं "हे सखि, कामजनित शोकसागरसे उठे हुए रोदनको छोड़ो। लोग कहते हैं कि सुमेरुके समान अटल दृढ़ धैर्य ही सब विपत्तियोंको नष्ट कर सकता है। जिस वसन्तऋतुमें लोगोंको मनोरम लाभ पहुँचानेवाले वृक्ष अपने गुणोंसे सज्जनोंके समान उज्ज्वल आभावाले पुष्पोंसे शोभा पाते हैं उस वसन्तको तुम्हारे प्यारेने आनेकी अवधि कहा था। नायकका चित्त कोमल और वियोगिनी स्त्रियोंका हितैषी है। वह इस सयमको आते देखकर अब परदेसमें नहीं रह सकता। इसलिए इस शरीरको नियमपालनपूर्वक सुरक्षित रक्खो। ऐसा न करो कि यमराज इसे शीघ्र ही नष्ट कर सकें। थोड़े ही दिनोंमें तुम उसके साथ रमण करोगी । वह तुम्हारे विरहको सह नहीं सकता।" जिसकी वियोगव्यथासे कान्ति फीकी पड़ गई है, जिसको अपना ही मान दुःखदायक हो रहा है, जिसे जीनेकी चाह नहीं है, जिसका पति दूर देशमें है और जिसने चन्दन-माला आदि शौककी चीजोंको छोड़ दिया है उससे सखीने इस प्रकार हितके वचन कहे।

"हे सुन्दर भौंहवाली, तुम्हारा यह भौंहें टेढ़ी करना कुटियोंकी समताको प्राप्त होता है । मुझ प्रियतमके दासभाव स्वीकार करने पर

भी तुम्हारा मुख क्यों कोपयुक्त देख पड़ता ? तुम्हारी रतिके विना मुझे कुछ भी सन्तोष नहीं है । मैं तो तुम्हें हाथ ही जोड़ता हूँ। मैं गर्व छोड़कर प्रणाम कर रहा हूँ । फिर तुम क्यों वृथा मान कर रही हो ? आकाशके समान अनन्त कान्तिरूपी जलमें डूबा हुआ तुम्हारा मुख, कमलके समान जान पड़ता है। बहुतसे हावभावोंसे युक्त तुम्हारे मुखकमलको मैं भ्रमरके समान पीनेके लिए उत्सुक हो रहा हूँ। हे सुन्दर शरीरवाली, हे पीन-पयोधरवाली, मेरे चित्तको यह कामदेव दिनरात पीड़ा पहुँचाता है; इस लिए भयभीत हो रहा है । क्रोध कम करके मुझे भजो और मानको छोड़ो "। इस प्रकार नायकके कहने पर किसी स्त्रीने उसी समय उससे प्रेमका व्यवहार किया। समझदारोंके रसीले वचन किसे नहीं प्रसन्न कर देते ?

चन्द्रमाके समान उज्ज्वल नदियोंसे परिपूर्ण कुबेरकी (उत्तर) दिशामें स्थित अन्धकारमय हिमवान् पर्वत पर, जिसकी कन्दराओंमें सर्पके समान घनाकाला अन्धकार भरा हुआ है, सूर्यनारायण पहुँच गये । भ्रमर-समूहके बैठनेसे तिलके समान काले रंगवाली तिलक नामके वृक्षोंकी कतार विकासको प्राप्त हुई। उसे देखकर आनन्दशून्य चित्तवाली मानिनीको मनमें कामदेवकी भारी पीड़ा सहनी पड़ी। भ्रमरसमूह भौंरियोंके साथ, प्रसन्न कर देनेवाले पुष्पमधुको पीकर गुंजरण करने लगे । उसे सुनकर किसे ताक़त थी कि उस मार्ग होकर जाता। शीतल समझ कर पंखोंमें पानी छिड़क कर सखा-सखीके पवन करने पर उसकी छींटें गर्म पानीकी बूंदोंके समान विरहियोंको दुख देने लगीं । भारी हानिसे युक्त पद्मवनको देखकर कुपित सूर्यने दिनोंको गर्म कर दिया। तेजस्वी लोगोंका हृदय सर्वथा अभिमानी होता है।

कामदेवके स्वाभाविक मित्र वसन्तके आने पर इस प्रकार भ्रमरगुञ्जनसे.

सब दिशाओंके परिपूर्ण होने पर अजितसेनने एक दिन अपनी इच्छासे अन्तःपुरमें प्रवेश करके गोदमें बैठी हुई शशिप्रभा रानीसे यों कहा—प्रिये, देखो, कोकिलाओंके शब्दके मिससे, तिलकपत्र (स्त्रीपक्षमें तिलक और वनलक्ष्मीके पक्षमें तिलकका पेड़) की विचित्र शोभासे युक्त स्त्रीके समान पुरके उपवनकी शोभाको देखनेके लिए मानों यह चैत्र मुझे बुला रहा है। कामदेवके सखा वसन्तके सत्कारके लिए मलयमारुतसे हिलती हुई शाखावाले वृक्षोंसे परिपूर्ण बागमें मैं चलना चाहता हूँ। हे कुच भारसे कुछ झुके अंगवाली, तुम भी वहाँ चलकर अदृश्य वनदेवताओंके नेत्रोंको सफल करो। वहाँ अगर लज्जित होकर मेरे नेत्रोंको सुख देनेवाले नृत्यको छोड़कर अगर मोर भागना चाहे तो हे सुमुखि, कामदेवके निवासस्थल नितंबको चूमनेवाला केशपाश रेशमी वस्त्रसे ढक लेना। हे सुन्दरी, आमके बौर खानेसे कसैला होगया है कण्ठ जिनका ऐसी कोकिलाओंका झुण्ड अत्यन्त मधुरता प्राप्त करनेकी इच्छासे चुप होकर तुम्हारी वाणीको सुनेगा। तुम्हारे चरणोंकी चोट पाकर वहाँ हे सुमुखि, दोनोंकी सदृश अवस्था होगी। अशोकका वृक्ष तो शीघ्र ही कलियाँ धारण कर लेगा और मेरे रोमाञ्च हो आवेगा। हे हरिणनयनी, स्वाभाविक धीमी चालसे टहलती हुई तुम्हें देखकर वनके सरोवरोंमें रहनेवाली हंसियाँ तुम्हारे शिष्य होनेका गौरव प्राप्त करनेकी इच्छा करेंगी। हे सुन्दरी, बारबार हाथसे हटाया जाने पर भी नव विद्रुमसदृश तुम्हारे अधरको अशोकका नव पल्लव समझ कर दौड़नेवाला भ्रमर बागोंमें किसे हँसाये विना रहेगा। हे भोली आँखोंवाली, वनके भीतर बने हुए लतामण्डपोंमें आसपास लगे घने पेड़ोंके द्वारा रोकी गई सूर्यकी किरणें नहीं प्रवेश कर सकतीं। तथापि हमें अन्धकारका सामना न करना पड़ेगा। तुम्हारे मुखचन्द्रके प्रकाशसे सब अन्धकार दूर होजायगा। हे चन्द्रमुखी, वहाँ

सखियाँ तुम्हारे पैरोंको दबावेंगी। तुम विहार करना। तुमको मतवाले भँवरोंमें नेत्रोंका, लताओंमें शरीरका, केलोंमें ऊरुओंका और कुँदरूके फलोंमें ओठोंका सादृश्य देख पड़ेगा। पूर्ण प्रेम करनेवाली प्रियतमाको इस प्रकार मधुर वाणीसे क्षणभर एकान्तमें रमाकर अजितसेनने अपने नगरमें लोगोंको आनन्द देनेवाली वनविहारकी यात्राका ढिंढोरा पिटवा दिया। यात्राकी सूचना देनेवाला डंकेका शब्द मजलयुक्त दिग्गजोंको दूसरे हाथीका भ्रम दिलाकर कुपित करता हुआ, जलभरे बादलकी आवाज़का भ्रम दिलाकर मयूरोंको उत्कण्ठित करता हुआ, नागोंको चौंकाकर उत्तेजित करता हुआ, पर्वतोंके शिखरोंको हिलाता हुआ आकाशमें व्याप्त होगया।

इति अष्टमः सर्गः।

नवम सर्ग ।
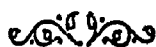
पुरजनसहित नरेन्द्रने स्त्रीके समान रमणीय वनशोभा देखनेके लिए यात्रा की । स्त्री मधु (मद) से उत्पन्न विभ्रमों (विलासों) से अभिराम होती है और मदसे कोकिलाके समान सुन्दर शब्द करती है । वैसे ही वनस्थली भी मधु (वसन्त) से प्राप्त शोभासे मनोहर और मस्त कोकिलाओंके कलरवसे परिपूर्ण थी । ललित घनी अलकोंवाली (वनस्थलीके पक्षमें ललित घने तमालके पेड़ोंसे परिपूर्ण),मनोहर दाँतोंसे सुहावनी (वनस्थलीके पक्षमें मनोहर पक्षियोंसे सुहावनी), तिलकसे सुशोभित (वनस्थलीके पक्षमें तिलकके पेड़ोंसे सुशोभित) रमणियाँ सर्वथा वनस्थलीके समान होकर स्तनों और जाँघोंके बोझसे धीरे धीरे जा रही थीं । बजती हुई सुन्दर करधनीकी ध्वनि सुनकर पीछे पीछे चलते हुए राजहंसोंके झुंडों और स्त्रियोंकी ओर नौजवान लोग एकसी चाल देखनेके कौतूहल-वश बारम्बार देखते थे । राजहंसकी चाल वैसी दर्शनीय नहीं और गजराजकी गति भी वैसी धीमी नहीं । स्त्रियोंको ऐसी अनोखी चालकी शिक्षा देनेवाला गुरु उनका अपने ही नितम्बका भार हुआ । मृगनयनियोंके चञ्चल कटाक्षोंसे दोनों ओर व्याप्त हुआ आकाश पवनकम्पित नीलकमलोंसे परिपूर्ण सरोवरकी शोभाको प्राप्त हुआ ।

" हे मुग्धे, यह तुम्हारा ललित तिलक आदि शृंगारोंके करनेका प्रयास वृथा है । क्योंकि कमलके धोखे पास आते हुए भ्रमर-समूह ही तुम्हारे मुखकमलको अलंकृत कर रहा है । हे कमलनयनी, आदरपूर्वक तुम जिस हारको धारण करती हो उसे भी मैं तुम्हारे लिए केवल वृथाका बोझ ही समझता हूँ । क्योंकि चलते समय स्तनोंके बीचमें जो कामजलकी बूँदें झलक रही हैं उन्हींसे तुम्हारी अपार शोभा हो रही है । कानों तक फैले हुए नेत्र क्या शोभा नहीं बढ़ाते जो हे मनोहर अङ्ग-

वाली, तुम व्यर्थ ही यह नीलकमल कानोंमें धारण करती हो। हे कान्ते, तुम व्यर्थ ही पैरोंमें बहुत घना महावर लगाकर देर कर रही हो। नव पल्लवके समान कान्तिवाले तुम्हारे चरणतलमें ऐसे ही सुन्दर स्वाभाविक ललाई झलकती है"। अपने शरीरको सिंगारनेमें लगी हुई किसी स्त्रीसे उसकी स्तन-जघन-भारसे धीमी चालको जाननेवाले प्रियतमने शीघ्र चलनेकी इच्छासे ये वचन कहे। "हे मनोहर अंगवाली, तुम्हारा प्यारा कहता है कि मूर्खताके कारण या बे-जाने एक बार अपराध बन पड़ने पर उससे निवृत्ति ही उसका दण्ड समझा जाता है। इस लिए अब मैं फिर वैसा अपराध नहीं करूँगा। तथापि हे सुमुखी, जब तक दूसरा कोई शिक्षा नहीं देता तब तक मनुष्य दोष करनेसे बाज़ नहीं आता। सो हे सखी, तुम्हारे विरहसे सहानुभूति रखनेवाले कामदेवने उसे विनाशके निकट पहुँचा कर खूब शिक्षा देदी है। और हे सखी, तुम भी शरीरको दुबले बनानेवाले प्रिय-वियोगको सहजमें नहीं सह सकती हो। गर्म साँसोंके कारण सूखे हुए तुम्हारे ओठ ही भीतरी पीड़ाका पता दे रहे हैं। मेरा विरह इस समयकी तरह पीछे भी पीड़ा पहुँचानेवाला नहीं होगा, अपने इस मानको भी छोड़दो। क्योंकि किसी कार्य या प्रतिज्ञाके आरंभमें चित्त जितना स्थिर रहता है उतना उस शुरू किये हुए कार्य या प्रतिज्ञाका अन्त तक निर्वाह करनेमें नहीं रहता! अभिप्राय यह कि तुम मेरे विरहको इस समय जिस तरह सह रही हो उसी तरह अन्त तक भी उसे सहोगी-अपनी आजकीसी दृढ़ता धारण किये रहोगी, यह असंभव है। इस प्रकार हित और मधुर तथा साँपका जहर झाड़नेके मन्त्रोंके समान सखीके वचनोंसे मानरूपी विष उतर जाने पर कोई स्त्री, मानों जाना नहीं चाहती इस तरह, धीरे धीरे पैर रखती हुई अपने प्रियतमके पीछे पीछे चली।

कोई कामी नायक प्रियाके कन्धे और पीठ परसे घुमाकर डाले हुए हाथमें उसके कुचाग्रको पकड़े गजराजकी तरह मन्द गतिसे धीरे धीरे चला। दूसरा

नायक राह चलनेकी थकावटको दूर करनेके नहानेसे धीरे धीरे अलस-गतिसे जाती हुई प्रियाकी जाँघें सुहराकर कामोद्दीपन करता हुआ तंग राहमें भी मजेसे चला जा रहा था। इस प्रकार कामदेवसे व्याकुल हुए हैं चित्त जिनके ऐसे पुरजनोंने तरह तरहकी चेष्टायें करते हुए स्त्रियों सहित उपवनमें प्रवेश किया। उस उपवनमें वने हुए क्रीड़ा-शैल पर जाकर पहलेसे ही राजा अजितसेन ठहरे हुए थे। वृक्षोंकी डालियोंके अग्रभागको हाथसे पकड़े खडी, एकटक फल-फूलोंकी शोभा निहार रही हरिणनयनी स्त्रियाँ वनदेवताओंके समान जान पड़ने लगीं। वृक्षोंके पुराने पत्तों पर अपने नखोंकी ललाई पड़ने पर उन्हें वनितायें अपने भोलेपनके कारण नव पल्लव समझती थीं। किसी कमलनयनीके प्रेमीने उसके कानोंमें जो वड़े आदरसे अशोक-पुष्प पहनाया वह अशोक होने पर भी उसकी सौतके लिए शोकका कारण वन गया। फूल चुननेकी इच्छा रखनेवाली मृगनय-नीके भुजमूल (स्तन) देखनेकी लालसासे उसका पति झुकी हुई डालियों-वाले वृक्षोंके रहते भी ऊँचे ऊँचे पेड़ोंके पास ले जाता है। तिलकका वृक्ष पहले कहने भरको तिलक था। उस समय कमलनयानियोंके सिर पर उसे लगानेसे सचमुच ही उसका तिलक नाम सार्थक हो गया। "हे सुन्दर दाँतोंवाली, तुम्हारे सुनहले रंगके शरीर पर चम्पेकी माला नहीं खुलती।"—यों कहकर प्रियाके स्तनतटको छूते हुए नायकने उसके हृदयमें मौलसिरीकी माला पहना दी। एक नायकने प्रियाके कानोंसे अशोकपुष्प निकाल कर टेसूका फूल पहना दिया, इससे यह स्पष्ट हो गया कि संसारमें न कुछ सुन्दर है और न कुछ कुरूप है। सुन्दर और कुरूपकी पहचान अपनी रुचि पर निर्भर है। समय पर शोभासम्पन्न होनेवाले वृक्ष-समूहोंके पत्तोंको पवनसे हिलते देखकर जान पड़ता था कि इनके पुष्पोंको जो स्त्रियोंने चुन लिया है इसीसे—अपना वैभव औरके काम आते देखकर ये प्रसन्नतासूचक नृत्य कर रहे हैं।

इस प्रकार वनविहार करते करते सबको और अपने लोगोंको भी थके हुए जानकर राजा अजितसेनने जलकेलिके योग्य वस्त्र पहन कर पवित्र जलवाले सरोवरमें प्रवेश किया। स्वभावसे ही डरपोक स्त्रियोंके रोएँ खड़े हो आये और वे नाभितक पानीमें भी पतियोंके हाथ एकड़े हुए धीरे धीरे पैर रखती हुई बड़ी देरमें उतरीं। उस सारे पानीको अपने कठिन स्तनोंसे आगेको ठेलती हुई कमलनयनी स्त्रियाँ अपने विस्तृत और कठिन मस्तकसे पानीको हिलोरनेवाली जंगली हथनियोंका अनुकरण करने लगीं। निर्मल जलके भीतर युवतीके मुखको कमल समझ कर चूमनेकी चेष्टा करनेवाला मतवाला भौंरा व्यर्थ श्रमके सिवा और कुछ न पाता था। सच है, मद-से मूढ़ मनुष्य हितको नहीं जानता। सरल नवीन मृणाल-नालको बाहु और चंचल भ्रमरोंको नेत्र समझ कर किसी कृशांगी स्त्रीने अपने शरीर-का अनुकरण करनेवाली कमलिनीको धोखेसे लिपटा लिया। लहरोंसे कपड़ा हट जाने पर विस्तृत नितम्ब देशको नजर गड़ाकर देखते हुए पतिको देखकर लज्जित हुई कोई स्त्री थपेड़ोंसे जलको उछाल कर उसे मैला करने लगी। नाभितक जलमें उतर कर शिथिल वेणीको बिखेर कर कौतूहलसे तैरती हुई किसी स्त्रीके स्तन ही " तोंबी " का काम करने लगे। लोगोंके भयसे पतिके उड़ जाने पर भी पानीके भीतर विमुग्ध भावसे युवतियोंके घने स्तनोंको चक्रवाक समझ कर देखती हुई चक्रवाकी-को विरहकी बाधा नहीं हुई। "देखो, यहाँ इस स्वभावसे ही रम्य तट पर हे सुन्दर शरीरवाली, यह राजहंसी स्थिर होकर नहीं रहती। तुम्हारी चाल सीखनेका अभ्याससा करती हुई यह राजहंसी इधर उधर आ-जा रही है। यह सामने आता हुआ मधुर स्वरवाला भ्रमर भी कमलिनीके रसको छोड़कर मेरी तरह तुम्हारे स्वाभाविक सुगन्धयुक्त मुखकमलका रस पीना चाहता है। हे सुन्दर बालोंवाली, अपनेसे विमुख हुई स्त्रीको अनेक प्रिय वचनों और चेष्टाओंसे मनाता हुआ यह कोकपक्षी मुझे भी

रूठी हुई प्यारीको प्रसन्न करनेवाली खुशामदकी बातें सिखला रहा है। यह मछली जलसे वारम्वार आकाशकी ओर उछल रही है। हे नतांगि, मेरी समझमें तुमने इसके विलासको नेत्रोंसे हर लिया है, इसीसे यह तड़फ रही है"। इस प्रकार जलके मनोहर जीवोंको दिखलाता हुआ युवक चकोरनयनी प्रियाके गलेमें बाँह डाले हुए सरोवरके भीतर उसे रमाने लगा। दूसरे पुरुषने कमलोंके बीचमें खड़ी हुई प्रियाके मुखको विशेष विलासोंके द्वारा पहचान कर भी 'यह कमल है' इस प्रकार कहकर पास जाकर धूर्त्ततासे अनजान बन चूम लिया। कमलकी रजसे लाल हुए सौतके दोनों स्तनोंमें पतिके नख-चिन्होंका भ्रम करके ईर्ष्यायुत दूसरी स्त्रीने प्रियतमसे कुछ कहा नहीं, किन्तु कुटिल कटाक्षोंकी वह मार मारने लगी। लोगोंके द्वारा दलीमली गई कमलिनीको देखकर जान पड़ता है कि अपने मधुर विलासोंसे शोभित जलविहार करती हुई स्त्रियोंके मुखचन्द्रसे हारकर ही वह यों मलिन होगई है। जलने स्त्रियोंसे यह अदलावदली करली कि स्त्रियोंके ओठोंका (पानका) राग और पैरोंका (महावरका) राग स्वयं ले लिया और उनके चित्तको अनुरागसे भर दिया। कठिन कुचोंकी टक्करोंसे चूर होकर भी पानी बार बार उनके हृदय पर पड़ता था। पण्डित भी जब स्त्रियोंमें मोहको प्राप्त हो जाते हैं तब जड़ोंकी क्या बात है! पतिको धोखा देनेके लिए मृगनयनीने पानीमें ग़ोता लगाया। उसके अंगरागकी गन्ध पाकर भौंरे वहीं पर मड़राने लगे। इससे पतिको उसकी सूचना मिल गई। "हे मनोहर अंगवाली, तुम्हारे शरीरकी कान्तिके पानी (आव) में ही मेरी जलकेलि समाप्त हो जाती है; मुझे और जलकी क्या ज़रूरत है?" यह कहकर दूसरेने जोरसे प्रियतमाको लिपटा लिया। वारवार ग़ोता लगाती हुई स्त्रियोंको देखकर यह जान पड़ता है कि :वे पतिसे यह कहकर कि "हमारा यह अरविन्दसुन्दर मुख स्वाभाविक है, हमने कमलिनीके

मुखकी शोभा नहीं चुराई " शपथ ले रही हैं । निरन्तर गिरती हुई लहरें मानों अच्छी तरह विट-वृत्तिका अभ्यास करनेके लिए उन विलासिनियोंकी अलकोंको खींचने, जंघाओं पर चढ़ने और छातियोंसे टक्कर मारने लगीं । मुसकानकी कान्तिसे शोभायमान मुखचन्द्रवाली कोई स्त्री मुखमें भरे जलको भरकर उबरे हुए शृंगार रसकी तरह प्रियतमके ऊपर डालने लगी । जब तक एक स्त्रीके कुचमण्डल पर प्रियतमका फेंका हुआ पानीका चुल्लू पढ़े तब तक उसकी सौतका हृदय आँसुओंके प्रवाहसे पहले ही भीग गया । शिथिल चोटीसे गिरे हुए फूलोंसे सरोवरका जल तारागणशोभित आकाशकी तरह जान पड़ता था । उसमें मृगनयनीका मुखकमल ही चन्द्रमाकी कमीको पूरा करने लगा । जलकण-पूर्ण मानिनी स्त्रियोंके नेत्रों और तालाबके नीलकमलोंमें भटक कर भ्रमर कहीं नहीं ठहर सकते थे । जिनकी आँखें लाल हो रहीं हैं ऐसी स्त्रियाँ थककर दमभरके लिए जलकेलिको छोड़कर कौतुकके साथ तट पर बैठकर अपनी जाँघोंसे भारी किनारेकी ऊँचाई मापने लगीं । "अगर मैं मुँहकी हवा न दूँगा तो पानी पड़नेसे यह घायल ओठ तुमको पीड़ित करेगा " इस प्रकार कपट करके किसी नायकने दाँतकी चोट खाये हुए प्रियाके ओठको खूब देर तक चूसा । मछलियोंसे परिपूर्ण पानीमें बारम्बार प्रवेश करते हुए स्त्रियोंके नेत्रोंने अवश्य ही अपनी प्रतिकृतिका बहाना करके मछलियोंकी चंचलता चुरानेका इरादा किया है । जिनके गोरे गालों पर जलकण शोभायमान हैं ऐसी कमलवनमें खड़ी रानियाँ भ्रमर-भूषित लीलाकमल हाथमें लिए हुए लक्ष्मीदेवीका अनुकरणसा कर रही थीं । जंघाओंके भारसे पग पग पर फिसल पड़नेवाली प्रियाओंको अपने दोनों हाथों पर उठाकर उनके स्तनोंका स्पर्श पानेके लिए लोलुप नौजवानोंने उन्हें प्रसन्न करते हुए किनारे पर पहुँचाया । कमलनयनियोंने किनारे पर आकर (सरीस लगे और

दूसरे पक्षमें रसीले), राग (रंग, दूसरे पक्षमें अनुराग) से पूर्ण पुराने कपड़ोंको छोड़ दिया। उनसे पानी टपकते देखकर जान पड़ता है कि वे शोकसे आँसू बहा रहे हैं। आकाशमें घूमनेसे थकसे गये सूर्य इधर अस्ताचलके ऊपर विश्राम करनेके लिए चले, उधर ऐश्वर्यशाली राजा जलकेलिको समाप्त करके पुरमें पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने परिजनों सहित खान-पान आदि किया।

इति नवमः सर्गः।

दशम सर्ग।

और लोगोंकी तो बात ही क्या, देवतोंका अभ्युदय भी बाधाहीन नहीं है, यह बात शरीरधारियोंको बतलानेके लिए सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुँच गये । प्रिय-संगके लिए उत्सुक अंगनाओंके कटाक्षबाणोंसे घायल होनेके कारण ही मानों सूर्यनारायणका शरीर अरुण-कमल समूहके समान लाल हो रहा है। पश्चिम दिशाका मुख दिन-नायकके आगमनसे (आनन्दमिश्रित लज्जाके कारण) लाल हो आया। सन्ध्यारागसे वह ऐसी शोभायमान हुई मानों किसी आगतपतिकाने सारे शरीरमें कुंकुम लगाया हो। अस्ताचलने सूर्यको अस्त होनेके समय भी अपने सिर पर ही स्थान दिया। सच है, परोपकारी पुरुष कष्टके समय भी पूजा पाता है। मेरे देखते यह जगत् मलिन अन्धकारसे पूर्ण न हो, यह सोचकर ही जैसे सूर्यने अपने मण्डलको छिपा लिया। ऐसे प्रतापशाली दिननाथको भी अन्धकारने परास्त कर दिया। सच है, विधि ही बलवान् है; शरीरधारियोंके पौरुष बुद्धि और सहाय इत्यादिका कुछ ज़ोर नहीं चलता । सूर्यके अस्त हो जाने पर भी मलिन अन्धकारने आकाशको छा-लिया । क्या किया जाय? जिस देशमें गुणी नहीं रहते उस पर गुणहीन लोगोंका अधिकार हो ही जाता है। ज़ोर ज़ोरसे बोलते हुए अपने अपने घोसलेकी ओर जानेवाले पक्षियोंसे परिपूर्ण दिशाओंको देखनेसे जान पड़ता था कि सूर्यका वियोग होनेसे दिशारूपिणी रमणियाँ विलाप कर रही हैं । सूर्यके अस्त होने पर मलिन अन्धकारसे सब जगत्को व्याप्त देखकर दिशायें अपने विध्वंसके भयसे ही मानों अदृश्य होगईं। जगत्रूपी भवनको प्रकाशित करके सूर्य्य-दीपके अस्त होजाने पर लोगोंने देखा कि आकाशमें उसके काजलके समान अन्धकार धीरे धीरे फैल रहा है। इस प्रकार सारे

जगत्को अपने संगसे मलिन बनाते हुए अन्धकारने यह बात प्रत्यक्ष करदी कि लोगोंमें भले बुरे संगसे ही गुण और दोषका समावेश होता है। जिसकी दिनकी क्रियायें (पक्षान्तरमें आन्हिक कर्म) निवृत्त होगई हैं ऐसे प्रकाश (पक्षान्तरमें ज्ञान) से हीन और संभ्रम (पक्षान्तरमें भ्रम) से युक्त सारा विश्व, तम (पक्षान्तरमें अज्ञानान्धकार) से आवृत होकर जैसे परिवृत्ति-व्यस्तभाव—(पक्षान्तरमें उन्मत्तवृत्ति या तिरस्कार) को प्राप्त हो गया। निर्मल स्वभावका आदमी प्राणत्यागके अवसर पर भी कृतज्ञताको नहीं छोड़ता। देखो, सूर्यने दिनकी उन्नति की तो वह भी सूर्यके साथ ही अस्त होगया। गुणी पुरुषकी सब लोग सेवा करते हैं और गुणहीनसे सब दूर भागते हैं। दिनके चले जाने पर कमलको देखो मलिन हो रहा है; लक्ष्मी (शोभा) ने उसे छोड़ दिया है। दिशाओंमें अन्धकार-लेशको नाश करते हुए तारागण चमकने लगे। जान पड़ता है, ये मित्र (सूर्य) क विनाशको देखकर उग्र शोकसे पीड़ित आकाशके आँसुओंकी बूँदें हैं। घोर अन्धकारके समान काले चकवा-चकई मानों विरहकी आगके धुएँसे मैले पड़ गये हैं। वे सूर्यास्त होते ही आँसू गिराते और आर्त्त शब्द करते एक दूसरेसे बिछड़ गये। कमलकी डंडीके डोरोंके समान निर्मल चन्द्रमाकी किरणोंका समूह आकाशमें इस तरह जान पड़ता था जैसे समुद्रमें मोतियोंके प्रकाशकी राशि हो।

क्षणभर पहाड़की ओटमें आधा छिपा हुआ चन्द्रमा पूर्वदिशाके ललाटके समान शोभायमान देख पड़ा। उसका कलङ्कचिन्ह ही फैली हुई अलकावलीके स्थान पर था। आकाशके ओर-छोर तक फैली हुई किरणोंसे अन्धकारको मिटाता हुआ चन्द्रमा क्रमशः ऊपर उठकर उदयाचलकी चूडामणिके समान शोभायमान हुआ। उदयाचलकी चोटी पर विराजमान चन्द्रमाको देखकर जान पड़ता है कि उसके भीतर स्थित शश (चौगड़े) को मारनेकी इच्छासे अन्धकाररूपी

बहेलियेने जो बाण मारे हैं उनसे घायल होकर वह लाल होगया है । प्रकाशरूपी धनुष हाथमें लेकर आकाश-रथ पर जब रात्रिके स्वामी चन्द्रमा चढ़े तब रात्रिको भोगनेवाला अन्धकार परस्त्रीगमनसे डरकर ही मानों भागा । अन्धकाररूपी घूँघटको खोले और नक्षत्ररूपी पसीनेकी बूँदोंसे सुशोभित मुखवाली रात्रि चन्द्रमाके संगममें सुरतनिरत स्त्रीके समान जान पड़ने लगी । इस जगत्में विना किसी कारणके भी किसी वस्तुके साथ किसी वस्तुका संघटन होजाता है । चन्द्रमाके उद-यमें खिली हुई कोकाबेलीने यह बात स्पष्ट करदी । खिली हुई कोका-बेलीके मुख पर गिरते हुए भ्रमर चन्द्रमाके संगममें शृंगार किये कोकाबे-लीका तिलकसे जान पड़ने लगे । गुणवान् पुरुषोंके आश्रयमें पुरुष अपने स्वाभाविक दोषोंको भी दूर कर सकता है । आकाशने चन्द्रमाके संगसे अपनी मलिनताको मिटा दिया । उदयको प्राप्त चन्द्रमाने समुद्रको उन्नति (वृद्धि) की पराकाष्ठाको पहुँचा दिया । बड़े आदमियोंका परोपकार करनेका स्वभाव सहजसिद्ध होता है । यह उनका गुण आधुनिक नहीं हैं । चन्द्रमाकी किरणोंके फैलने पर खिले हुए कुमुद-कुसुमोंसे परिपूर्ण सरोवर और नक्षत्रगणमण्डित आकाश दोनोंकी एकसी शोभा हुई । आकाशमार्ग नीच अन्धकारने स्पर्श कर लिया था, इसीसे इस रात्रिने अपनेको शुद्ध करनेके लिए चाँदनीके भारी सरोवरमें मानों प्रवेश किया है । पर्वतोंने कन्दराओंमें आकर छिपे हुए अन्धकाररूप हाथीको मारनेके लिए चन्द्रमारूपी सिंहको नहीं सौंप दिया । सज्जनोंका शरणागतकी रक्षा करनेका स्वभाव कभी नहीं बदल सकता । उदयके समय अरुणवर्ण चन्द्रमण्डलने आकाशमें ऊपर उठकर क्षणभरके लिए लोगोंके मनमें यह ख़याल पैदा कर दिया कि वह पूर्व दिशाके मस्तक पर सुशोभित शिरोभूषणरूप गुड़हरका फूल है । समागमसे प्रसन्न चकई-चकवेका जोड़ा दिनको सुखी हुआ था वही रातको विरहसे विह्वल

होगया । जले विधाताकी इस विडम्बनाको धिक्कार है । स्त्रियोंने अपने प्रियों पर कोप करके तापित हृदयको जो मानसे कील लिया था उसे चन्द्रमा मानों किरणोंकी संसीसे उखाड़ रहा है । पर्देके समान अन्धकारको जब चन्द्रमाकी किरणोंने (पक्षान्तरमें हाथोंने) हटा दिया, तब आकाशरूपी आँगनमें स्थित नक्षत्र श्वेतपुष्प समूहके समान शोभाको प्राप्त हुए । चन्द्रमा करके किरणरूपी कुन्त-शस्त्रके द्वारा धमकाया गया विम्बके भीतरका अन्धकार मूर्च्छाके मिससे वियोगिनी स्त्रियोंके चित्तोंमें घुस गया । रातरूपी वायुसे सुलगी हुई विरहकी आगमें जिनका चित्त जल रहा है उन विरहिणी स्त्रियोंको चन्द्रमाका मण्डल कामदेवके बाणों पर बाढ़ रखनेका 'सान' सा जान पड़ा । चद्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे प्रकट हुई पुष्पोंकी परागरजसे पुलकितसी कुमुदिनी जान पड़ी । प्रियसंगमके लिए जल्दी करती हुई स्त्रियोंके हृदयमें चन्द्रबिम्बको देखकर अनुरागका समुद्रसा उमड़ चला । महात्मा लोगोंका अभ्युदय स्वार्थके लिये नहीं, मित्रोंके उपकारके लिए ही होता है । कामदेवकी शक्तिरूप सम्पत्ति बढ़ानेके लिए ही चद्रमाका उदय हुआ । पर्वतोंके शिखरों पर प्रकाशमान शिखाओंसे युक्त दिव्य ओषधियोंको देखकर यह जान पड़ता था कि चन्द्रमाके आनेके उत्सवमें रात्रिरूपिणी स्त्रीने ये दीपक जलाकर रक्खे हैं । अपनी कान्तिको बढ़ानेवाली रातको ही चन्द्रमाने नहीं प्रकाशित किया । साथ ही कुमुदिनीको विकासित किया । सज्जन लोग निरपेक्ष होकर परोपकार करते हैं ।

रातके अधिक होने पर चन्द्रमाका प्रकाश पूर्णरूपसे फैल गया । तब स्त्रियोंको साथ लेकर कामीजनोंने संभोगके लिए एकान्त स्थानमें प्रस्थान किया । झुकी हुई भौंहवाली स्त्रियोंके जो अंग विरहमें बहुत ही दुबले हो गये थे वे प्रियसंगसे उत्पन्न पुलकके द्वारा फिर मोटे-ताजे हो आये । हठ करते हुए प्रियकी चेष्टाके प्रतिकूल

'नहीं नूहीं' करते स्त्रियोंको देखकर उसीक्षण अपनी आज्ञा टालनेसे कुपित कामदेवने धनुष उठाकर वाण चलाना शुरू कर दिया। नव संगमसे उत्पन्न लज्जाके कारण सिर झुकाये कमलनयनी स्त्रियोंके अधरको प्रियतम हठपूर्वक सिर उठाकर डरते डरते पीने लगे। स्त्रीने अपने प्यारेको लिपटाने या ओठ चूसनेके लिए जो निषेध किया, इस निषेधसे, कामके विपरीत होनेके कारण, और भी उन कामोंके लिए अनुराग बढ़ने लगा। अन्तर रहित स्तनोंकी आड़ पढ़नेसे किसी स्त्रीको गिरा हुआ अपना वस्त्र न देख पड़ा। प्रियके देखने पर उसीके अन्दाज़से उसने जाना कि मेरा वस्त्र खिसक पड़ा है, सहसा कपड़ा हटाकर जब तक कौतूहल युक्त नायक जघन स्थलको देखे तब तक नायिकाने मुखसे मुख मिलाकर चुम्बनमें उसे उलझा दिया। हाथसे अंग मसलना मुख चूमना, लिपटाना, ओठ चूसना आदि विलासियोंकी विविध चेष्टायें कामकी आगमें घीकी आहुतिका काम करने लगीं। मृगनयनियोंको उनके पतियोंने कसकर लिपटाया तो उनके हृदयमें रहनेके लिए अवकाश न पाकर वाहर निकले हुए सन्तोषके अंकुरोंके समान रोमाञ्च हो आया। हृहयमें संभोगके लिए अनुराग होने पर भी सखियोंके पास आजाने पर लज्जित होकर किसी स्त्रीने मुख चूमनेकी चेष्टा करते हुए प्यारेको लिपटा कर उलझा रक्खा। विरहकी गर्म लम्बी साँसोंसे जिसके अधर सूख रहे हैं ऐसी किसी स्त्रीने आये हुए पतिको अन्य वातें चला कर दमभर उलझा रक्खा और मुख चूमने नहीं दिया। प्रेमके मारे वारम्वार प्रणाम करके प्रिय वचन कहकर पतिने मानिनीको मनाया। तब उसने कामदेवसे पीड़ित प्रियतमको ढीले वाहुओंके बन्धनमें जकड़ लिया। लिपटानेसे उत्पन्न रोमाञ्चने नायिकाके दुर्बल शरीरको परिपुष्ट करते हुए दृढ़ कमरबंदकी गाँठ खोलनेके काममें विलासी पुरुषोंकी सहायता की। प्राणनाथके लिपटने पर स्त्रियोंके जो पसीना निकल चला उसे देखकर

जान पड़ा कि उनके हृदयमें न समानेके कारण उबरा हुआ यह शृंगार रस उमड़ चला है। अत्यन्त मोटे स्तनवाली प्रियाको कसकर लिपटानेमें असमर्थ कोई पुरुष अपनी भुजाओंके और लम्बे होनेके लिए व्याकुलता प्रकट करने लगा। प्रिय और मधुर वचन कहनेमें चतुर किसी रसिकने मानिनी नायिकाके मानको दूर करके उसके ओठके रससे अपने हृदयकी कामाग्निको बुझाया। बड़ी निर्दयताके साथ प्रियतमके नाखून मारने पर भी स्त्रियोंके स्तनोंको कड़े होनेके कारण वे नखक्षत नव कुंकुमकेसरके समान ऊपर हो रहे। कामी लोग अपनी प्यारी प्रियाओंके शरीरको भी हाथोंसे कसकर मसलने, उनके ओठ काटने, उनके नाखून मारने और बाल खींचने लगे। कामदेवकी लीला सचमुच टेढ़ी है। अत्यन्त उपयोगके कारण मणिमालाकी तरह टूटी हुई भी कामियोंकी संभोगेच्छा स्त्रियोंके सीत्कार-गुण (गुण डोरेको भी कहते हैं) से फिर जुड़ गई। सुरत-प्रसंगमें सुन्दर मधुर सीत्कार-शब्द, अव्यक्त मनोहर रव, और प्यारके वचन प्रियाओंके मुखसे सुनकर रसिकोंको वह सुख मिला कि उसके आगे वे स्वर्ग-सुखको तुच्छ समझने लगे। इस प्रकार सुरतोत्सवके बढ़ने पर अजितसेनने शशिप्रभासे रमण किया। उसके बाद रानीके भुजपाशमें बँधकर कोमल सेजके ऊपर राजा सुखकी नींद सो रहे।

मंगलसूचक प्रातःकालकी तुरहीको घड़ीभर बजकर बंद हो जाने पर सूत-बन्दीजनोंने शयनगृहके द्वार पर जाकर स्तुतियोंके द्वारा राजाको यह जताया कि रात बीत गई। वे कहने लगे-“ हे नृपश्रेष्ठ, चन्द्रमाको अस्ताचलकी ओर जाते देखकर तुम्हारे मुखचन्द्रको इस जगत्की शोभाके लिए जगातीसी यह रात्री फैली हुई तारागणकी कान्तिको दुपट्टेकी तरह समेट कर जा रही है। हे राजन्, पूर्वदिशारूपिणी कुलकामिनीकी माँग पर फैले हुए सिन्दूरकी कान्ति धारण किये हुए यह

प्रातःकाल शोभायमान हो रहा है । अब आप पलँगको छोड़िए । तुम्हारे मुसकानसे मिली हुई कान्तिको प्रातःकालके दीपक धारण करें । ब्रह्माण्डभरमें फैले हुए आपके यशके समान शुभ्र शोभा धारण करनेवाला यह कुमुदवन खिलते हुए कमलोंकी ओर जानेवाले भ्रमरोंसे परित्यक्त होकर शोकके मारे संकोचको प्राप्त हो रहा है । हे स्वामिन्, ये चकई-चकवे तालावमें उत्सुकताके साथ मिल रहे हैं । ये काले रंगके पक्षी मानों विरहानलमें जलनेके कारण ही मटमैले होगये हैं । तुम्हारे हृदयमें स्थित कुंकुमलिप्त कामिनीके दोनों स्तनोंके समान ये जान पड़ते हैं । उदयाचलमें कुछ कुछ छिपा हुआ मण्डल जिनका ऐसें सूर्यकी कुन्त-सदृश किरणोंसे घायल होकर जंगलों और कन्दराओंमें घुसता हुआ यह अन्धकार आपके शत्रुओंका अनुकरण कर रहा है । लतारूपी तरुणियोंको लिपटाये हुए ये वृक्ष सबेरे मोती ऐसी ओसकी बूँदोंसे अलंकृत अंगवाले होकर रतिके श्रमसे उत्पन्न पसीनेकी बूँदोंसे सुशोभित तुम्हारे रूपका अनुकरण कर रहे हैं । हे राजन्, पलँग पर पड़े हुए स्वामीको पृथ्वी पर एक पैर रक्खे हुए स्त्री जो बड़े प्यारसे चूमती है सो मानों भारी विरहके मार्गको तय करनेके लिए पाथेय ले रही है ।

"हे सुतनु, अत्यन्त उन्नत दोनों कुचोंके इस विनाशहीन भारसे तुम्हारा शरीर यों ही खिन्न हो रहा है । इस लिए इस वृथाके कोपके भारको त्याग दो । अत्यन्त पीड़ितको पीड़ा पहुँचानेसे लाभ ही क्या है ? मैं विरहके भयसे तुमसे यह नहीं कहता । क्योंकि हे कमलमुखी, मान-दोषसे दूषित होने पर भी तुम सदा मेरे हृदयमें स्थित रहती हो । मैं इस लिए कहता हूँ कि यह बुरे परिणामवाला कोप तुम्हारे ही शरीरको सन्ताप पहुँचावेगा । देखो यह मुर्ग़ा अपने शब्दसे सबेरा होनेकी सूचना देता हुआ मानों तुमसे कह रहा है कि मनका मैल मिटाओ, दयाका भाव धारण करो; चक्रवाककी वृत्ति धारण करनेवाले प्रणयी पर क्रोध

करना ही क्या ? हे सुन्दर केशोंवाली, मेरी यह धारणा नहीं है कि कठिन कुचोंके संसर्गसे तुम्हारा हृदय इतना कठिन है। विषके वनमें उत्पन्न अमृतमय वृक्ष अपनी मधुरताको क्या कभी छोड़ देता है?" कोई रसिक प्रेमान्ध होकर प्रणय कोपसे मुँह फेरकर सोई हुई प्रेयसीको ऐसे प्रिय वचनोंसे प्रसन्न करके उससे लिपट जाता है। नख-क्षतरूपी पल्लवोंसे वह स्त्री भी लताकी सम्पूर्ण उपमाको प्राप्त होती है।

घोड़ों पर नवीन सूर्यका घाम पड़ता है। घोड़ोंका शृंगार करनेवाले लोगोंको उससे भ्रम हो जाता है कि उन्होंने किस घोड़ेके शरीरमें कुंकुम लगाया है और किसके नहीं लगाया है। अत एव वे हाथमें कुंकुम लिये हुए सूर्यके और ऊपर चढ़नेकी प्रतीक्षा करते हैं। प्रतापी राजाओंको नीचा दिखानेवाला यह राजा मेरा अपने ऊपर होकर जाना न देख सकेगा, यही सोचकर मानो भयके मारे सूर्यदेव धीरे धीरे ऊपर ऊठ रहे हैं। ललित पद (स्त्रीपक्षमें पैर)-विन्याससे अभिराम प्रियाके समान ऐसी वन्दीजनोंकी वाणी सुनकर राजा अजितसेन, निस्पन्द उच्छ्वासके साथ जिनके भीतर भ्रमर सो रहे हैं उन कमलपुष्पोंके साथ ही जागे—इधर कमल खिल पड़े और इधर वे जाग पड़े। सूर्य इधर अरुण कान्तिसे पूर्व दिशाको विभूषित कर चले और उधर किसी तरह गलेसे प्रियतमाके भुजपाशको हटाकर राजाने रातको रति-समरके प्रसंगमें गिरी हुई उज्ज्वल हारकी मणियोंसे परिपूर्ण होनेसे सागरतुल्य शयनको छोड़ दिया। द्वारके अग्रभागमें लगी हुई निर्मल अरुण मणियोंकी फैली हुई ज्योतिसे सुशोभित शरीरवाले राजा अजितसेन, स्वाभाविक महान् तेजसे परिपूर्ण होनेके कारण, उदयाचलके शिखरसे उदित हुए सूर्यनारायणके समान शयनगृहसे, लोगोंको आनन्द देनेके लिए बाहर निकले।

इति दशमः सर्गः।

एकादश सर्ग ।

प्रातःकाल होनेके बाद दिन चढ़ने पर राजा अजितसेन स्नान आदि नित्यकर्म करके वस्त्राभूषण धारण कर सभाभवनमें सिंहासनके ऊपर विराजमान हुए । शरणागतवत्सल राजा जब इस तरह आमदरबारमें आकर बैठे तब पहले प्रधान द्वारपालके द्वारा आनेकी सूचना देकर राजा लोगोंने भीतर प्रवेश किया और पृथ्वी पर सिर रखकर चक्रवर्तीकी वन्दना की । प्रतीहार जब यथास्थान सब सभासदोंको बिठा आया तब सभाभवनके आँगनमें सेवाके लिए उपस्थित गजराजको राजाने देखा । राजाने देखा, वह गजराज अपने ही समान महाशक्तिशाली है । जैसे राजा बड़े वंशवाले हैं वैसे ही वह भी बड़े वंश (पीठकी हड्डी) से सुशोभित हैं । जैसे राजाके लंबे लंबे हाथ हैं वैसे ही उसका भी हस्त (सूँड) लम्बा है । तब कौतूहलवश राजाने वीर पुरुषोंको हाथीसे लड़नेकी आज्ञा दी । राजाकी आज्ञासे एक धीर वीर पुरुषने आकर गजराजकी मोटी सूँड़में एक घूँसा मारा । जब तक गज उसके ऊपर आवे तब तक दूसरेने पीछेसे उसके अंकुश मारा । अत्यन्त कोपित गज घूमकर पीछेवालेकी तरफ़ मुड़ा, उधर दूसरेने फुर्तीसे उसकी दाहनी कोख पर चोट की। इस प्रकार राजाकी आज्ञासे हाथीसे भिड़नेका अभ्यास करनेवाले लोग जब कुपित गजराजको सताने लगे तब उसने भागनेमें अशक्त किसी आदमीको आगे सूँड़ फैलाकर पकड़ लिया । मदान्ध हाथीने वशमें आये हुए उस पुरुषको, लोगोंके हाहाकार करते देखते हुए ही ऐसा ज़मीन पर पटका कि उसके सब अङ्ग चूरचूर होगये । शरदृतुके मेघके समान क्षणभरमें ही उस मनुष्यको शरीर और प्राणके साथ विनष्ट होते देखकर राजाको बड़ी दया आई । उसी समय उनके हृदयमें इस प्रकार खेदके बाद निर्वेदका उदय हुआ—

अहो, संसारकूपमें पड़े हुए लोगोंके जीवनकी अनियत स्थितिको देखो। यह जीवनकी स्थिति बिजली और शरदृतुके मेघोंसे भी बढ़कर चंचल है। रोगसे छुटकारा मिला तो सिर पर बिजली गिरना चाहती है। उससे बचे तो शस्त्र, विष, अग्निरूप कण्टक सामने खड़े हैं । अनेक मौतके सामानोंसे भरे इस संसारमें यह क्षुद्र मनुष्य कब तक जी सकता है। शरीर धारियोंका शरीर, धन, जवानी, आयु और अन्य चीजें भी सब अनित्य हैं । तथापि लोग इन सब चीजोंको नित्य समझते हैं। यह कैसा महामोह है? "आज यह करता हूँ, कल यह करूँगा, परसों यह करूँगा," इस प्रकार सोचकर अनेक कर्त्तव्योंके झंझटोंमें पड़ा हुआ यह पुरुष सिर पर आई मौतको देख भी नहीं सकता । सज्जनोंको नापसन्द पापसे नहीं डरता, होनेवाली दुर्गतिके दुःखको मानता ही नहीं, विषय रूपी मांसकी आशामें लुभाया हुआ मनुष्य इसी तरह सैकड़ों कुकार्य कर डालता है। मतवाली नारीके कटाक्षोंके समान चञ्चल लक्ष्मी सदा साथ नहीं रहती । और, प्रज्वलित बुढ़ापेके अग्निवज्रको जवानीका जंगल कब तक सह सकता है। पहले प्रिय और पीछे अप्रिय, विनाशके होनेवाले और स्वयं छूट जानेवाले विषय, काल-सूर्य्यकी किरणोंसे नष्ट इस गौर शरीरको, जीर्ण कर डालेंगे। धन और सम्पत्तिको चाहनेवाले बान्धव मुझ श्रीहीनको धीरे धीरे छोड़ देंगे । जब आमके पेड़में फल या मञ्जरी कुछ नहीं रहता तब कोकिलायें उसे छोड़ जाती हैं । इस संसारमें लोगोंका जीवन पतनशील पके हुए फलके समान है । स्त्री-पुत्र-परिवार सम्पत्ति आदि परिग्रह क्षणभंगुर है । किन्तु जीवके किये शुभाशुभ कर्मोंको कोई किसी तरह मेंट नहीं सकता । क्रोधादि कषायरूप ईंधनसे प्रज्वलित और बहुत ऊँचे उठा हुआ संसाररूप अग्नि निरंतर जल रहा है, वह अगर ज्ञानके जलसे बुझाया न गया तो शान्त नहीं होता । इस दुष्ट भयङ्कर

संसारसे ही वध-बन्धन आदि अनर्थ हुआ करते हैं। अगर इस संसारकी जड़ काट दी जाय तो फिर वे अनर्थ नहीं हो सकते । विना कारणके कहीं कार्य्य नहीं होता। विषयवासनामें पड़ा हुआ मनुष्य शुभाशुभ कर्मोंके बन्धनमें बँध जाता है। जिसकी इसके विपरीत भावना होती है वह कर्मोंके बन्धनसे दूर रहता है। वादलसे पानी बरसते रहने पर धूल आकाशमें नहीं जम सकती। जन्म-समुद्रमें पड़े हुए प्राणी इस चराचर जगतमें कोई भोग ऐसा नहीं जिसे नहीं भोगते। फिर ये लोग विषयान्ध होकर मोक्षके साधनोंसे क्यों विमुख रहते हैं ? स्वल्पसुखके लोभमें पड़-कर जों जीव दुरन्त भोगोंकी ओर जाती हुई अपनी बुद्धिको निवृत्त नहीं करता वह वृद्धिको प्राप्त संसार-लताको किस तरह उखाड़ेगा ? पाप कर्मका क्षय होने पर किसी तरह इस दुर्लभ मनुष्य-जन्मको पाकर फिर जो लोग हित (मोक्ष) की ओर ध्यान नहीं देते वे आपदाओंकी खान इस संसारसागरमें गिरते हैं। आनेवाले दुःखके कारण स्वरूप संसारके सुखकी अज्ञ लोग अगर प्रशंसा करते हैं तो फिर विष-मिले गुड़-का खाना भी प्रशंसनीय होना चाहिये ! प्रतिबन्धक रूप क्रोध, मान आदि कषाय-शत्रुओंको शम-खड्गकी धारासे निश्चय मारकर इस समय मोक्ष-कामिनीको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मुझको इस जगत्में कौन रोक सकता है ? गर्वित पाप शत्रुओंको मारकर अपने कर्म और प्रकृति (पक्षान्तरमें प्रजा) को वशमें लानेवाले सिद्धिभागी मुझको तपो-वनमें जाने पर भी वैसा ही अखण्डित निष्कण्टक राज्य प्राप्त रहेगा। चित्त, तूने भोग-लुब्ध रहकर कष्ट देनेवाली चारों गतियोंको चिरकाल तक देखा है। इस लिए तू शान्त हो जा। अब इसके बाद और क्या क्या क्लेश देगा ? जन्म मरणसे डरनेवाले, विवेकी, आपत्तिहीन सम्पदा-ओंमें मन लगानेवाले मेरे समान लोग भी अगर इन्द्रियसमूहको जीतनेमें समर्थ न हों तो निश्चय है कि मोक्षवधू विना पतिके ही रहेगी। इस

प्रकार विषयोंकी ओरसे मन फिराकर पुनर्जन्मके भयसे डरे हुए चतुर राजाने राज्य छोड़कर तपोवन जानेका इरादा कर लिया। जो अपनी भलाईसे नहीं चूकता वही पण्डित है।

इसी समय मालीने आकर खबर दी कि बड़े बड़े गुणोंके आकर और अज्ञानान्धकारको सूर्यके समान मिटानेवाले गुणप्रभ नामक मुनिराज अन्य बहुतसे मुनियों सहित विहार करनेके लिए बागमें आये हैं। शिवंकर नामक उद्यानमें आकर ठहरे हुए मुनिके पवित्र आगमनकी खबर पाकर समर्थ राजा अजितसेन आनन्दसे "मैं कृतार्थ होगया" यह कहते हुए शीघ्र अपने आसनसे उठ खड़े हुए। पुरवासी लोगोंके साथ अजितसेन पुरसे निकले और संसार-दुःखसे डरे हुए राजोंसे धर्मकी बातें करते हुए मुनिके पास पहुँचे। दर्शनके लिए उत्कण्ठित राजा जब बागमें पहुँचे तब मालीने वहाँ एकान्त जीव-जन्तु-हीन पवित्र और शोभासम्पन्न महामुनिका आश्रम उनको दिखला दिया। वहाँ राजाने देखा कि ध्यानावस्थामें स्थित और तपसे कृश-शरीर एक मुनि, जिन्होंने मोहरूपी शत्रुकी जड़ उखाड़ डाली है सूर्यकी किरणोंको सहते हुए आतप-योगकी साधना कर रहे हैं। ऐसे ही राजाने विशुद्ध सिद्धान्त-समुद्रके पारंगत दूसरे यतिवरको देखा कि वे जिनमतकी प्रभावनामें लगे हुए धर्मसम्बन्धी कथायें कह रहे हैं। राजाने अन्य एक साधु-सूर्यको देखा कि वे शास्त्र-प्रमाणरूपी उज्ज्वल किरणोंसे वादीरूप जुगनुओंको प्रभाहीन करते हुए लोगोंको ज्ञानका प्रकाश दे रहे हैं। राजाने अन्य एक तपोधनको देखा कि वे त्रिकालके बीचमें स्थित, अज्ञानियोंके लिए अगोचर जो परोक्ष (इन्द्रियातीत) वस्तु है उसके सम्बन्धमें यथार्थ उपदेश दे रहे हैं, और अपने मुनि मार्गकी महत्ता उन्हें दिखला रहे हैं। इस प्रकार स्वाध्याय आदि अनेक चेष्टाओंमें लगे, प्रशंसनीय प्रवृत्तिवाले मुनियोंके बीचमें स्थित योगीश्वर गुणप्रभको प्रणाम करके अजितसेन यों उनकी स्तुति करने लगे।

हे नाथ, आप संसारका अन्त कर देनेवाले हैं। जो आत्मज्ञानी मनस्वी लोग क्षणभर भी आपका ध्यान करते हैं वे शुभको प्राप्त होकर कृतार्थ होजाते हैं। हे कृतार्थ, फिर तुम्हारे दर्शन होने पर कृतार्थ होनेमें क्या विचार करना है? सूर्यसदृश जो आप हैं उनकी वचनरूपी किरणें अगर न सञ्चारित हों तो अज्ञानके पर्देसे आवृत और मिथ्यादृष्टिकी सेवासे भ्रमपूर्ण यह जगत् कैसे बोधको प्राप्त हो? हे ईश, निराश्रय होकर अधोगतिमें गिरते हुए देहधारियोंके लिए आप अवलम्ब हैं। स्थिर लक्ष्मीके मुक्तिमहलके शिखर पर पहुँचनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए आप ही सीढ़ी हैं। खिलते हुए कुन्दकुसमके समान कान्तिवाले अपरिमेय क्षान्ति, दया, दम आदि गुणोंसे आपने और तद्रूप किरणोंसे चन्द्रमाने जगत्को प्रकाशित कर रक्खा है। हे सूर्यसदृश, आपकी वाणीरूपी प्रकाशशील किरणोंसे प्रकाशित हुए जगत्में जिन अभागोंने मार्गशुद्धि नहीं प्राप्त की वे अवश्य ही उल्लू हैं। अनेक जन्मके हार्दिक अन्धकार-को नाशकरनेवाले जगद्गुरु जो आप अपूर्व सूर्य हैं उनके मुखको जिन्होंने नहीं देखा उनका जन्म ही वृथा गया। नाशरहित जिस मुक्तिपद्वीको और लोग चिरकालमें भी नहीं पहुँचा सकते आपकी शरणमें आते ही वह पद्वी प्राप्त हो जाती है; यही हमको वड़ा विस्मय है। अविनाशिनी मोक्ष-लक्ष्मीको रोकनेवाले क्रोधादिक वैरियोंको जीतलेनेसे जो आपका महान् अभ्युदय हुआ है उसका वर्णन आप ही ऐसे महानुभाव लोग कर सकते हैं। मुनिकी ऐसी मनोहर स्तुति करके विनयपूर्वक जब राजा सामने बैठ गये तब उनको मूर्तिमान् विनय समझनेवाले मुनि लोग कौतूहलके साथ देखने लगे। मुनिवर और नरवरसे संभाषण होते समय दोनोंके मुख दोनोंकी कान्तिसे चन्द्रमाके समान देख पड़ते थे। जान पड़ा कि एक चन्द्रमाको धारण करनेवाले आकाशको परास्त करनेके लिए पृथ्वीने दो चन्द्रमा धारण कर लिये हैं। सज्जनोंके नायक और निस्पृह गुणप्रभ मुनिने सबकी ओर

देखकर, और अजितसेनको पवित्र धर्मवृद्धि देकर, उनके गुणों पर प्रसन्न हो यों कहना शुरू किया-राजा होना स्वभावतः मदका कारण समझा जाता है । किन्तु इन महानुभाव महाराजमें उसके विपरीत देखा जाता है। इस अभ्युदयके अद्भुत आश्चर्यको तो देखो ! ये न्यायसे मनुष्योंको, वैभवसे देवतोंको, विनयसे पूर्णकाम योगियोंको और अपने तेजसे राजोंको विस्मित करते हैं। कहाँ यह अतुल विनय और कहाँ यह साम्राज्यकी प्रभुता । सर्व गुणालंकृत इन राजाको सब गुण मानों परस्पर प्रसन्न होकर एक साथ भजते हैं। इन महाराजको जैसी चिन्ता परलोक बनानेके बारेमें है वैसी चिन्ता न अपना वैभव बढ़ानेके लिए है, न बान्धवोंके सम्बन्धमें है, और न मनोहर संसार सुखके बारेमें है। महात्मा लोगोंके काम भलाईका ही अनुसरण करते हैं। इस प्रकार कहते हुए मुनिवरके आगे विनयसे सिर झुकाकर चक्रवर्ती अजितसेनने संक्षेपमें कहा कि मैं आपके आश्रममें ही जानेवाला था । पर मेरे पुण्योंके कारण आप यहीं आगये । जब मनुष्य दुर्गतिमें गिरने लगता है तब सेना आदि वैभव और बान्धव कोई भी आश्रय नहीं दे सकते । यह जानकर मेरा जी चाहता है कि मैं आपकी ही सेवामें रहूँ । हे वरदायक, इस लिए प्रसन्न होकर आप मुझे अपनी दीक्षा दीजिए। क्योंकि आपकी थोड़ीसी भी कृपा शुभ करके अशुभको मिटा देती है। सज्जनोंका अनुग्रह क्या नहीं कर सकता ? इस प्रकार राजाने जब अपने हृदयकी बात कहदी तब समर्थ राजाके साहसकी परीक्षा करनेके इरादेसे मुनिवरने उन्हें उनकी इच्छासे फेरनेवाले वचन कहना शुरू किया। राजन्, कठिन शरीरवाले मुझ सरीखे साधुजन जिस दुष्कर तपकी आँच नहीं सह सकते उसको तुम्हारे सरीखे कुंकुमलेपसे लालित सुकुमार लोग कैसे कर सकते हैं ? तुम दयालु, धर्मको ही धन समझनेवाले और अपने वैभवको परोपकारमें लगानेवाले हो। तुम्हारा चरित्र ऐसा नहीं है कि विद्वान्

लोग उसकी निन्दा करें। तुम गृहस्थ हो, तब भी तुम्हारा आचरण तपस्वियोंके ही समान है। इस लिए राजन्, आप दयालु साधुवत्सल मोक्षकामुक बने रहकर युगभर इस पृथ्वीका शासन करो। तुम इन अनाथ लोगोंको पालो और उबारो। दीनोंको उबारनेसे बढ़कर और कोई तपस्या नहीं है। मुनिको इस प्रकार कहने पर दृढ़-संकल्प राजाने मोक्षके मार्गमें दृढ़ होकर फिर इस प्रकार अपने पक्षका समर्थन आरम्भ किया—हे ईश, मैं परम पूजनीय जो आप हैं उनकी इस आज्ञाके विषयमें फिर जो कुछ कहना चाहता हूँ उसका कारण जन्ममरणके दुःखोंका जंजाल ही है। इन जीवोंको इष्टानिष्टके वियोग-संयोगसे यदि दुष्ट पीड़ायें न होतीं तो जिनेन्द्रचन्द्र द्वारा धारण किये गये इस सत्य और महाकठिन महाव्रतको कौन ग्रहण करता? यदि गृहस्थ रहने पर भी विचित्र दुःख देनेवाला जन्म-मरणका चक्र मिट जाता है तो फिर आप ऐसे विवेकी महापुरुषोंका तपमें परिश्रम करना वृथा ही ठहरा। जिन-दीक्षामें जिनका मन लगा हुआ है उन उदार चरित्र राजाके ये वचन सुनकर मुनिवरको यह निश्चय हो गया कि इन्होंने सोचविचार कर यही दृढ़ निश्चय कर लिया है। तब उन्होंने राजाकी प्रार्थनाको स्वीकार किया। परिवारके बन्धनसे मुक्त राजाने मुनिकी अनुमति पाकर अपने पुत्रको वह निष्कण्टक राज्य दे दिया।

उसके बाद उन्होंने परिग्रह छोड़कर संयमका अलंकाररूप तप ग्रहण कर लिया। घोर तप करते हुए भय-शून्य राजा पुरबाहर पर्यङ्कासनसे स्थित रहकर हेमन्तकी रातें विताने लगे। धैर्य-वस्त्रधारी राजा वहीं पाले और ठंडी हवाके वेगको सहते थे। भयानक सैकड़ों उल्कापातोंसे दुस्सह और घोर घन-घटाओंसे अन्धकार फैला देनेवाली वर्षाऋतुकी रातोंमें क्षमताशाली वे पेड़ोंकी जड़में बैठे हुए मूसलधार पानी सहते थे। वे गर्मियोंमें सूर्यके सामने खड़े रहते थे। तपी हुई सुईके

समान शरीरमें चुभनेवाली सूर्य-किरणोंके लगने पर भी वे ध्यानसे नहीं डिगे। कर्त्तव्यकाम कितना ही कठिन क्यों न हो उसे करनेके लिए सज्जन लोग दृढ़ रहते हैं। अनित्य आदिक बारह भावनाओंमें हरघड़ी मन लगाये हुए अजितसेनने मदको बिल्कुल मिटा दिया। भूख आदि परीषहकी बाधा उन्हें जरा भी पीड़ा न पहुँचा सकी। तपोलक्ष्मीसे आलिंगित और उत्तम क्षमादि दस धर्म तथा शुभ लेश्यारूप उज्ज्वल परिणामोंसे युक्त अजितसेनने इस प्रकार विविध तप करके महान् गुणवाले पाँच परमेष्ठियोंका हृदयमें ध्यान करते हुए समाधि लगाकर अपने प्राण त्यागे। मरणके उपरान्त अच्युत नामक स्वर्गमें जाकर वे अच्युत नामक इन्द्र हुए। कमलनयन नयनाभिराम अच्युतेन्द्रने सम्यक्त्व-रत्नसे विभूषित होकर बाईस सागर-परिमित आयु तक वहाँ दिव्य सुखका अनुभव किया। जब स्वर्गकी आयु पूरी होगई तब वहाँसे आकर वही अच्युतेन्द्र इस जन्ममें तुम रत्नसञ्चयपुरके विजयी राजा कनकप्रभके पुत्र पद्मनाभ हुए हो। हे लोक मनोहर, तुम्हारी माताका नाम सुवर्णमाला है। मुनिजन जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं वे मुनिवर इस प्रकार पूर्वजन्मका हाल कहकर चुप हो रहे। पूर्वजन्मका हाल सुनकर जिनके रोमाञ्च हो आया है उन राजाने भी हाथ जोड़कर मुनिवरसे यों कहना शुरू किया—भगवन्, आपकी कृपासे जन्मान्तरका हाल मैंने जान लिया; तथापि मेरे चित्तका संशय नहीं जाता। नाथ, इस लिए कुछ ऐसा विश्वास दिलाइए जिससे मेरी यह संशयसे डोलती हुई बुद्धि निःसंशय हो जाय। राजाके ये वचन सुनकर मुनीन्द्रने उनका सन्देह दूर करनेके लिए कहा--राजन्, आजके दसवें दिन अपने झुण्डसे अलग होकर एक मदान्ध हाथी तुम्हारे नगरमें आवेगा। यह देखकर बहुत शीघ्र तुम खुद मेरे वचनोंके बारेमें विश्वास और निश्चय कर लोगे। जगत्में बुद्धिमानोंका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ज्ञान सच्चा ही होता है, और इसी कारण

प्रमाण माना जाता है। इस प्रकार सन्तोष देनेवाले वचनोंसे संशयरूपी मलको दूर करके चुप हुए महाव्रतधारी वाग्मिश्रेष्ठ मुनिवरके चरणोंमें सिर रखकर अणुव्रत आदिसे विभूषित राजा पद्मनाभ अपनी राजधानीको लौटे। मुनीन्द्रने जिस दिन हाथीके आनेकी बात कही थी ठीक उसी दिन अकस्मात् चढ़ आई किसी शत्रुसेनाकी शंकासे डरकर "यह क्या है ?" कहते हुए लोगोंका महा कोलाहल सुनाई पड़ा। उस शब्दको सुनकर घोड़े कान खड़े करके उसी ओर देखने लगे, जिधरसे वह शब्द आ रहा था। "क्या, क्या, यह क्या है ? जाओ, देखो" इस प्रकार राजाके पूछने पर एक आदमी वहाँ शीघ्र गया और वहाँसे लौटकर लोगोंकी व्याकुलताका कारण जानकर आये हुए उस मनुष्यने कहा कि—हे देव, जिसके कपोलदेशसे मदजल बह रहा है ऐसे ऐरावतके समान बलशाली किसी एक हाथीने कहींसे आकर ऊधम मचा दिया है। वह गर्वित हाथी आपकी भुजाओं द्वारा सुरक्षित लोगोंको पुरके बाहर पाकर मार रहा है; इसीसे लोग चिल्ला रहे हैं। जो आदमी प्रकट होकर बाहर जाता है या भीतर प्रवेश करता है उसे वह सूँड़से पटक चूरचूर कर दिशाओंको बालिसी चढ़ा देता है। बहुत कहनेकी ज़रूरत नहीं, वह हाथीका रूप धारण किये साक्षात् प्रलयकाल ही जान पड़ता है। मुनि जिसकी सूचना दे गये थे उस हाथीके आनेकी ख़बर पाकर राजा अपने हृदयमें प्रसन्न हुए। उदारबुद्धि राजा मनमें उस गजको काबूमें करना कठिन विचार कर कुछ विषादको भी प्राप्त हुए। बाहुबल ही जिनका सहायक है उन राजाने अपने मनमें सोचा कि इस लिए अगर मैं इस दुष्ट हाथीसे अपने पुरवासियोंकी रक्षा नहीं करता तो मेरी भूपति-पदवी ही वृथा है। यों सोचकर वे उस बली गजराजके सामने पहुँचे। राजाने कसकर कमर बाँधी और सब सामन्तोंको मनाकर—दूर हटाकर अकले ही उसका सामना किया। वह भी बहुत कुपित हो सूँड़ बढ़ाकर और अपने अगले शरीरको ऊपर उठाकर उनके सामने दौड़ा। राजाने उस आते हुए गज-

राजके मुख पर हथनीके मूत्रसे तर कपड़ा फेंका। जब तक वह उस कपड़ेमें उलझा तब तक वेगसे बगलमें आकर राजाने एक लाठी मारी। जब तक फिर वह घूमकर वेगसे सामने आवे तब तक राजा दूसरी बगलमें चले गये। उस हाथीने उधर मुड़कर जब तक सूँड़ चलानी चाही तब तक राजा पद्मनाभ उसके पेटके नीचेसे होकर निकल गये। राजा फुर्तीसे इसी प्रकार उसके पीछे आगे और आसपास फिरने लगे। महलोंके आसपास चबूतरों पर चढ़े हुए सब लोगोंने उनको एकसाथ सब तरफ़ देखा। इस प्रकार गजराजको थकाकर हाथमें अंकुश लिये पद्मनाभ उसके कन्धे पर चढ़ बैठे। देवता लोग प्रसन्न होकर स्वर्गसे उनके ऊपर भ्रमरसेवित स्वर्गीय फूलोंकी वर्षा करने लगे। बड़े धैर्यशाली अनुपम बल-वीर्यवाले सब देवगण भी सामने जाकर जिस गजराजको वश नहीं कर सकते थे उसको लीलाशाली पद्मनाभने खेलते खेलते अपने वशमें कर लिया। सच है, पुण्यात्मा लोगोंके लिए इस जगत्में क्या असाध्य है! उदयको प्राप्त राजा पद्मनाभ वनमें केलि करनेके लिए बसे थे, इस लिए लोगोंने उस गजराजका वनकेलि यह यथार्थ नाम रक्खा। प्रसन्न पुरवासियोंके मुखसे यशोगान सुनते हुए राजाने पताकाओंसे सुशोभित उत्सवपरिपूर्ण पुरमें प्रवेश किया।

इति एकादशः सर्गः।

द्वादश सर्ग।
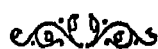
एक दिन एक कुशाग्रबुद्धि दूतने अपने स्वामीकी आज्ञासे सभामें स्थित पद्मनाभके पास आकर यों कहना शुरू किया-जिन्होंने सूर्यके समान कठिन महीभृतों (पर्वतों और दूसरे पक्षमें राजाओं) को अपने तेजसे तपाकर मित्र बान्धवोंके साथ ही शत्रुओंको भी महापद (मित्र-पक्षमें ऊँची पदवी और शत्रु-पक्षमें महाविपत्ति) को पहुँचा दिया है; और जिन्होंने श्रेष्ठ प्रभु-शक्तिकी समृद्धिसे सारी पृथ्वीका पालन करके अपने पृथ्वीपाल इस प्रसिद्ध नामको यथार्थ कर दिखाया है। नीति, विक्रम और शक्तिसे शोभित जो बुद्धिमान् राजा प्रणतपुरुषोंको मान देकर और न झुकनेवालोंके मानको खण्डित कर, दोनोंके सम्बन्धमें मानद पदको प्राप्त हैं। वे हमारे स्वामी अपने मित्र जो तुम हो उनको आलिंगन कर मेरे द्वारा यह कहते हैं । क्योंकि दूत ही राजाओंका मुख होते हैं । शरदऋतुके मेघोंके समान उज्ज्वल तुम्हारे गुण अत्यन्त दूरवर्त्ती होने पर भी उसी तरह सत्पुरुषोंको प्रसन्न करते हैं जिस तरह चन्द्माकी किरणें कुमुदोंको विकसित कर देती हैं। सब दिशाओंमें फैली हुई तुम्हारी कीर्तिसे ही तुम्हारी विनय-वृत्तिका पता लगता है। जिस तरह महावृक्षकी फल-सम्पत्तिका अनुमान उसके फूलोंसे ही कर लिया जाता है। तुम्हारे धैर्यसे हारा हुआ समुद्र लज्जासे पानी पानी होगया है। जिसमें समुद्रको अपने इस पराभवका अनुभव न हो इसी लिए-उसके तिरस्कारसे हुए शोकको शान्त करनेके लिए-विधाताने पहलेहीसे उसे पानीका रूप दे दिया है। यह तुम्हारी नीति-प्रवृत्ति ही तुम्हारी हार्दिक सुशीलताको प्रकट करती है। अपने स्वामीके अनुकूल रहनेसे ही हाथीकी भद्रता (भलमंसी, पक्षान्तरमें भद्र-नामक हाथियोंकी एक जाति भी

होती है) ज़ाहिर होती है। सो ऐसे गुणी होने पर भी तुम मुझे मदान्धसे देख पड़ते हो। क्योंकि तुम साधारण कार्योंमें भी पुरानी परिपाटीको छोड़कर उसके विपरीत चेष्टा कर रहे हो । हमारे तुम्हारे पूर्वजोंकी पूर्व स्थिति यह है कि हमारे वंशके लोगोंको तुम्हारे घरानेके लोग प्रणाम करते हैं। मदमत्त हाथी जैसे अर्गला (ज़ंजीर) को नहीं मानता वैसे ही तुमने इस पहली परिपाटीका पूर्णरूपसे उल्लङ्घन कर डाला है। मदान्ध हाथी बन्धनको प्राप्त होता है। यह देखकर भी अपना अनिष्ट करनेवाले गर्वको कौन बुद्धिमान् आश्रय देगा ? पैदायशी अन्धेके समान ही मन्दान्ध पुरुष भी इष्ट-अनिष्टको नहीं देखता। जन्मान्ध तो भला हृदयकी आँखों (बुद्धि) से देखता भी है, पर मदान्ध पुरुष तो न बुद्धिसे समझता है और इसी कारण आँखोंसे, देखकर भी, नहीं देखता। शास्त्रज्ञ लोगोंने शरीरमें ही रहनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष—ये छह शत्रु कहे हैं। जो राजा अपने हृदय-राज्यमें इनका शासन कर लेता है वही पृथ्वीका शासन कर सकता है, या करने लायक़ है। जो राजा उक्त छह शत्रुओंके दलसे अपने मनको ही नहीं बचा सकता उसे, मानों अपने तिरस्कारके भयसे, संपदायें स्वयं छोड़कर खिसक जाती हैं। मैंने गजराजके समान तुम्हारी यह दुष्टतामयी अंकुश-क्रिया बहुत दिनों तक उपेक्षाकी दृष्टिसे देखी। अब हमेशा ही अगर ऐसा बुरा व्यवहार तुम करते रहोगे तो वह मुझे दुस्सह जान पड़ता है । मेरे जासूसोंने आकर ख़बर दी है कि मेरा वनकेलि-नामक गजराज तुम्हारे पुरमें स्वयं जाकर घुस गया था । उसे तुमने पकड़ लिया है । तुम्हें चाहिए था कि मेरी उस नष्ट वस्तुको तुम मेरे पास भेज देते । किन्तु तुमने मेरा कुछ ख़याल न कर वह हाथी अपना लिया है । यह मैंने तुमसे निवेदन कर दिया । अब जिसमें तुम अपनी भलाई समझो, वह करो। अज्ञ पुरुषको हितकी बात सिखाई जाती है । तुम सरीखे नीति-समुद्रके पारंगत पुरुषको उपदेश देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। राजन्,

यह हमारे स्वामीकी उक्ति है । आपको उचित है कि नम्र होकर वह हाथी देदो। समुद्रके रहते नदियोंमें कहीं रत्न नहीं रह सकते । यह हाथी देकर अगर हमारे स्वामीको प्रसन्न कर दोगे तो वे तुम्हें और हाथी देंगे। और अगर वे दारुण कोप करेंगे तो न यह हाथी तुम्हारे हाथ लगेगा और न तुम्हारे ही हाथी तुम्हारे पास रहेंगे। इस जयकी इच्छाको छोड़कर स्वामीके पास जाओ और उनके चरणोंकी सेवा करो। और अगर इस तरह तुम अधिक लाभ चाहोगे तो उस लाभकी जड़ भी जाती रहेगी। मैं जाकर स्वामीसे ऐसी बातचीत करूँगा कि वे आपकी इस ढिठाईको माफ़ कर देंगे । यह बात निश्चित है कि वे मेरे कहनेसे पानीको भी दूध माननेके लिए तैयार हो जायँगे। हे परम प्रिय! अगर भला चाहते हो तो मेरा यह निष्कपट कहा मानो । अपनी स्त्रियोंसे "जय हो, जियो" यह कहलाते हुए एकान्तमें हमारे स्वामीकी सेवामें उपस्थित होकर अपनी रक्षा करो। इस प्रकार गर्वसे भरी शत्रुके दूतकी उक्तिका उत्तर देनेके लिए पद्मनाभने कुमारकी ओर देखा। तब युवराजने यों उत्तर देना शुरू किया। तुम विनयप्रशमैक-भाषण (विनय और शान्तिसे वचन कहनेवाले; परन्तु श्लेषसे इसका अर्थ होता है-न्याय और शान्तिसे हीन वचन कहनेवाले) और परमन्यायसमर्थनके लिए उद्यत; (श्रेष्ठ न्यायके समर्थनके लिए उद्यत; परन्तु श्लेषसे अर्थ होता है-बिल्कुल अन्यायका समर्थन करनेके लिए उद्यत) हो। तुम्हें छोड़कर और कौन ऐसे वचन कह सकता है ? तुम्हारे समान परमेधोद्यम-योग्यता (श्रेष्ठ बुद्धिको जागनेकी योग्यता; परन्तु श्लेषसे इसका अर्थ होता है-केवल ईंधन लानेकी योग्यता) से युक्त तुम सरीखे सचिव जिसके हैं उस तुम्हारे स्वामीके घरमें बहुतसी सम्पत्ति क्यों न हो पर तुम्हारे राजा संसारमें विनय-निरत (श्लेषसे नम्रताहीन) और महागुणी (श्लेषसे बिल्कुल गुणहीन) गिने जाते हैं। सज्जनों करके विशेष रूपसे निन्दित ऐसा करना ही उन्हें उचित हैं। यदि दैवसंयोगसे यह गजराज हमारे

यहाँ चला आया तो इतनेहीसे तुम्हारे स्वामीको इतना डाह क्यों होगया ? पराई बढ़ती पर दुर्जनोंको डाह हुआ करता है। हम पाई हुई अपनी चीज़ तुमको नहीं देते तो इसे तुम अन्याय कहते हो, किन्तु तुम जो पराई चीज़ अपनी कहकर लेना चाहते हो उसे क्या तुम न्याय कहोगे ? जानते हो, 'मैं पुश्तैनी प्रभु हूँ' यह कहना कहाँ उपयुक्त होता है ? पृथ्वीका भोग खड्गके बलसे किया जाता है, पुरानी परिपाटीकी दुहाई देकर नहीं। गजराज हो या और कोई वस्तु हो, पुण्यात्मा पुरुषको जो वस्तु प्राप्त होती है उसे बली पुरुष अपनी कहकर बलपूर्वक लेले—लोकमें ऐसा न्याय कहीं नहीं देख पड़ता। और अगर वे अनाथ-वत्सल राजा मित्रतासे उस गजराजको माँगते हैं तो फिर 'हमने तुमको जता दिया' ऐसे धमकीके वचन क्यों सुनाते हैं ? शत्रुपक्षको रोकने-वाले हाथी क्या उनके और नहीं हैं जो वे नासमझीसे इसी बहाने हम पर अभियोग लगाते या युद्ध करना चाहते हैं ? 'मैं बलवान् हूँ' यह अहंकार सर्वत्र सुखदायक नहीं होता। बादलको लाँघनेकी कामना करनेवाले सिंहका अधिक उछलना ही उसकी मृत्युका कारण होता है। बलके गर्वसे बड़ों पर निष्फल आक्रमण या उल्लंघन करनेकी इच्छा रखनेवाला वह दुष्ट स्वयं अनुभव करके कडुए और मीठेके अन्तरको जान जायगा। अगर क्षमा न रोकती तो इस प्रकार सोते हुए सिंहको जगानेवाले तुम्हारे स्वामीको हमारे स्वामी सहसा चढ़कर अवश्य मार डालते। जो शत्रुओं पर अपराध लगाकर आक्रमण करके उन्हें मारना चाहता है वह स्वयं अन्यके द्वारा अभियुक्त होकर विनष्ट हो जाता है। वायुकी सहायताको प्राप्त अग्नि जैसे औरोंको जलाता है तो स्वयं भी जलता है। नाशको प्राप्त होनेवाले, काम-क्रोधादि व्यसनोंसे युक्त अथवा पुण्यहीन शत्रुको सहजमें जीता जा सकता है। बतलाओ, एकाएक जीतनेकी कामना करनेवाले तुम्हारे प्रभुने हमको इनमेंसे क्या समझा है ? तुम्हारा मूढ़बुद्धि राजा क्या यह नहीं जानता कि अपनेसे बड़ेके साथ

प्रीति और अपनेसे छोटेके साथ ज़बर्दस्ती करनेसे अभीष्ट सिद्ध होता है? अथवा प्रभुता पाकर किसे चेत रहता है? क्या तुम नहीं जानते कि किसके बलसे तुम्हारा प्रभु अकण्टक राज्य कर रहा है? उस क्षुद्र निकम्मे पर हमारे स्वामीकी शङ्कासे ही शत्रुलोग आक्रमण नहीं करते। शत्रुका दूत युवराजकी इस उक्तिसे बहुत ही क्रुद्ध गया। वह और भी आगे बढ़कर भारी गर्वके कारण गद्गद् वाणीसे इस प्रकार कहने लगा। सुकृतके उदय होने पर मनुष्य अपने हितको अपनी ही बुद्धिसे जान लेता है। जिसके विधाता वाम है वह अपनी बुद्धिसे तो समझता ही नहीं, दूसरेके समझानेसे भी नहीं समझता! उपदेशक, शास्त्र या सत्सं-गसे अच्छी अथवा बुरी बुद्धि नहीं होती। मनुष्योंकी अच्छी या बुरी बुद्धिका होना दैवाधीन है। जो अपने पौरुषका बखान करके वैसा ही कर दिखाता है उसीकी शोभा होती है। अपने पराक्रमका गर्व करने वाले ऐसे बहुतसे मैंने देखे हैं जिनकी युद्धमें हँसी हुई है। जिसको अभ्युदयकी इच्छा हो उसे अपने और पराये अन्तरको सोच लेना चाहिए। जैसे सिंह बादल पर बिना विचारे आक्रमण करके पत्थरोंमें अपने हाथ-पैर तोड़ लेता है वैसे ही उसका वह बिना विचारे किया हुआ पराक्रम बुरा ही फल करता है। अधिक भाग्य-सम्पति पानेकी इच्छा रख-नेवाला पुरुष अपनेसे छोटे या समानसे कलह करे तो ठीक भी है। बल-वान्से उसका वैर ही क्या? 'मेरे बहुतसे आदमी हैं' इस ख़याल से नष्ट होगई है बुद्धि जिसकी वह सारे जगत्को जीता हुआ ही समझता है। वह यह नहीं जानता कि भारी काम आ पड़ने पर मेरा साथ कोई न देगा! गर्वसे स्तब्ध तट-तरु नदीके वेगसे गिर जाता है। यह देखकर ही विद्वानोंने यह बात स्वीकार करली है कि प्रबलके आगे झुकना चाहिए। नदी और सागर दोनों ही बहुत सत्त्व (प्राणी और पक्षान्तरमें शक्ति) से युक्त, स्थिर आशय (हृदय और पक्षान्तरमें बुद्धि) वाले और अलंघ्य होते हैं; तथापि उन दोनोंमें परस्पर बड़ा भारी अन्तर है। हाँमें हाँ

मिलानेवाले इन खुशामदी बुरे सेवकों पर आप व्यर्थका विश्वास न करें। अगर समुद्रक्षोभको प्राप्त हो तो वह वृक्ष-वेष्टित पहाड़को भी प्लावित कर सकता है। मेरा यह कहना स्वयं संग्राममें प्रकट हो जायगा। ज़बानसे मज़ा चक्खे बिना किसीको रसका भेद नहीं जान पड़ता। अथवा अपने विपक्षको हितका उपदेश करना ही व्यर्थ है। मुझे क्या, तुम जो चाहो सो करो। मित्रको हितकी शिक्षा देनी चाहिए, क्योंकि वह मान लेगा। शत्रुके प्रति तो उपेक्षा ही करनी चाहिए। इस लिए चाहो तो पुत्रसहित वैरभाव छोड़कर हमारे स्वामीकी सभा भूमिको अपने झुके हुए कमल सदृश मस्तकोंसे अलंकृत करो और चाहो धड़से अलग हुए मुण्डोंसे रणभूमिकी शोभा बढ़ाओ। उस दूतके इस कथनसे युवराज-सहित सारे सभासदोंको क्रोध हो आया। राजाने यह कहकर सबको शान्त किया कि यह तो दूसरेकी उक्ति कह रहा है; इसमें इसका क्या दोष है? जाओ, इसके योग्य रहने खाने-पीने आदिका प्रबन्ध कर दो। इस प्रकार सचिवको आज्ञा देकर राजाने सभासदोंको छुट्टी देदी और आप उठ खड़े हुए।

इसके बाद सलाहको समझनेवाले राजाने सलाहघरमें सब मन्त्रियोंको बुलाया और आप भी युवराज-सहित वहाँ उपस्थित हुए। बोलनेमें प्रवीण राजाने मन्त्रियोंसे यों कहना शुरू किया—हम भी नीतिशास्त्रमें निपुण होगये, यह आप ही लोगोंकी महिमा है। दिन जो सब जगत्को प्रकाशित करता है सो वह सूर्यहीका प्रताप है। माता-पुत्रको अपने कौशलसे बढ़ाती है; चतुरता सिखाती है, सावधान रखकर रक्षा करती है। यही सब सलूक आप लोगोंकी बुद्धि भी हमारे साथ करती है। जिसके आप सरीखे गुरु सब कामोंकी देखभाल करते रहते हैं वह मैं सुमेरुके समान प्रयोजन आ-पड़ने पर भी व्याकुल होनेवाला

नहीं। अगर अंकुशतुल्य आप ऐसे गुरु सिर पर न हों तो गजसदृश मद-मूढ़ होनेके कारण पग पग पर गिरनेवाले जो हम लोग हैं उन्हें कुपथमें जानेसे कौन रोके? आप ही लोगोंकी बुद्धिके सहारे आगे बढ़कर मेरा पराक्रम शत्रुओं पर आक्रमण करता है। तेजस्वी होने पर भी सूर्य सारथीके बिना आकाशके पार नहीं जा सकते। सभामें कान लगाकर आप लोगोंने सुना ही है कि उस दुष्टने दूतके मुखसे मुझे कैसी कड़ी कड़ी बातें कहला भेजी हैं। उसके असंयत वचनोंको सुनकर मेरे मनको क्षोभ हो आया था। पर मैंने यह सोचकर उस क्रोधको शान्त किया कि लोग मेरी सभाकी निन्दा करेंगे कि उस स्थान पर क्या कोई मन्त्री न था जो दूतवधरूप दुष्कर्मसे उन्हें रोकता। रोगकी तरह उदयकालमें ही जिसकी दवा करदी जाती है वह शत्रु अपने वशमें रहता है। इसी कूटनीतिसे प्रोत्साहित होकर उसने हम पर हाथी ले-लेनेका धोपा रक्खा है और इस तरह लड़ाई पैदा करके वह हमें मारना या वश करना चाहता है। इस कारण मेरी समझमें दण्डके सिवा उसे ठीक करनेका और कोई अच्छा उपाय नहीं है। अगर हो तो बतलाओ। क्योंकि सर्वज्ञों तक एकसे बढ़कर एककी बुद्धि होती है। इस प्रकार सोहती हुई बातें कहकर जब राजा चुप हो रहे तब पुरुभूति नामक मन्त्रीने महती विभूतिके देनेवाले ऐसे नीतियुक्त वचन कहे—आपहीके प्रसादसे हम ऋद्धि और बुद्धिके पात्र बने हैं। अत एव आप ही इस पृथ्वी पर हमारे गुरु, स्वामी, सुहृद् और एकमात्र बन्धु हैं। कार्यको समझने-वाले और परम्पराको देखे हुए जो आप हैं उनके आगे नीतिशास्त्रका बहुत थोड़ा ज्ञान रखनेवाले मुझ सरीखे मनुष्यका लज्जित होना ही स्वाभाविक है। कार्यको समझनेवालेके आगे शास्त्रज्ञका बोलना अच्छा नहीं लगता। जो मर्मज्ञ नहीं है उसकी सभी बातें सन्देहकी होती हैं। तथापि अच्छे अधिकार पर स्थित लोगोंका धर्म है कि वे अपनी

शक्तिभर प्रभुको सलाह दें। भूसीमें पड़े हुए चावलकी तरह कभी कभी बालकसे भी कोई थोड़ीसी अच्छी बात मिल जाती है। जयकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको सदा नीति और पराक्रमके दोनों वृक्षोंको पकड़े रहना चाहिए। इनको छोड़कर फलसिद्धिका दूसरा कारण नहीं देखा जाता। नीति और पराक्रममें भी नीति श्रेष्ठ है। नीतिहीनका पराक्रम वृथा है। मस्त हाथीको फाड़ डालनेवाले सिंहको व्याध भी मार लेता है। नीतिके अनुगामी प्रबल शत्रुको भी सहजमें वश कर लेते हैं। शिकारी लोग मस्त हाथीको भी उपायसे बाँध लेते हैं। नीतिमार्गानुगामी पुरुषका काम अगर बिगड़ भी जाय तो उसमें पुरुषका कोई दोष नहीं है। वह सब पापकर्मका पराभव है। जो पुरुष नीतिशास्त्रके दिखलाये मार्ग पर नहीं चलता वह कुबुद्धि बालकोंकी तरह कष्टरूपी जलती लकड़ीको हाथसे अपनी ओर खींचता है। आप श्रेष्ठ विवेकी हैं; इस लिए शत्रुके ऊपर सहसा दण्डका प्रयोग न कीजिए। वह राजा अभिमानी होनेके कारण केवल साम (प्रिय वचनों)से ही शान्त हो जायगा। अभिमानी मनुष्य दण्डकी धमकीसे बिगड़ जाता है, शान्त नहीं होता। आगसे कहीं आग बुझती है? बुद्धिमान् पुरुष सिद्धिके लिए शत्रुके प्रति सामका प्रयोग करते हैं। उसके बाद दान और भेदका प्रयोग किया जाता है। दण्डसे पीड़ा पहुँचाना विवेकी पुरुषोंका अन्तिम उपाय है। पुरुषकी एक प्रिय बात सैकड़ों अपराधोंको धो डाल सकती है। वज्रपात करनेवाले बादल शीतल जल देनेके कारण ही लोगोंको प्यारे हैं। 'दान' में धन-हानि होती है, 'दण्ड' में बल (सेना) की हानि होती है, 'भेद' में कपटी होनेका अयश फैलता है। इस कारण 'साम' से बढ़कर और कुछ अच्छा नहीं है। इस प्रकार न्याययुक्त वचन कहकर पुरुभूति नाम मन्त्री जब चुप हो रहा तब युवराजने पौरुषपूर्ण और ईर्षाहीन वचन इस तरह कहे। इस कार्यमें कहना और चीज़ है और कर्तव्यका ज्ञान और चीज़ है। हल चलानेकी योग्यता रखनेवाला बैल सवारीका काम नहीं

दे सकता । कृत्यका निरूपण न करनेवाली और खीरकी तरह मनोहर इस वाणीकी ओर कौन आकृष्ट होगा ? फल (निष्पत्ति) बीज (कारण) के पद (शब्द) पर स्थित है, और बातें तो सब वृथा वाणीका आडम्बर हैं । पराई बढ़ती पर डाह करनेवाले, व्यर्थ शत्रुता रखनेवाले उस पृथ्वीपालके साथ सामका व्यवहार कैसा ? उससे प्रिय वचन कहे जायँगे तो वह और क्रूरताका व्यवहार करेगा । दुर्जनकी प्रकृति ही ऐसी होती है कि वह अनुकूल नहीं किया जा सकता । योग्य पुरुषके प्रति प्रयुक्त होने पर ही अच्छा उपाय सफल होता है, अन्यथा नहीं । वज्रसे तोड़नेलायक पहाड़ पर टाँकी कुछ काम नहीं करती । मदान्ध और पराया अपमान करनेके लिए तैयार पुरुषके प्रति दण्डका प्रयोग करना ही बुद्धिमानोंकी सलाह है । जो नथा नहीं है वह बैल क्या सहजमें वश होता है ? जब तक शत्रु आक्रमण नहीं करते तब तक मनुष्य सुवर्णके समान भारी रहता है । वही जब शत्रुओंसे तौला जाता है तब वह तत्क्षण तृणके समान हलका हो जाता है । क्षमा बेशक कल्याणका कारण कही गई है; लेकिन वह व्रतधारियोंके लिए गुण है, राजोंके लिए नहीं । संसारके अनुयायी और मुक्तिकी कामना करनेवालेके मार्गोंमें बड़ा अन्तर है । चन्द्रमाके पादसंग (चरण-संग और पक्षान्तरमें किरणोंका संग) को सब लोग चाहते हैं । किन्तु सूर्यको लोग आँखसे देख भी नहीं सकते । यह सब तेजकी ही महिमा है । पराये मनके माने मार्ग पर चलनेवाले नित्य पीड़ित हीन पुरुषके जीवनको धिक्कार है । क्या कुत्ता पूँछ आदि डुलाकर, ललित अनुनय विनय करके अपना पेट नहीं पाल लेता । अपने उचित महत्त्वको छोड़कर जो दुष्ट पुरुषसे प्रिय वचन कहता है वह आप जल-शून्य बादलकी तरह गरजकर अपनी असारताको प्रकट करता है । चाहे जन्मके पहले ही मर जाय या विनष्ट हो जाय, किन्तु पराधीन होकर रहना अच्छा नहीं । मानके विनाशको कौन सह सकता है ?

स्वाभाविक तेजसे रहित पुरुषको बलपूर्वक बैलकी तरह पकड़ कर कौन नहीं चलाता ? इसी लिए महान् लोग सिंहकी वृत्तिको पसन्द करते हैं । राजन्, आप मेरे इन वचनोंको बिल्कुल नीतिहीन न समझिएगा । काल और बलको देखभाल कर मैंने ये वचन कहे हैं । क्या प्रभो, आप नहीं जानते कि प्रबल हिस्सेदारोंसे लड़नेके कारण इस समय उसकी सेना क्षीण होगई है और उसके मित्र भी संकटमें पड़े हुए हैं । आप उससे बढ़ चढ़े हैं और वह क्षयको प्राप्त है । इस लिए भी इस समय आपको उस पर चढ़ाई कर देनी चाहिए । शत्रुके स्थान पर चढ़कर भी भाग्यशाली पुरुष ही सम्पत्तिको पानेमें समर्थ होता है । युवराज सुवर्ण-नाभकी कर्त्तव्य-मनोहर यह वाणी सुनकर और विचार कर पद्मनाभने प्रीतिपूर्ण दृष्टिसे भवभूति नामक मन्त्रीकी ओर देखा । तब उसने यों कहना शुरू किया—विधिपूर्वक कर्तव्य पर सम्पूर्ण विचार करके युवराजने जो कुछ कहा है उससे बढ़कर और क्या सलाह हो सकती है ? दूसरा कोई जो कुछ इस बोरमें कहेगा वह तोता-मैनाके पढ़नेके समान इसीकी प्रतिध्वनि होगी । ऐसे स्पष्ट, क्रमयुक्त, नीतिपूर्ण और शोभन वचनोंको शायद ही बृहस्पति कह सकें । तथापि मैं सहसा इस सम्मतिसे सहमत नहीं हो सकता । कर्त्तव्यके निर्धारणमें जब ब्रह्माको भी मोह हो सकता है तब मुझ सरीखे व्यक्तिको मोह होना कोई आश्चर्य-की बात नहीं है । बुद्धिमान् पुरुष अच्छी तरह विचार करके ही किसी कामको शुरू करता है और या कार्य्यारम्भ ही नहीं करता । जल्दीसे काम करना पशुओंका धर्म है, वह मनुष्यमें न होना चाहिए । अगर पशु और मनुष्य दोनों ही विवेकको छोड़कर कार्य करें तो फिर दो सींगोंके सिवा मनुष्यों और पशुओंमें अन्तर ही क्या रह जायगा । युवराजहीकी सलाह मानी जाय । लेकिन हमें उसके लिए कुछ समय-की अपेक्षा करनी चाहिए । समझदार लोग शत्रुओंके बलकी थाह लेकर सन्धि-विग्रह आदि छह बातोंमेंसे किसी कर्त्तव्यको निश्चित करते हैं ।

जासूसोंके द्वारा शत्रुके सब हालको सब तरह जानकर अपने और पराये अन्तरको जाननेकी आप भी चेष्टा करें। उसके भृत्योंको दूनी तनख्वाह देकर वशमें कर लीजिए और जाली चिट्ठियाँ भेजकर उसके सामन्तोंको उससे बिगाड़दो। आप शीघ्र ही भीमरथ राजाके पास पत्र भेजकर उन्हें यह सब वृत्तान्त जताइए। उनके समान आपका कोई मित्र नहीं है। वे आपका पत्र पाकर बिना आये न रहेंगे। वे आपके सुख-दुखको अपना ही सुख-दुख समझते हैं। वही तनय है जो संकटमें काम आवे, वही राजा है जो प्रजाका पालन करे और वही कवि है जिसकी उक्ति नीरस न हो। उन अद्वितीय तेजस्वी प्रबल राजाको सहाय पाकर आप वैसे ही शत्रुओंके लिए दुस्सह होंगे जैसे शरदृतुमें तेजस्वी सूर्यका तेज नहीं सहा जाता। आप शत्रुके दूतसे निश्चित रूपसे कुछ न कहकर यह कह दीजिए कि आजके तीसरे दिन या तो मैं हाथी दे दूँगा और या समर ही करूँगा। आलस्य रहित राजा पद्मनाभने प्रधानमन्त्री भवभूतिसे सबको पसन्द ये हितवचन सुनकर उन्हें स्वीकार कर लिया और इसी सलाहको श्रेष्ठ समझा। अभ्युदयकी इच्छा रखनेवाले लोग हितैषी गुरुओंकी बातको नहीं टालते।

इति द्वादशः सर्गः।

त्रयोदश सर्ग ।

इसके उपरान्त पराक्रमी, नीतिज्ञ और प्रजाके सब कष्टोंको दूर कर चुके राजा पद्मनाभने भीमरथ आदि सहायकोंको साथ लेकर शत्रुको जीतनेकी इच्छासे यात्रा की। सब लोगोंके मनको हरनेवाला, खिली हुई कोकाबेलीके समान शुभ्र और दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला छत्र मार्गमें राजाके सिर पर उनके यशके समान ही शोभायमान हुआ। पद्मनाभका वक्षःस्थल आकाशके समान विशाल था, उसमें भारी हारकी मणियाँ देखकर जान पड़ता था कि चन्द्रमाके भ्रमसे तारागण मुखकमलकी उपासना करनेके लिए आये हैं। श्रेष्ठ कुण्डलोंमें जड़े हुए पद्मराग मणियोंके टुकड़ोंकी फैली हुई कान्तिके पड़नेसे राजाकी दोनों भुजायें गीली गेरूसे रँगी हुई हाथीकी सूँड़ोंके समान जान पड़ती थीं। राजाके सिर पर जो मुकुट था उसमें अनेक रत्न जड़े हुए थे और उनकी मिली हुई विचित्र चमक इधर उधर छिटक रही थी। इस प्रकार वर्षाकालके समान राजाने आकाशमें इन्द्रधनुषकी शोभा दिखला दी। "शत्रुजयके लिए निकले हुए ये राजा न झुकनेवाले सब माण्डलिकों (छोटे छोटे राजों, और पक्षान्तरमें मण्डलवालों) को परास्त करेंगे," यही सोचकर मानों सूर्य और चन्द्रमा (क्योंकि इनके भी कुण्डल है) अंगद (एक प्रकारका हाथका गोल गहना) के रूपसे उनकी भुजाओंके आश्रयमें आगये। मोरके गलेके आकारवाली, काञ्चीके रत्नोंकी कान्तिसे निरन्तर परिपूर्ण राजाके नाभिसरोवरने यमुनाके अगाध जलकी शोभाको फीका बना डाला। राजा पद्मनाभ इन्द्रके समान आगे थे और अन्य राजगण देवताओंके समान उनके पीछे। इन्द्रका मन गुरु (बृहस्पति) की सलाहसे निर्मल है और राजाका भी मन गुरु (मन्त्री) की सलाहसे निर्मल है और दोनों दिव्य (सुन्दर, पक्षान्तरमें स्वर्गीय)

शरीर धारण किये हुए हैं। रास्तेमें भयसे लड़के-बच्चे इधर उधर भाग रहे थे। वहाँ सवार अपने घोड़ोंको दोनों हाथोंसे रास कसकर रोके हुए लिए जा रहे थे। इतना कसे हुए थे कि घोड़ोंके पुट्ठोंमें पीड़ा पहुँच रही थी। सवारं लोग यत्नसे घोड़ेके वेगको रोके हुए थे और घोड़े आकाशकी ओर जैसे उड़नेके लिए उछल रहे थे। उनकी इस गतिसे आकाश-समुद्रमें मानों तरंगें उठने लगीं। शीघ्र चलते हुए घोड़े, जिन्होंने सारी पृथ्वी पर पद (चरण, पक्षान्तरमें अधिकार) स्थापित किया है, अगर अपने ओज (वेग, पक्षान्तरमें पराक्रम) से अनिल (वायु, पक्षान्तरमें पृथ्वी रहित) को जीत गये तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? पृथ्वीतल पर बे-शुमार फैली हुई राजाकी चतुरंगिणी सेनाने मेरी (अनन्त होनेकी) महिमाको मिटा दिया, यह सोचकर ही जैसे घोड़ेकी टापोंसे उड़ी हुई धूलमें आकाश छिप गया। बिजलीसे सुशोभित मेघ आकाशमें जो शोभा दिखलाते हैं वही शोभा पृथ्वी पर रत्नजटित झूलोंसे सुशोभित होकर चलते हुए भौंरेसे काले गजोंने दिखलाई। महावतकी डिंडिम-ध्वनिसे लोग सचेत होकर इधर उधर हट जाते थे, रास्ते ख़ाली होजाते थे। मस्त हाथी कुपित और निडर दृष्टि डालते हुए मनमाने ढंगसे चले जा रहे थे। हाथियोंके मदजलसे भीगे हुए कपोलों पर मँड़राते हुए भ्रमर मानों यही कह रहे थे कि यह राजा पद्मनाभ ही अकेले सब शत्रुओंका नाश कर सकते हैं, फिर तुम क्यों साथ जा रहे हो। घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूल जब राजयात्राके समय जयसूचक हाथियोंके मदजलसे शान्त हो जाती थी तब लोगोंको राह सूझ पड़ती थी। खुरोंसे मिट्टी खोदकर वेगशाली घोड़ोंने मार्गको ऊँचा-नीचा बना दिया। उस पर चलनेवाले गो-रथोंके पहिये नीचे गिरते और ऊपर उछलते चले जाते थे। यह विजयी राजा किसी औरके कर-पात (हस्तक्षेप और पक्षान्तरमें किरण डालना) को नहीं सह सकता, यही सोचकर सूर्यने बहुतसी

रथकी पताकाओंके वस्त्रोंमें अपनेको छिपा लिया। रथोंने राजाके पराक्रम-रूपी बीजको बोनेकी इच्छासे पृथ्वीतलको जोत डाला, उसे भरी हुई भौंरों-की भीड़से सुशोभित गण्डस्थलवाले हाथियोंने अपने मदजलसे सींच दिया। सब दिशाओंको अपने शब्दसे बहरी बनाते हुए रथोंके शब्दको सुनकर यह जान पड़ा कि चलते हुए पहाड़के समान भारी सेनासमूहसे दबी हुई पृथ्वी चिल्ला रही है। राजा लोग थोड़ेसे अनुचरोंके साथ टहलते टहलते जब तक कुछ कदम आगे बढ़े तब तक उनके सब अनुचर और सैनिक जल्दीसे सेवामें आकर उपस्थित हो गये। लोहेका कवच पहने रहनेके कारण नीले रंगकी देख पड़नेवाली पैदल सेना अपने मण्डलसे पृथ्वीको छिपाये हुए राजाके आसपास थी। उसे देखकर जान पड़ता था कि सूर्यके भयसे अन्धकार राजाकी शरणमें आया है। उन्नत वंश (बाँस, पक्षान्तरमें घराना) से उत्पन्न और गुण (डोरी, पक्षान्तरमें पातिव्रत्य आदि गुण) से विभूषित हस्तगत धनुष वीरोंको कुलकामिनीकी तरह प्यारा हो रहा था। घनघटाके समान श्याम हथनियों पर बैठी हुई, रत्नोंकी चमकसे सुशोभित, चमकीले शरीरवाली अन्तःपुरकी स्त्रियाँ बिजलीके समान जान पड़ती थीं। राजाको देखनेके लिए आये हुए तमाशाई लोगोंकी इतनी भीड़ हुई कि दसों दिशाओंमें उसका समाना कठिन हो गया। मालूम पड़ता था, वह नगर जैसे फट पड़ा है। बहुत बार देखे हुए भी राजाको देखकर पुरनारियोंके नेत्र-कमल, सूर्यको देखकर कमल-कुसुम जैसे खिल उठते हैं वैसे खिल उठे। रमणीय वस्तु सदा आश्चर्यकी चीज़ बनी रहती है। लोगों-के शब्दसे डरकर भागते हुए खच्चरकी पीठ परसे गिरती हुई अन्तःपुरवा-सिनी स्त्रीके स्तनादि अंगोंसे कपड़ा हट जाने पर उन्हें देखकर नौजवान लोगोंका चित्त चलायमान हो उठता है। सेनामें हाथीसे डरकर कर्णकटु शब्द करता हुआ ऊँट लम्बी गर्दन किये बोझा फेंककर भागा और इस

तरह नटके समान उसने हास्यरसकी अवतारणा की। हाथीकी फुफकारसे बिचक कर राहमें बैल जो भागे तो छकड़ेके दोनों धुरे टूट गये। बड़े मुनाफेके लिए घूमते हुए बनियेके घीके घड़े उसके हृदयके साथ ही फूट गये। एक ग्वालिन जा रही थी। अचानक हाथीके आजानेसे डरके मारे वह हिल उठी। सिर परसे बड़ा भारी दहीका माठ गिरकर फूट गया। घड़ी भर खड़ी खड़ी वह इस नुक्सानके लिए सोच करती रही और उसके बाद सड़क परसे लौट गई। भारी मारके मारे जिनकी कमर कमान हुई जा रही है उन बड़ी देरसे चलते हुए कुलियोंने अपनेसे पहले निकले हुए सेनाधिपतियोंको पीछे कर दिया। रानियोंकी पालकियोंसे परिपूर्ण सेनाको देखकर लोगोंको अनेक नौकाओंसे परिपूर्ण समुद्रका स्मरण हो आया। राजाके निकलनेकी प्रतीक्षा करते हुए राजोंकी उत्साह पूर्ण सेनासे व्याप्त पुरकी सड़कें भारी तरंगोंसे भरी नदियोंके समान शोभायमान हो रही थीं। सवारोंके हाथके इशारे पर नाचते हुए चंचल तुरंगोंकी तरंगोंसे युक्त राजाकी सेना, यात्राके समय, समुद्र-जलके समान बहुमुखी होकर वह चली। बारबार बजते हुए राजाके निकलनेकी सूचना देनेवाले डंकेके शब्दने अपनी प्रतिध्वनिके रूपमें सब सेनाधिपतियोंके घरोंमें जाकर उन्हें चलनेका न्यौता दिया या बुलाया। प्रसन्न मनुष्योंसे और भी बढ़ी हुई पुरकी शोभामें जिनके मन और नयन लगे हुए हैं उन राजाने विस्मित होकर सहसा देखा कि वे पुरके बाहर आगये हैं और उनका रथ पुरकी चहारदीवारीके नीचे खड़ा हुआ है। पुरके फाटकसे बाहर निकलते समय घोड़ोंकी कसामसी देखने ही योग्य थी। हाथियोंके महावतोंको सिर झुकाकर निकलना पड़ता था। पताकायें झुका झुकाकर निकाली गईं। कमलोंको हिलाकर और खाईके जलको छूकर आते हुए शीतल वायूने मित्रकी तरह हृदयसे लगकर राजाको सुखी बनाया। भ्रमरोंके शब्दको

सुनकर जान पड़ता था कि वह वायु राजासे स्नेहसंभाषण कर रहा है। राहमें फूले हुए कमलों और निर्मल जलवाली नदियोंकी सैर करते जाते हुए राजाको यह शरदयात्रा बहुत ही प्रिय जान पड़ी। हृदयहारी वय (अवस्था, दिशाओंके पक्षमें पक्षी) वाली, निर्मल अम्बर (वस्त्र, दिशाओंके पक्षमें आकाश) वाली, चौड़े ऊँचे पाण्डुवर्ण पयोधर (स्तन, दिशाओंके पक्षमें मेघ) वाली दयिताके समान दिशाओंको राजाने बारम्बार आदरके साथ देखा। मनोहर कम्बल ओढ़े हुए और अदबके साथ इज्जत करते हुए गोपोंके चौधरियोंने दही-दूध आदि सामग्री, राहमें मिलकर, अर्पण की; राजा उन्हें देखकर उन पर बहुत प्रसन्न हुए। कुचोंके भारसे तोतोंको रोकनेमें असमर्थ किसी धानके खेतकी रखवाली करनेवाली स्त्रीको देखकर राजाने सोचा कि कहीं बहुत गुण भी दोष बन जाता है। बड़ी बड़ी लौकियोंके बोझसे झुके हुए छप्परोंके पास खड़ी हुई ग्वालिनोंकी प्यासी आँखे मानों कान्तिजलसे परिपूर्ण राजाके रूपको पिये लेती थीं। संपूर्ण और अभीष्ट महती फल-सम्पदा पाकर झुके हुए धानोंको देखकर राजाको सज्जनोंका स्मरण हो आया। क्षण-भर दूसरी हंसीके पास रहकर आये हुए हंसका अनादर करती हुई राज-हंसीको देखकर राजाने समझ लिया कि शठता स्त्रियोंका स्वाभाविक गुण है। चन्द्रकिरणके समान निर्मल गो (गायें, पक्षान्तरमें वाणी) वाले; खलों (धान्यराशि, पक्षान्तरमें दुष्ट) को अपनेसे दूर रखनेवाले, अपनी सीमा (हद, पक्षान्तरमें मर्यादा) में साफ़ और सुशोभित पण्डितोंके समान ग्रामोंको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। सरोवरमें चोंचमें लेकर प्रणयसे अर्पित कमल-नालको, न लेकर रूठ गई हृदयेश्वरीको मनाते हुए पीछे जाते चक्रवाक पक्षीको देखकर राजा खुश हुए। मेघके शब्दके सदृश गम्भीर अकारणध्वनिको सुनकर उत्सुक हो नाचते हुए मयूरोंको गाँवोंके आसपास देखकर राजा गोकुल-निवासकी प्रशंसा करने लगे। धानोंकी

रखवाली करनेवालोंकी बाँसुरीके शब्दको ध्यान लगाकर सुन ते हुए मृगोंको सेनाके लोगोंने सहजमें मार लिया। यह देखकर राजाने जान लिया कि इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त लोगोंके लिए सदा विपत्ति रक्खी हुई है । राजाने देखा कि राजहंस लोग अपने ही समान सुचाल चलनेवाले, भावित मानस (मानस सरोवरका ध्यान करनेवाले, राजाके पक्षमें सम्यग्ज्ञान आदिकी भावनासे युक्त मनवाले) और विमल पक्ष (पंखों, राजाके पक्षमें विमलों-सज्जनों-का पक्ष लेना) से विभूषित हैं। उनकी ओरसे आँख फिराना राजाके लिए कठिन होगया। फले हुए अन्न-समूहसे भरी हुई और अत्यन्त मनोहर हलकी रेखाओंसे सुशोभित पृथ्वी पर गऊकी तरह राजाकी दृष्टि चिर-काल तक इच्छापूर्वक विना किसी बाधाके विचरती रही । लोगोंके हृद-यरूपी पलँग पर सोते हुए कामदेवको जगानेके लिए मानों की गई मस्त हंसोंकी कलध्वनिको राजा थोड़ी देर तक कान लगाये सुनते रहे । थोड़ी थोड़ी दूर पर मार्गमें झूलदार हाथियोंकी सेनाको विश्राम कराते हुए राजा समुद्रके समान जलसे परिपूर्ण जलवाहिनी नामकी नदीके पास पहुँचे ।

तरह तरहके आकारवाली लहरोंके अग्रभागमें स्थित और बर्फ़के समान श्वेत फेनकी राशिसे वह नदी शरदृऋतु बादलोंसे सुशोभित पहाड़ोंवाली पृथ्वीके समान जान पड़ती है । स्नान करते हुए जंगली हाथियोंके कपोलोंसे बहते मदजलके ऊपर मँड़राते भ्रमरोंसे तिलक लगाये कामिनीके समान वह नदी जान पड़ती है । उसके दोनों तटों पर परस्पर केलि-कलोल करते हुए मधुर गीतके समान शब्द करनेवाले पक्षी उस नदीके मुसाहब अथवा विनोद-विलास जान पड़ते हैं। उस नदीके दोनों किनारे चमकीली इन्द्रनील-शिलाके हैं । उसकी चमक पानीमें पड़नेसे वह नदी पृथ्वी पर निराधार आकाशके प्रतिबिम्बके समान शोभा पाती है । उस नदीमें मछ-लियोंके बराबर उछलनेसे ऊपर उठे हुए चन्द्रकान्तमणि ऐसे उज्ज्वल

जलकण आकाशमें तारागणके समान शोभा पाते हैं। किनारेके घने वृक्षोंकी आड़में सूर्यके छिपे रहनेसे उस नदीतटकी रेतमें खूब ठंडक और अँधेरा रहता है। वहाँ पर रमण करते हुए आकाशचारी विद्याधरों और विद्याधरियोंके रतिश्रमसे उत्पन्न पसीनेको सोखता हुआ वायु उन्हें रमाता है। घने और स्नानार्थ आई हुई रमणियोंके स्तन आदि अंगोंसे छूटे हुए अंगरागसे अनुरञ्जित जलके द्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको और आकाशको सुगन्धित करनेवाली सुवाससे वह नदी ऊपर आकाशमें होनेवाली विद्याधरियोंकी जलकेलिको नीचा दिखा रही है। हाथियोंके बहुतसे मदजलसे और थके हुए घोड़ोंके मुँहके फेनसे उस वाहिनी (सेना) ने उस नदीको भी स्नेहसे अपना ही नाम 'वाहिनी' (नदीको भी वाहिनी कहते हैं) दे दिया और उसके प्रवाहको बढ़ा दिया। उदय-युक्त (अभ्युदय, ग्रहोंका 'उदय') राजा आकाशके समान उस नदीके पार चले गये। आकाशमें कर्क, मीन, मकर आदि राशियाँ होती है तो उस नदीके तट पर भी कर्कट (केकड़े) चल रहे थे, मीन (मछलियाँ) भी थीं, और बीचमें मकर (मगर) उछल रहे थे।

इति त्रयोदशः सर्गः ।

चतुर्दश सर्ग ।

मणियोंकी प्रभासे प्रदीप्त मणिकूट नामक पर्वत राहमें मिला। उसे देखकर जान पड़ता है कि बादलोंकी दो घटायें, जिनमें बिजली चमक रही है, आपसमें (टकराकर) आकाशसे गिर पड़ी हैं। रात्रिके समय शिखरोंमें विचित्र रत्नोंका अद्भुत अलंकार (कंकण) धारण किये पर्वतके सिर पर चन्द्रमा चूड़ामणिके समान जान पड़ता है। उसकी सोनेके समान चमकीली ऊँची मेखलाओंके आसपास फिरता हुआ नक्षत्र मण्डल उज्वल कान्तिसे प्रकाशमान मणि-किंकिणियोंका काम करता है। वहाँ कपड़े बसानेके लिए देवताओंकी स्त्रियाँ इतना काला अगर जलाती हैं कि उसके धुँएके बादल आकाशमें छाये रहते हैं और इस प्रकार सदा वहाँ वर्षाऋतुकी शोभा देख पड़ती है। वहाँ किन्नर नारियोंके गानमें कान लगाये निश्चल बेहोशसे खड़े हुए मृगोंको देखकर आकाशचारी विद्याधरोंको सजीव चित्रका धोखा हो जाता है। कन्दराओंके द्वारों पर रहकर बादल सूर्यकी किरणोंको भीतर आने नहीं देते, लेकिन बीच बीचमें बिजलीकी चमकसे प्रियतमाके मुखको दिखला देते हैं। इसीसे देवगण उनको देखकर सन्तुष्ट होते हैं। महती औषधि आदि-ऋद्धिको प्राप्त प्रभाशाली योगियोंके प्रभावसे उस रमणीय विशाल शिखरवाले पर्वत पर जानेवाला कोई मनुष्य रोग पीड़ाको नहीं प्राप्त होता। पर्वतकी निचली भूमि इतनी ऊँची है कि बादल प्रायः उसके नीचे ही बरसा करते हैं। तथापि ऊपरसे गिरते हुए झरनोंका पानी उनमें भरा रहता है और विद्याधरियोंको जलकेलिके लिए जलकी कमी नहीं रहती। चन्द्रकान्तमणिकी शिलाओंसे बहे हुए अमृत-तुल्य पानीको पीकर पेड़ सदा हरे बने रहते हैं और उनमें नित्य नई कोपल निकला करती है। वहाँ चन्दनोंके वनमें जितने काले साँप हैं वे दिव्य औषधियों-

की महकसे निर्विष हैं। इसीसे वहाँ पर स्त्रियाँ अपने प्यारे पतियोंके साथ बे-खटके क्रीड़ा किया करती हैं। उस पर्वतकी मनोहर शिलायें मेघसी जान पड़ती हैं और उनके ऊपर चमकीली घनी देवतोंके शरीरकी कान्ति विजलीसी देख पड़ती है। दिनको तपी हुई सूर्यकान्त शिलाओं परसे जल्द जल्द जानेमें असमर्थ किन्नरोंकी स्त्रियाँ अपने भारी स्तनोंके भारको ही अनखाती हैं। जलते हुए लोहपिण्डके समान सूर्य वहाँ शिलाओंके नीचेसे निकले हुए झरनोंकी जलराशिमें जुड़ाकर गर्मियोंमें भी ज़ोरसे नहीं तपते। उस पर्वत पर वायु अगर रतिकी थकन मिटाकर विद्याधरियोंका उपकार करता है तो वे भी अपने मुख-कमलकी साँसोंसे उसे सुगन्धित कर देती हैं। वृक्षोंके कारण जहाँ सूर्यकी आड़ ही बनी रहती है उस पर्वतके तट पर अंकुरित और बढ़ी हुई लताओंके समूहमें विचित्र उज्ज्वल चन्द्रचिन्हधारी मनोहर मयूरोंकी बड़ी ही बहार देख पड़ती थी। वहाँ मधुरसको पीकर मनोहर गान करते हुए मनमें विकार उत्पन्न करनेवाले भ्रमरसमूह कुपित कान्ताओंके मनानेमें नौजवानोंकी सहायता करते हैं। वहाँ मेघध्वनिके समान झरनोंके शब्दको सुनकर नाचते हुए मोर पक्षी शिखरों पर विहारकरनेवाले देवतोंको ऐसा मोहित कर लेते हैं कि वे अप्सराओंके नृत्यकी चाह नहीं करते। उस पहाड़ पर सिद्ध लोग जाड़ेमें तो शीतशून्य कन्दराओंके भीतर, गर्मीमें फुहारेदार कन्दराओंके भीतर और वर्षामें उन शिखरों पर, जिनके नीचे वादल आते-जाते हैं, सुखसे रहते हैं। अन्धकारको नाश करनेवाले चन्द्र-सूर्यको अपनी कान्तिसे जीतनेवाले, उन्नत मस्तक, शक्तिमें साक्षात्-रुद्रके तुल्य, पृथ्वीके एकमात्र पालक राजासे सेनापतिने कहा—"यह पहाड़ देखकर किसे विस्मय न होगा? इसकी उत्तम कन्दरायें रहने योग्य हैं, वहुतसे झरने इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं, इस पर हाथी और चमरी (नीलगाय) बहुत हैं, यहाँके माधवीकुंजोंमें देवगण विहार करते हैं, कमलके फूल खिले

हुए हैं और निर्मल पत्थरोंकी उज्ज्वल कान्तिसे यह प्रकाशित हो रहा है। बर्फ़के समान सफेद रेत जिसके दोनों ओर है और कमलपरागसे जिसका जल रंगीन हो रहा है वह स्वादिष्ट जलवाला सिन्धुनद और अनेक दिशाओंको अलंकृत करनेवाले सरोवर इस पर्वतसे उत्पन्न हुए हैं। इसके शिखरों पर शुक्लपक्षकी रातोंमें देवोंकी स्त्रियाँ जब मुखकमलका शृंगार करना चाहती है तब चन्द्रमा आईनेका काम देता है। यहाँ पुष्पहीन वृक्ष, मणि-दीपक-रहित कन्दरा, देवगण-रहित शिखरभूमि और कमलहीन सरोवर नहीं है। यहाँ कन्दराओंसे निकल कर आकाशचारी विद्याधर लोग सुगन्धित साफ़ कपड़े पहने स्त्रियोंको साथ लिये सुरतिके बाद. शिखरोंके ऊपर भ्रमरोंके गुञ्जनको सुनते और हवा खाते हैं। इसके शिखरों पर भ्रमरसमूह-चुम्बित स्थल-कमलोंके समूह देखकर अनेक चन्द्रमण्डलसे युक्त आकाशखण्डका भ्रम हो जाता है। यहाँके लतामण्डपोंमें मङ्गलके लिए जलाये गये दीपक अगर हवासे बुझ जाते हैं तब भी रतिके समय आकाशचारी विद्याधर गण दिव्य औषधियोंके उजियालेमें प्रियतमाओंके मुखकमलोंको देखते हैं। यहाँ कन्दराओंमें रत्नदीपक, जिनका प्रकाश बुझ नहीं सकता, जला करते हैं। वहाँ जब विद्याधर लोग अपनी स्त्रियोंके नितम्ब परसे वस्त्र हटाने लगते हैं तब वे और उपाय न देखकर अपने प्रियतमोंकी आँखें हाथोंसे मूँद लेती हैं। जिनमें पुष्पगुच्छ परिपूर्ण लताओंके प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहे हैं उन बिजलीके समान चमकीली पहाड़की सुवर्णमयी भूमियों पर गिरते हुए भ्रमर इन्द्रनीलमाणिकी बनी चौकका भ्रम उत्पन्न करते हैं। इस पहाड़के शिखरों पर चमकती हुई इन्द्रनीलमाणिकी कान्ति पड़नेसे श्यामवर्ण शरदऋतुके बादल कभी अपने श्वेतरंगमें नहीं देख पड़ते। मानके उन्मादको हटानेमें चतुर मधुर कोकिलाओंकी बोली चैत्रके आरम्भमें युवकोंसे युवतियोंको मिलाकर दूतीका काम करती है। इस पर्वत पर विद्याधरियाँ आसपासकी ज़मीनमें गूँजते हुए गानको ऊँचे

स्वरसे गाकर क्रीड़ा करती हैं । आकाशचारी विद्याधर गण प्रसन्नतापूर्वक यहाँकी स्वर्णभूमिमें यथेष्ट रूपसे दिव्य भोगोंको भोगते हैं । इस पर्वतकी रत्नमयी भूमिमें आकाशचारी पक्षियोंके प्रतिबिम्बको चञ्चलताके साथ पकड़नेकी चेष्टा करते हुए जंगली बिलावके बच्चेको देखकर देव-वनितायें ऐसी मुग्ध हो जाती हैं कि उनकी दृष्टि दूसरी ओर नहीं जाती।

स्वामिन्, "यह मुनिसमूहशोभित इसीसे पाप दूर करनेमें समर्थ, हाथियों और चमरमृगोंसे परिपूर्ण, देवतोंके रहने योग्य शिखरवाला, प्रशस्त-प्रभा-युक्त सुमेरु सदृश पर्वत सदा देवतोंकी दृष्टियोंको रमाया करता है । नीलमकी नीली कान्तिके जलसे जिनके भीतरका अन्धकार और भी घना होगया है उन इस पहाड़की कन्दराओंमें कौतुकके लिए छिपी हुई स्त्रियोंकी स्थितिको उनकी साँससे सुगन्धित हवा ही उनके पतियोंको बता देती है । यह फैला हुआ नदीका जल, इस पर्वत पर भ्रमरोंसे भरी हुई, घामसे मुरझाई हुई, वायुसे हिलते हुए अग्रभागवाली और बारम्बार झुक रही फूले हुए वानीर-वृक्षोंकी कतार-की रक्षा करता है । इस पर्वत पर घातिया कर्मोंके विनाशसे कैवल्यको प्राप्त मुनि लोग सब कर्मोंको नष्ट करनेकी इच्छासे प्रतर-पूरण आदि समुद्घातों द्वारा शेष अघातिया कर्मोंकी स्थितिको आयुःकर्मकी स्थितिके बराबर बनाते हैं । वृक्षोंकी शाखाओंके बीचसे आकर फैली हुई सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित शिखरकी इन्द्रनील-शिलाओंकी कान्तिका समूह बिजलीका अनुकरण करके अकालमें ही मयूरोंको मस्त बना देता है । इस पर्वतमें रातको शिखरों परके कुटज़वृक्षोंकी ऊँची चोटियों पर लिपटेसे नक्षत्रसमूह फूलोंके गुच्छेसे जान पड़ते हैं । इस पर्वत पर अन्धकारको नष्ट करके अपार आकाशको पहुँची हुई सूर्यकी किरणें, मणियोंकी कान्तिमें फीकी पड़कर, रातको जैसे चन्द्रमाकी किरणें धीमी होती हैं वैसी हो जाती हैं । इस पहाड़के शिखरोंसे निकले हुए, निरन्तर, व्याप्त पद्मराग मणियोंके प्रका-

-शसे पूर्ण दसों दिशायें खूब लाल वस्त्रोंसे सुशोभित स्त्रीके समान शोभाको प्राप्त होती हैं। " अप्रहत-वीर्य्य राजाने ललित शब्दोंसे युक्त सेनापतिके इन वचनोंको सुनकर मणियोंकी कान्तिसे सुशोभित उस पहाड़ पर कुछ दिन रहकर रमण करनेका विचार किया। दो-पहरके समय थके हुए राजाने फूलोंकी महकसे सब दिशाओंको सुगन्धित करती हुई पहाड़के शिखरों परकी वृक्ष-श्रेणीको देखते देखते सेनाके ठहरनेके लायक स्थान पाया। पसीनेकी बूँदोंसे सुशोभित प्रियतमाओंके कपोलोंको देखते हुए राजाको उस समय पीड़ा पहुँचानेवाला भी सूर्य अप्रिय नहीं हुआ। आगे चलकर दूकानदारोंने जिन्हें सजाया है उन भारी कपड़ोंकी बनी दूकानोंसे शोभित बाजारोंको देखते देखते राजा पद्मनाभ ऊँचे फाटक-वाले अपने निवास-भवनमें गये। राजासे विदा होकर अपने अपने डेरेको जाते हुए घोड़ों पर सवार राजाओंके चलनेसे वह सेनाका पड़ाव लहरोंसे परिपूर्ण समुद्रके समान क्षोभको प्राप्त हुआ। राजाधिराज पद्म-नाभके मन्दिर, घुड़साल, वेश्याओंके डेरे और बाजार आदिको देखकर पीछे आनेवाली प्रजाने समझा कि यही हमारे रहनेका स्थान है। राह चलनेसे थके हुए परिचित पुरुषोंके सत्कारके लिए अपने कनातोंके डेरोंके द्वार पर खड़ी हुई वेश्यायें सैनिकोंको वहाँकी ही रहनेवाली सी जान पड़ती थीं। अधिक परिश्रमसे जिनकी जाँघें थक गई हैं ऐसे देरमें आये हुए लोग अपने डेरोंको जाननेमें असमर्थ होकर किंक-र्तव्यविमूढ़से अपने साथियोंके शब्दका पता लगाते हुए इधर उधर घूमने लगे। हवाके आगे आगे फैलकर सब दिशाओंको सुग-न्धित करनेवाले पूरियोंके सुगन्धको पाकर व्याकुलताके साथ पास आते हुए भूखे सैनिकोंकी जीभमें खुजलीसी होने लगी। कपड़ोंके डेरेमें पड़े हुए नींदसे अलसाते राजा लोग धीरे धीरे देवदारुके पेड़ोंको हिलनेसे सुगन्धित, स्वच्छ जलवाले झरनोंके जलकणोंसे मिलनेके कारण

शीतल और राहकी थकनको मिटानेमें निपुण पहाड़ी पवनका सेवन करने लगे। पसीने और फेनसे जिनके शरीरमें रेखायें बन गई हैं, यात्राकी सामग्रीका भार जिनके ऊपरसे उतार लिया गया है और पृथ्वी पर लोटनेके लिए जो इधर उधर चक्कर लगा रहे हैं उन घोड़ोंसे वह पड़ाव समुद्रके समान तरंगित जान पड़ता था। परस्पर देखकर किये गये और पहाड़की कन्दराओंमें गूँजते हुए घोड़ोंके शब्दसे दमभर सब सैनिक बहरेसे होगये और जरूरी बातचीत करते करते घड़ीभर गूँगेसे होगये। जलके भीतर प्रकट है चंचल पीठ जिनकी ऐसे घोड़े जब चारों ओरसे जल पीनेके लिए अमित जलवाले जलाशयमें उतरे तब उसमें पहाड़के समान ऊँची लहरें उठने लगीं। पानी पीकर और नहाकर निकले हुए घोड़े पानीकी बूँदोंके मिससे मानों श्रम-कणोंको फेकते हुए घुड़सालमें, जिनमें घोड़ोंके बाँधनेके लिए शिलायें डालदी गई हैं, एकसाथ घुसने लगे और बड़ी मुशकिलसे बाँधे जा सके। भ्रमरोंके समान काले हाथी पताका, फूल, आभूषण और अस्त्र आदिके बोझेको उतार कर जब जल पीने और जलकेलि करनेके लिए चले तब वहाँकी पृथ्वी प्रलयकालकी हवासे क्षोभको प्राप्त पर्वतशिखरोंसे परिव्याप्तसी जान पड़ी। जलमें डूबे हुए प्रसन्न गजराजोंके झुण्डने जो अपने सिन्दूरलिप्त पुष्कर (सूँड़, पुष्कर कमलको भी कहते हैं) उठाये तो वे सैनिकोंके द्वारा लूटे गये हैं कमल जिसके उस जलाशयमें लालकमलकी शोभाको प्राप्त हुए। पर्वतोंके ऊँचे शिखरोंका अनुकरण करनेवाले सन्ध्याकालके लाल बादलोंसे आकाशके किनारोंकी जो शोभा होती है वही शोभा सिन्दूरसे रँगे हुए शरीरवाले हाथियोंके जलमें प्रवेश करनेसे नदीकी हुई। पहाड़ी नदियोंके जलमें घुसते हुए सेनाके हाथियोंको जो प्रवाह सहजमें पार जाने लायक था वही हाथियोंके कपोलोंसे बहते हुए मदजलके प्रवाहसे परिपूर्ण होकर पार जानेवालोंके लिए दुस्तर होगया। गर्वित जलके हाथियोंसे दमभर

लोगोंके मनमें कौतूहल उत्पन्न करनेवाला युद्ध करके जीते हुए गजराज हथनियोंके पीछे अपनी सूँड़ रक्खे हुए लीलापूर्वक मन्द गतिसे डेरोंको लौटे। जंगली हाथीके मस्तक घिसनेसे जिसमें उसके मदजलकी गन्ध आ रही है उस पेड़के पास बाँधनेके लिए जब महावत हाथीको लाया तब उसने क्रोधके मारे अपने तापको निवृत्त करनेवाले वृक्षकी डालोंको तोड़ डाला। अस्थान पर कोप करनेसे भलाई नहीं होती। नीले मेघके समान कृष्णवर्ण, विशाल-वंश (पीठकी हड्डी, पक्षान्तरमें बाँस) से युक्त, स्थित मद-निर्झरके जल (मदजल, पक्षान्तरमें झरनोंका जल) से परिपूर्ण और ऊँचे पेड़ोंकी कतारमें बँधे (पक्षान्तरमें वृक्षोंकी कतारोंसे परिपुष्ट) हुए गजराज उस पर्वतके चलते-फिरते अंगोंके समान जान पड़ते थे। रुचिके जाननेवाले महावत लोग रुचिके लिए जो सल्लकी-वृक्षके पल्लव ग्रासोंमें हाथियोंको देते थे उनसे हाथियोंको जंगलकी याद हो आती थी और वे उस कौरको लेनेमें उदासीनता ही दिखाते थे। बोझ उतारनेसे हलके हुए बड़े बैल कामको मिटानेवाला पहाड़ी नदियोंका पानी पीकर डहकते और तट-भूमिको खोदते इधर उधर घूमने लगे। खलप्रिय (खली जिनको प्यारी है, पक्षान्तरमें दुष्ट जिन्हें प्यारे हैं) लोगोंके साथ उपकार करना कहाँ शान्तिका कारण होता है ? घास और पानी पाकर तृप्त हुए बैल पेड़ोंकी छाँहमें बैठकर पागुर करने लगे। जान पड़ा कि इस बहानेसे राहकी थकनको ही वे अलस नेत्रवाले बैल चबाने लगे। बोझ उतारनेके समय ऊँटोंके किये कटु शब्दको कन्दराओंमें स्थित किन्नरगणने कानोंको सुखदायक अपने गानको छोड़कर सुना। सच है, रम्य वस्तु वैसा कुतूहल नहीं करती जैसा कि अपूर्व वस्तु। छोटे और बड़े वृक्षोंके पल्लवोंको बहुत लम्बे कन्धेवाले ऊँट जब खाने लगे तब उन पेड़ोंसे जो दूध टपकने लगा वह उस पहाड़के आनन्दके आँसुओंके समान जान पड़ा। महान्

(ऊँचे और बड़े) लोगोंको परोपकार करनेमें प्रसन्न होना उचित ही है। निर्मल और ऊँचे फेनपुञ्जसे चन्द्राकार पट-मण्डपोंको, निरन्तर उठते हुए तरंग-समूहसे चंचल घूमते हुए घोड़ोंको और चलते हुए भयंकर ग्राहोंसे मस्त हाथियोंको समुद्र अगर किसी तरह जीतले तो वह अपार कहा जा सकता है । इस प्रकार उस पहाड़ पर सेना समेत आकर पड़े हुए पद्मनाभकी खबर जासूससे पाकर क्रोधके मारे अपनी सेना लेकर पृथ्वीपाल राजा भी निकट ही आगया। उन दोनों प्रतापी राजोंकी चतुरंगिणी सेनाको देखनेके लिए कौतुकपूर्ण होकर चन्द्रमासे विभूषित और विकसित तारागण ही जिसके नेत्र हैं वह रात्रि शीघ्र ही आगई। पराई सेनाकी थाह पाये हुए पद्मनाभने रक्षाका प्रबन्ध करके कुछ देर तक अपने वीरोंके साथ होनेवाले संग्राकी चर्चा करनेके उपरान्त सोनेके लिए शयन गृहमें प्रवेश किया । वहाँ प्रकाश पूर्ण पलँग पर लेटकर मस्त स्त्रियोंको लिपटाने आदि विनोदोंसे धीरवीर राजाने रात विताई । त्रिभुवन-भवनके दीपक-स्वरूप चन्द्रमाका बिम्ब जब नियतिवश अस्त होने लगा तब तारा-रूप नेत्रोंको बन्द करके चन्द्रमाके विरहका पश्चात्तापसा करती हुई रात्रि लीन होगई।

इति चतुर्दशः सर्गः ।

पञ्चदश सर्ग।

शत्रुवेरके समय दोनों चर और अचरके स्वामियों (नरराज और पर्वतराजके कटक सेना और तट) को क्षुब्ध करनेवाला संग्राम-सूचक डंकेका शब्द होने लगा। मेघध्वनिके समान गम्भीर और दिशाओंमें फैलनेवाले डंकेके शब्दसे शत्रुसेनाकी कौन कहे, अचला पृथ्वी भी काँप उठी। शत्रु-कीटोंकी कौन कहे, मदसे उद्धत आकारवाले दिग्गजोंने भी उस शब्दको सुनकर मद (मदजल, पक्षान्तरमें घमण्ड) छोड़ दिया। होनेवाले संग्रामके लिए उत्साहित सुभटोंके मन हर्षसे और शरीर रोमांचसे परिपूर्ण हो गये। हर्षसे अंग फूलनेके कारण पहलेकी लड़ाइयोंके भरे हुए घाव जिनके फिर फूट चले हैं वे वीरगण वीर-रसके आवेशसे कवच आदि पहनकर युद्धके लिए तैयार होने लगे। किसी वीर पुरुषका शरीर हर्षसे ऐसा फूल आया कि कवच छोटा पड़ गया। उसने वह कवच उतार डाला और वह यों ही युद्धमें जानेको तैयार होगया। दूसरे भीरु पुरुषने बचावके लिए वही कवच उठाकर पहन लिया। किसीकी स्त्रीने शरीर पर हाथ फेरकर कहा—नाथ, तुम्हारा कवच इस समय कुछ कसा जान पड़ता है। स्त्रीके कर-स्पर्शसे वह और भी हृष्ट-पुष्टसा होगया। शृंगार रसके आवेशसे जब वीर नायकके शरीरमें दूना रोमाञ्च हो आया और कवचका शरीर पर ठीक होना कठिन हो गया तब उसकी प्रिया क्षणभरके लिए वहाँसे गायब होगई। शत्रुओं पर कोप होनेसे लाल हुई आँखोंकी चमक पड़नेसे सुशोभित हो रहे हैं कवच जिनके ऐसे शत्रुओंके लिए भयानक सुभट सन्ध्याकालीन मेघके समान शोभायमान हुए। बहुत भयानक, गंभीर शत्रुपक्षके हाथियोंकी आवाज सुनकर कुपित और सुराके समान मदजलवाले पद्मनाभके हाथियोंने अपनी सूँड़ें पृथ्वी पर पटकना शुरू

किया । "इनको पुण्यकर्म ही सुरक्षित बनाये हुए हैं, अब मैं और क्या करूँगा ?" यह सोचकर ही मानों कवच राजाके अंगमें मुशकिलसे आया । "इनको तो राजलक्ष्मी लिपटाये हुए हैं, मैं क्या करूँगा ?" यह सोचकर ही युवराजके अंगमें कवचने अतिगौरव नहीं पाया । प्रसन्न भीमरथ राजा शत्रुओंके लिए अभेद्य और साक्षात् अपने तेजके समान कवचको धारण कर सुशोभित हुए । समरमें श्रेष्ठ भीमरथके पुत्र महीधरके शरीरमें उत्साहसे उठे हुए रोमोंका एक कवच था और उसके ऊपर कवच दूसरा कवचसा जान पड़ता था । दीन और अनाथ लोगोंको बहुत-सा दान देकर जयलक्ष्मी प्राप्त करनेके लिए उत्सुक और रणके व्रतकी दीक्षा लिए हुए सामन्तोंको राजाने प्रसन्नता सूचक उपहार देकर सन्तुष्ट किया । भीमराजको चमकदार कपड़े, सुभीमको माणिकङ्कण, महासेनको मुकुट, सेनको मोतियोंकी माला, चित्राङ्गको चूड़ामणि, परन्तपको सुवर्णका यज्ञोपवीत, कण्ठराजाको रत्नकी कण्ठी, सुकुण्डलको कुण्डल, भीमरथको महामूल्य मणि और मनोहर हार तथा महीरथको अनेक महामूल्य आभूपण देकर चतुर पद्मनाभने प्रसन्न किया । और भी जो कवच, घोड़ा, रथ या हाथी जिस राजाके योग्य था वह उसी राजाको चतुर पद्मनाभने दे डाला । युद्धके लिए उत्सुक और उत्कृष्ट चक्र, बाण, खड्ग आदि अस्त्रोंसे अलंकृत वह स्वामी-सहित सेना कतार बाँधकर चलते समय शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न करने लगी । इसके बाद महावतोंने जिसे सजाया है और पुरोहितने अपने हाथसे जिस पर अस्त्र-शस्त्र रख दिये हैं उस वनकेलि हाथी पर चढ़कर स्वयं पद्मनाभ शत्रुके सामने चले । युवराज रथ पर चढ़कर उसी तरह पद्मनाभके पीछे चले जैसे ऐरावत पर आरूढ़ इन्द्रके पीछे सूर्य चले । पहाड़ ऐसे ऊँचे रणविग्रह नामक गजराज पर चढ़कर प्रताप जैसे सूर्यके पीछे चलता है वैसे भीमरथ राजा युवराजके पीछे चले । महान् अस्त्र जिस पर चमक रहे हैं उस सारथीके सजाये मनो

रथ ऐसे रथ पर चढ़कर महीरथ राजा उनके पीछे चले। चारों समुद्रों-तक प्रसिद्ध और चतुरंग सेनासे युक्त अन्यान्य राजा भी चारों ओरसे पद्मनाभको घेरकर चले । यात्राके डंकेकी आवाज सुनकर सब सैनिक जिसमें आकर जमा हुए वह सेना 'वहु' 'आदि' संख्याकी तरह इयत्ताहीन थी; अर्थात् कोई यह न बता सकता था कि यह कितनी है । मंगलकी सूचना देती हुई सियारी पद्मनाभकी बाईं और शब्द करने लगी । उसी ओर गधा भी कोमल शब्दसे बोलने लगा । खंजरीट पक्षी कहींसे आकर राजाकी प्रदक्षिणा करता चला गया। दुधीले वृक्ष पर बैठकर कौआ बोलने लगा। आप ही आप एकाएक हाथियोंके कपोल फट गये और उनसे मदजल बहने लगा। बड़े उत्साहके कारण सुभटोंके रोमाञ्च हो आया। इष्ट फलके सूचक और इसी कारण सैनिकोंको प्रसन्न करनेवाले इन और अन्यान्य सगुनोंसे राजा पद्मनाभकी जीत स्पष्ट होगई । इस प्रकार सज-धजकर पद्मनाभ युद्ध करनेके लिए निकले हैं, यह सुनकर राजगण सहित पृथ्वीपाल राजा भी कुपित हो तैयारी करके युद्धके लिए निकला। उसके चलते समय दाहनी ओर सियारियाँ बोलने लगीं, वारम्वार छींकें होने लगीं, साँप राह काट गया, कँटीले वृक्षों पर बैठकर कौआ कर्कश शब्द करने लगा, घोड़ोंकी पूँछें जल उठीं, गधा आर्त शब्द करने लगा, प्रतिकूल हवा चलने लगी, मन भी उदास होगया, आकाशसे रुधिरकी वर्षा होने लगी। किन्तु कुपित पृथ्वीपालने किसी बात पर ध्यान नहीं दिया । प्रलयकालकी हवासे क्षोभको प्राप्त पूर्व और पश्चिमके समुद्रकी तरह बढ़ती हुई दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ होगई। परस्पर देखकर भिड़नेके लिए वीरोंको, घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूलने कृपासी करके दमभर रोक रक्खा। मस्त हाथियोंके मदजलके छिड़कावसे धूल दब जाने पर रणभूमिमें एक दूसरेको लक्ष्यकर खड़े हुए सुभट बहुत ही शोभित हुए। दोनों सेनाओंमें घोड़े हिनहिनाते, हाथी चिङ्घाड़ते और डंके बज रहे थे। सारा जगत् ही उस समय मानों शब्दमय होगया। दानशील, धन

देनेवाले कुवेरको भी परास्त करनेवाला और मोटी जाँघोंवाला भट, वलफते हुए शत्रुके ऊपर चक्रोंकी वर्षा करने लगा। सवारों, पैदलों हाथियों और रथों पर चढ़े हुए वीरोंमेंसे हरएक अपनी श्रेणीके योद्धाको निडर होकर युद्धके लिए ललकारने लगा। अस्थायी प्राणोंसे स्थायी यश पैदा करनेकी इच्छा रखनेवाले युद्धकी राह जाननेवाले योद्धा लोग परस्पर युद्ध करने लगे। प्रभुके प्रसादको चाहते भटोंके मुख पर जो राग (सन्तोष, पक्षान्तरमें जोशकी तमतमाहट) था वही शत्रुओंके बाण सहते समय मुखरागसा जान पड़ा। अपने चलाये वाणोंसे भारी मण्डपसा वनाकर धूपको दूर हटाये हुए वीरोंको लड़नेमें कुछ भी परिश्रम नहीं जान पड़ता था। स्वामीके सम्मान और अपनी शक्ति तथा परम्पराकी परिपाटीको वारम्वार स्मरण करते हुए योद्धा लोग युद्धको चले। एकने खुशीके साथ जिसे पहले भारी शस्त्रोंके प्रहारसे जीत लिया था उसने कुपित होकर उसे फिर खूनसे तरवतर कर डाला। एक घोड़ेके सवारने तरवारसे हाथीका मस्तक जो फाड़ डाला तो हाथीके मस्तकसे उस पर गिरते हुए गजमुक्ता फूलोंकी वर्षाके समान जान पड़े। युद्धमें जिनका चित्त लगा हुआ है ऐसे प्रतापी योद्धा लोग खड्ग आदि शस्त्रोंसे घायल होकर गिरने लगे। मांसभोजनकी कामनासे भूखे भूत गण युद्धभूमिमें आने लगे। धनुष टूट गया, उसकी डोरी कट गई और तर्कस लोगोंसे खाली हो गये; तव दोनों योद्धा परस्पर भिड़कर—वाल पकड़कर—मल्लयुद्ध करने लगे। निष्कम्प (चेष्टाहीन) शत्रुओंके रुधिर-रूप वड़े मेघोंने पहाड़ोंके आधार पर स्थित पृथ्वीके निचले भागोंको परिपूर्ण कर दिया। उस रणभूमिमें अव्यक्त ध्वनिपूर्ण जो रक्तकी नदियाँ वह चलीं उनमें जड़से कटी हुई हाथियोंकी सूँड़ें 'मगर' सी तैर रही थीं। एक वीरके सव अंगोंमें गहरे वाण घुसे हुए थे। वह निष्कम्प अवस्थामें भी शत्रुके सामने अंकुरित वृक्षकी तरह खड़ा हुआ था। कौतुक देखनेके लिए अपना लोक छोड़कर आये हुए देवगण मृतक वीरका सिर

कटा देखकर डर जाते थे कि यह वीर कहीं हमारे लोकोंको हस्तगत न करले । कच्चे मांसके साथ रक्तरूप आसवसे छककर उन्मत्त हुई डाकिनियाँ नाच रही थीं। उनको नृत्यकी शिक्षा देते हुए कबन्ध नाट्याचार्य्यसे जान पड़ते थे। निरन्तर चलते हुए बाणोंके जालमें छिपे सूर्य्य भी मानों भयसे कहीं भाग गये। रण-रंगभूमिमें आयुधोंसे कटकर गिरे हुए वीरोंके सिर आकाशसरोवरसे गिरे हुए शतदलकमलोंके समान जान पड़ते थे। जिस योद्धाने किसी प्रसिद्ध सरदारको नहीं हराया उसने कुछ भी वीरता नहीं दिखाई और उसके स्वामीने उसका आदर व्यर्थ ही किया। वीर पुरुष रणमें सिर कट जाने पर भी तब तक नहीं गिरा जब तक उसने तत्काल निकाली हुई तरवारसे शत्रुको नहीं गिरा दिया । शूरवीर लोग अस्त्रशस्त्र चुक जाने पर हाथोंसे हाथोंको और पैरोंसे पैरोंको तोड़कर परस्पर गाली गलौज करने लगे। हाथियोंसे मारे गये हाथी, पैदलोंसे मारे गये पैदल, रथियोंसे तोड़े गये रथ और सवारोंसे मारे गये घोड़े रणभूमिमें गिरने लगे। कहीं पैदल और घोड़े पड़े थे, कहीं टूटे हुए बड़े बड़े रथ लुढ़क रहे थे, कहीं कटे हुए हाथी लोट रहे थे । रणभूमिके भीतर जाना ही कठिन हो रहा था। शत्रुओंके बाणोंसे पीड़ित होकर जब अपनी सेना भागने लगी तब पृथ्वीपालका सेनापति चन्द्रशेखर सामने आया। उसने अपने वीरोंसे कहा—वीरो, क्यों भाग रहे हो ? यह राह तुम्हारे योग्य नहीं है। दैव संयोगसे संकट आपड़ने पर पराक्रम प्रकट करना ही शूरोंका क्रम है । मैं रणका प्रबन्धकर्त्ता हूँ, तुम घबराओ नहीं । तुम्हारी पीठ शत्रुओंने आजतक नहीं देखी । सदा न रहनेवाले प्राणोंसे अगर सदा रहनेवाला यश प्राप्त हो और स्वामीका नमक भी अदा हो तो रणमें मरना कोई बुरी बात नहीं है। इस प्रकार युद्धसे विमुख अपनी सेनाको धीरज देता हुआ वह सेनापति प्रचण्ड हाथोंसे धनुष चढ़ाये हुए आगे चला। बाणजालसे सारे आकाशको व्याप्त करके क्षणभरमें उसने शत्रुओंको व्याकुल कर दिया । रथ पर सवार राहु-तुल्य पद्मनाभका सेनापति भीम उस रथ पर सवार

सूर्यसे शत्रुकी ओर चला। रणके भारको धारण करनेवाले दोनों वीरोंमें खूब गहरी लड़ाई हुई। आकाशमें व्याप्त हुए वाणोंसे देवगण दूर चले गये। दोनोंके शस्त्र आपसमें टकराकर अग्निकी चिनगारियाँ पैदा करते थे। तीखी धारवाले वाणोंसे दोनोंने दोनोंकी ध्वजायें काट डालीं। उनके धनुषोंके टंकारको सुनकर, दूसरे हाथीके शब्दके भ्रमसे, मस्त-हाथी कुपित हो उठे। प्रहारोंसे गिरती हुई रुधिर धाराओंने दुर्दिन बना रक्खा था। मौका पाकर चन्द्रशेखरने अर्धचन्द्र वाणसे ध्वजा-सहित भीमका चमकीला मुकुट काटकर गिरा दिया। भीमने भी सँभलकर क्रोधसे शत्रुकी छाती ताककर एक शक्ति मारी। वह रुधिर उगलता हुआ स्वामीके जयकी आशाके साथ गिर पड़ा। प्रभुके प्रतापके समान चन्द्रसेखरको गिरा देखकर केतुग्रहके समान सारे जगत्को डराता हुआ केतु राजा लड़नेके लिए खड़ा हुआ। क्रोधित भीमने, गरुड़ जैसे काले नागको मुर्दा बनादे वैसे, उसका घमंडका विष झाड़ दिया और इस तरह सामर्थ्य-हीन करके उसे छोड़ दिया। केतुके यों परास्त होने पर हवासे हिलती हुई जिसकी पताका आगे उड़ रही थी वह सुकेतु रथ पर चढ़कर आगे आया। दुर्धर प्रलय कालके मेघ जिस तरह वज्रसे पहाड़के सौ टुकड़े कर डालता है वैसे ही महा-सेनने श्रेष्ठ अस्त्रोंसे उसकी गति करदी। परकटे गरुड़की तरह संग्राममें सुकेतुको गिरते देखकर सूर्यके समान असह्य तेजवाला विरोचन नाम राजा आगे आया। गज पर सवार विरोचनसे लड़नेके लिए हाथी पर चढ़ा हुआ पराक्रमी सेन राजा आया और उसने संमुख वाण मारकर विरोचनको विमुख कर दिया। अपने पक्षको कष्टमें देखकर जिसका चित्त उत्साहित हो आया है उस धैर्यशाली महारथने उसके बाद धनुष बजाया। उसका नाम आगे आगे नकीब लोग कहते जाते थे। चढ़ाई हुई त्यौरियोंसे भयानक मुखवाले महारथने आते ही शत्रुसेनाके ऊपर वाणोंकी वर्षा शुरू कर दी। "भीमरथ कहाँ है, जिसके बलसे

पद्मनाभ उस शत्रु सेनाको, जिसमें क्रूर कबन्ध नाच रहे हैं, जीतना चाहते हैं, "। गर्वसे गद्गद् वाणीमें यों कहता हुआ महारथ सामने आ रहा था। भीमरथने दौड़कर उसे बाणोंसे रोक दिया। बहुत देर तक दोनों इस तरह एक दूसरेके बाणको रास्तेमें ही काटकर लड़ते रहे कि किसीके शरीरमें घाव नहीं आया। विस्मित देवगण उन दोनों महावीरोंके युद्धको देखते रहे। उन दोनोंके दिशाओंके अन्तमें जाकर ठहरनेवाले बाणोंके भयसे विह्वल होकर आकाशने तभीसे मानों अशरीरी होकर रहना निश्चित कर लिया है। वीर पुरुषकी अभिलाषासे बारम्बार दोनोंके पास जाती हुई जयलक्ष्मीने आने जानेके क्लेशकी कुछ पर्वा नहीं की। शत्रुने मन्त्र-सदृश शंकु-नामक अस्त्र भीमरथके सिर पर मारा। उसके लगनेसे भीम सर्पके समान भीमरथ मूर्च्छित होगये। क्षात्रधर्मका पालन करते हुए शत्रुने दमभर प्रतीक्षा की, इसी अवसरमें दाँतसे ओठ चबाते हुए भीमरथ उठ खड़े उए। उनके हृदयमें पहले क्रोध कुछ सोयासा था। शत्रुकी गहरी चोटसे मानों वह क्षणभरमें जाग उठा। क्रोधसे जिसका उत्साह दूना हो रहा है उस भीमरथने हाथीसे शत्रुके हाथीको रेलकर, देवतोंकी फूलोंकी वर्षाको स्वीकार करते हुए, महारथको जीता ही पकड़ लिया। पिताके पकड़े जानेसे पुत्र सूर्यरथको बड़ा क्रोध आया। वह रथ पर चढ़कर धीर ध्वनिसे धनुष बजाकर सारथीको उत्तेजित करता हुआ युद्ध स्थलमें उपस्थित हुआ। अपने थके हुए पिता (भीमरथ) के सामने उसे आते देखकर महीरथने अपना रथ बीचमें कर दिया और उसे लड़नेके लिए ललकारा। बहुत देरतक लड़कर महीरथने चमकीले, सुन्दर सोनेके समान कान्तिवाले सूर्यरथके वक्षःस्थलमें शिलीमुख नामक बाण मारा। उस प्रहारसे अचेत सूर्यरथके रथको उसका सारथी अपनी सेनाके भीतर ले गया। महीरथके रथ पर फूलोंकी वर्षा होने लगी। उसके उपरान्त कलकल शब्दसे दिशाओंको परिपूर्ण करता हुआ पृथ्वीपालका पुत्र धर्मपाल आगे आया। उसका मुख कोपसे अरुण हो रहा था, वह

दिव्य धनुष (पक्षान्तरमें इन्द्रधनुष) भी धारण किये था और वाण-धारायें वरसा रहा था। वह सांयकालके मेघकी उपमाको प्राप्त हो रहा था। जैसे वादल जब वरसने लगते हैं तब गायें इधर उधर तितरवितर होकर संकुचित हो जाती हैं उसी तरह वाण-वर्षासे वली राजकुमारके आगे मिलकर आये हुए राजगणकी दशा हुई। इस प्रकार थककर व्याकुल हुए सामन्त राजोंकी दशा देखकर शत्रुनाशन सुवर्णनाभ कुमार उसके सामने आये। सुवर्णनाभको रथ हँकवाकर आगे आते देखकर धर्मपाल क्रोधसे जल उठा। उसने आक्षेपविषमें वुझाये हुए निम्नलिखित वचन-वाण सुवर्णनामके ऊपर चलाये। उसने कहा—हट, यहाँसे चला जा, ढीठ, तू क्यों आगे खड़ा है? यह मेरा हाथ तुझ सरीखों पर प्रहार करना नहीं चाहता। शायद तेरा पिता तेरे ही वलसे हमें जीतना चाहता है। नहीं तो तेरी सलाहसे वह अपनेसे वलीके साथ युद्ध ही क्यों करता? तू क्या है, भीमरथ क्या है? और तेरा पिता ही क्या है। अगर मेरे आगे आकर ठहर सको तो मैं जानूँ। नीच जनोंके योग्य उसके ये वचन सुनकर वारम्वार धनुषकी डोरीको वजाते हुए सुवर्णनाभने कहा। माताकी चञ्चलताको सूचित करनेवाले इन अधम वचनोंसे क्या प्रयोजन है? अगर कुछ अभिमान हो तो आ। देर मतकर। तूने जैसे वचन कहे वैसे वचन हम लोग नहीं कह सकते। वड़े लोग अपनेको अधमोंके वरावर नहीं समझते। धूर्त्त दुर्जन लोग अपनी ही अनीतिसे आप जला करते हैं। इसीसे वाहियात वकते हुए दुर्जनोंकी वातों पर सज्जन ध्यान नहीं देते। अभिमानी धर्मपालको जब ऐसे वचनोंसे सुवर्णनाभने अप्रतिभ किया तब उसने कोप करके जिनका चढ़ाना और छोड़ना जान ही नहीं पड़ता वैसे वाण वरसाना शुरू किया। धनुष चढ़ाकर सुवर्णनाभने भी वीचहीमें अपने निरन्तर वाणोंसे धर्मपालके वाणोंको काट डाला। युद्धमें अटल अचल वे वीर वाण चुक जाने पर प्रासोंसे, प्रास टूट जाने पर कुन्तोंसे, कुन्त

टूट जाने पर तरवारोंसे सबको हिला देनेवाला युद्ध करते रहे। दोनोंमें अतुल शक्ति है और दोनोंने अस्त्रविद्यामें परिश्रम किया है, नहीं मालूम कौन जीतेगा ? इस प्रकार दोनों सेनाओंके सैनिक अपने अपने मनमें संशय करने लगे। बहुत देरतक लड़नेके कारण थके हुए धर्मपालने सुवर्णनाभ पर तरवारका वार किया। सुवर्णनाभने वह वार बचाकर उसे पकड़ लिया। बन्दीगण कुमारकी स्तुति करने लगे। दुर्जय धर्मपालको वन्दी बनाकर आनन्दके आँसु जिनकी आँखोंमें भरे हुए हैं उन महाराज पद्मनाभके पास राजकुमार ले गये। परन्तपने तडिद्दक्रको, चित्राङ्गने सिंहविक्रमको, कण्ठने वरुणको और सुकुण्डलने चन्द्रकीर्त्तिको जीत लिया। और भी शत्रुपक्षके जो राजा लड़नेके लिए आये उन्हें पद्मनाभके सामन्तोंने जीतकर भग्नमनोरथ कर दिया। इस बीचमें क्रोधसे जिसके कराल नेत्र हो रहे हैं वह महाबली पृथ्वीपाल राजा खुद लड़नेके लिए आया। मंत्रियोंने असाधारण चिन्ह देखकर समझ लिया कि यही पृथ्वीपाल राजा है। तब उन्होंने पद्मानाभके कानमें कहा—स्वामिन्, यह पृथ्वीपाल राजा देवबलसम्पन्न, धूर्त्त, क्रोधी और सब कपटोंकी खान है। यह स्वयं युद्ध करनेके लिए आया है। आप इससे सावधान होकर युद्ध करें। यह शत्रु उपेक्षाके योग्य नहीं है। इस दयिता (प्यारी, पक्षान्तरमे स्त्री) मन्त्रियोंकी वाणीको हृदयमें स्थान देकर धनुष चढ़ाये हुए राजा पद्मनाभ शत्रुके सामने गये। जिनके समान पराक्रमी अन्य कोई नहीं है ऐसे दोनों राजा, जिनके पैरोंके पास रक्षक मौजूद हैं ऐसे हाथियों पर बैठकर आमने सामने आये। परस्पर लड़नेके लिए उद्यत सेनाको दोनोंने रोक दिया और बलके दर्पसे वे ही भारी द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। उनके तिर्छे जाते हुए सैकड़ों शिलीमुख बाणोंसे व्याप्त दिशाओंको देखकर जान पड़ता था कि सैकड़ों उल्कायें गिर रही हैं। उनके शस्त्रकौशलको पृथ्वी पर राजोंकी सेना और आकाश पर देवगण निश्चल दृष्टिसे देखने लगे। घमंडसे जिनकी प्रचण्ड

भुजायें फड़क रही हैं वे दोनों नरपति हटकर, पैंतरे बदलकर, स्थिति-क्रिया और लंघनक्रियासे मर्मस्थलकी चोट बचाते हुए देरतक धनुर्युद्ध करते रहे। जिसका निशाना ठीक जमा हुआ नहीं है ऐसे शत्रुने जो जो बाण मारे उन उन बाणोंको राहमें ही पद्मनाभने बाणोंसे काट डाला। धनुर्विद्यामें विशारद पद्मनाभ बाणोंसे नहीं जीते जा सकते, यह सोच-कर श्रम-रहित पृथ्वीपाल राजा उन पर भाले चलाने लगा। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखवाले, सुवर्णाचलके समान अटल सुवर्णनाभके पिताने अर्धचन्द्र बाणोंसे उन्हे भी काट डाला। पृथ्वीपाल उसी दम चक्रोंकी वर्षा करने लगा। पद्मनाभने उन्हें मुद्गरोंसे चूर कर डाला। तीनों शक्तियोंसे सब जगत्को वश करनेवाले पृथ्वीपालने शक्ति चलाई। पद्मनाभने गदाके प्रहारसे उस शक्तिको निष्फल कर दिया। हाथीको पास ले-जाकर पृथ्वीपालने परशु चलाया। पद्मनाभने वज्रमुष्टि नामक शस्त्रसे परशुके टुकड़े टुकड़े कर डाले। उसके बाद शंकु नामक शस्त्र चलानेके लिए उद्यत पृथ्वीपालके सिरको पद्मनाभने चमकदार चक्रसे केलेके गाभेके समान काट डाला। प्रभुका गिरना देखकर शत्रुओंकी सेना भागी तब वनकेलिके सिरको थपथपाकर उसे उत्साहित करते हुए पद्मनाभने रणभूमिका निरीक्षण किया। युद्धभूमिमें मरे पड़े हुए बन्धुओंको खोज-कर उनके बान्धवगण बाणोंकी चितामें उनका अग्नि संस्कार करने लगे। इसी समय किसी सेवकने शत्रुका कटा हुआ सिर आगे लाकर रख दिया। उसे देखकर राजाको इस प्रकार वैराग्य हो आया। वे आप ही आप कहने लगे—क्षणभरमें खुश और क्षणभरमें रूठ गई कुलटा लक्ष्मीकी प्रेर-णासे कैसे इस प्रकारके कार्य मनुष्य करता है। धिक्कार है, बड़े कष्टकी बात है! सम्पत्तिके साथ विपत्ति, जवानीके साथ बुढ़ापा, जीवनके साथ मरण और प्रियसंगके साथ वियोग लगा हुआ है। ऐसा सुहृत्संग नहीं है जिसमें वियोग न हो। ऐसे ही मृत्युहीन

जन्म नहीं है, वे-बुढ़ापेके जवानी नहीं है, और विपत्तिशून्य सम्पत्ति नहीं है। राजाको प्रजा अपनी रक्षाके लिए उपजका छठा हिस्सा वेतन-की तरह देती है । राजा असलमें प्रजाका नौकर है। लेकिन मूढ़ मनुष्य अपनेको राजा समझकर गर्व करता है। क्रोध आदि चार कषा-योंसे मलिन यह प्राणी वही कर्म करता है जो खुद उसके लिए भी भयंकर है। पुरुष क्रोधमें आकर भाइयोंको मार डालता है, पिता आदि-को मार डालता है, निरपराध बन्धुओंको भी मार डालता है। यहाँ तक अपनी भी हत्या कर डालता है। विचारशून्य क्रोधको धिक्कार है। इस जन्ममें जैसे मैंने इसे मार डाला है वैसे ही उस जन्ममें यह मुझे मारेगा। संसारमें बल, वीर्य और विभूतियाँ इधरसे उधर हुआ करती हैं। भोगों-को धिक् है, धनको धिक् है, इन्द्रियसुख को धिक् है। दूसरेको पीड़ा पहुँचा कर और जो चीजें प्राप्त होती हैं उन सबको धिक् है। संसा-रकी सारी दुर्दशाओंको जाननेवाला मैं भी पापरूप इन्द्रियोंके विषयोंकी वञ्चनामें आगया! अहो, बड़े कष्टकी बात है। प्रेमसे बढ़कर और बन्धन नहीं है, विषयोंसे बढ़कर दूसरा विष नहीं है, क्रोधसे बढ़कर दूसरा शत्रु नहीं है, और जन्मसे बढ़कर और दुःख नहीं है। इस लिए मैं इस दुर्लभ मनुष्य-जन्ममें कुछ ऐसा कर्म करूँगा जिससे चारों गतियोंमें आने जानेका कष्ट फिर न हो।

इस प्रकार संसारकी कष्टकारिणी स्थिति पर यों विचार करके राजा पद्मनाभने वहीं युवराजको पुर और वाहन सहित सब राज्य दे दिया। उसके बाद शोकपीड़ित पृथ्वीपालके पुत्रको यह कहकर समझाया कि सुवर्णनाभकी आज्ञाका पालन करते हुए पिताका राज्य करो। चरणोंमें प्रणत पुत्र और सामन्त राजोंको जानेके लिए आज्ञा देकर पद्मनाभ राजा श्रीधर मुनिके आश्रममें चले गये और वहाँ मुनिराजसे श्रमण-दीक्षा लेकर तप करने लगे। व्रत ग्रहण करते ही सम्यग्ज्ञानकी ऋद्धि प्राप्त हो जानेके

कारण पद्मनाभके लिए दीक्षाका समय ही शिक्षाका समय हो गया। बारह अंगशास्त्रके ज्ञाता और बारह सूर्योंके समान तेजस्वी पद्मनाभ बारह तरहके तपको नित्य बढ़ाने लगे। सिंहविक्रीड़ित आदि विविध आकारवाले तप करते करते आलस्यहीन राजाका शरीर कर्मोंके साथ ही क्षीण हो आया। तेरह प्रकारके चारित्रको चिरकाल तक पालन करते हुए वे तीर्थङ्कर होनेकी कारण भूत निम्नलिखित सोलहकारणभावनाओंको भाने लगे। शंका आदिसे रहित सम्यग्दर्शनकी शुद्धिरूप, 'दर्शनविशुद्धिभावना' और सधर्मी, विद्यागुरु, वृद्ध और शास्त्रके प्रति विनयरूप, 'विनयसम्पन्नताभावना'। अहिंसा आदि व्रतोंके साथ ही उनके अंगस्वरूप क्रोध-त्याग आदि शील-व्रतका पालन, 'शीलेष्वनतिचारभावना'। निरन्तर उपधान आदि नियमों सहित ज्ञानाभ्यास, 'अभीक्ष्णज्ञानोपयोगभावना' और घोर संसार दुःखसे डरना ही जिसका लक्षण है ऐसी 'संवेगभावना'। अभयदान आदि भेद युक्त 'शक्तितस्त्यागभावना'-और जिसकी सामर्थ्य प्रकट है तथा शरीर निग्रह ही जिसका लक्षण है ऐसी 'तपोभावना'। तपमें कहींसे कोई विघ्न उपस्थित होने पर शक्तिको न छिपाना, 'साधुसमाधिभावना' और गुणी साधुओंको दुःख आ पड़ने पर उनकी सेवा शुश्रूषा करना, 'वैयावृत्यकरणभावना'। अर्हत्,आचार्य्य और बहुतसे शास्त्रग्रन्थोंके ज्ञाता बहुश्रुत लोगोंके प्रति अनुराग ही जिसका लक्षण है ऐसी 'अर्हदाचार्य बहुश्रुतभक्तिभावना'। द्वादशांग आदि बहुतसे भेदोंसे युक्त परम आगमके प्रति भक्ति, 'प्रवचनभक्तिभावना' और प्रतिक्रमण आदि छह आवश्यकोंको कभी न छोड़ना, 'आवश्यकापरिहाणिभावना'। ज्ञान, तप आदि कारणोंसे जिनमार्गके प्रगट करने रूप 'मार्गप्रभावना' और उसी तरह सधर्मी पुरुषोंके प्रति स्नेह ही जिसका लक्षण है ऐसा दर्शनवात्सल्य-'प्रवचनवात्सल्यभावना' इस प्रकार इन सोलह भावनाओंको मोक्षसुखकी सिद्धिके लिए धारण करके निःसंग, शुद्धचित्त, परोपकार-निरत-हृदय-

और व्रत-नियमकी समृद्धिको प्राप्त पद्मनाभने तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया। निर्दोषवृत्तिवाले निष्पाप धीर पद्मनाभ मुनिने सब प्रकारके संग तजकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप त्रिविध तपको किया। अन्तको तप करनेसे कृश शरीरको छोड़कर अनुत्तर नामक वैजयन्त स्वर्गको वे गये। खिली हुई चमेलीकी ऐसी सुगन्धसे सब दिशाओंको सुगन्धित और रत्नोंकी चमकसे मनोहर शरीरको शीघ्र ही पाकर वे वहाँ पर अहमिन्द्र नामक इन्द्र हुए और तेंतीस सागर परिमित आयुपर्यंत पुण्यके उदयसे प्राप्त दिव्य भोग करते रहे।

इति पञ्चदशः सर्गः।

षष्ठदश सर्ग ।

यहाँ जम्बूद्वीपान्तर्गत, भरतखण्डमें, चन्द्रमाकी किरणोंके समान कान्तिशाली उन्नत कमलसमूहोंको अपने छत्र आदि चिन्होंके समान चारों ओर धारण किये शोभायुक्त और देशोंका राजा पूर्व नामक देश है। जिस देशमें स्तनकलशोंके बोझसे बारम्बार उठनेमें असमर्थ प्रौढ़ा स्त्रियाँ फूले हुए धानोंकी बाली लूटनेवाले हरिणोंको हाँक तो नहीं सकती, लेकिन अपने मधुर गीतमें ही अटका लेती हैं। अपने चीत्कार-शब्दसे सब दिशाओंको परिपूर्ण करके अपने पास मानों बुलाते हुए कोल्हुओंकी ध्वनिसे आकृष्ट होकर पथिकसमूह वहाँ जाते हैं और वहाँ सरस 'रस' रूपी अमृतको पीकर वे राहकी थकनको भूल जाते हैं। वहाँके वृक्ष भी महान् पुरुषोंके समान देख पड़ते हैं। वे भी आश्रित लोगोंके सन्ताप (तपन, पक्षान्तरमें दुःख) के विस्तारको हरते हैं, ऊँचे होने पर भी फल-सम्पत्ति पाकर झुकते हैं, सच्छाया (अच्छी छाँह और पक्षान्तरमें कान्ति) से युक्त और सरस (हरेभरे और पक्षान्तरमें सहृदय) हैं। वह देश देवकुरु नामक उत्तम भूखण्डकी तरह निरन्तर फले हुए और बे-जोते-बोये उत्पन्न सब अन्नोंसे सम्पन्न है। निर्दोष पुरुषको जैसे लोकापवाद नहीं छू-सकता वैसे ही नवग्रहके कारण होनेवाले दुर्भिक्ष आदि अवग्रह उसे नहीं छू सकते।

इस देशमें देवपुरीके समान तीनों लोकमें प्रसिद्ध चंद्रपुरी नामकी राजधानी है। चन्द्रबिम्बको चूमनेके लिए उत्कण्ठितसे वहाँके महल संगीतकी ध्वनिसे सदा गूँजा करते हैं। जिसके फाटक पर झंडा फहरा रहा है ऐसी चहारदीवारी उस पुरीके चारों ओर बनी हुई है। उसकी विस्तृत उन्नत शिखरावली ही उसके हाथ जान पड़ते है। मानों करुणावश होकर वह उन्हीं हाथोंसे निराधार आका-

शको थामे हुए है। नीलाचलके समान नीली और ऊँची लहरें जिसमें उठ रही हैं ऐसी गहरी खाई उसके चारों ओर खुदी हुई है। उस खाई-को देखकर जान पड़ता है कि उस पुरीके रत्नोंकी अभिलाषासे समुद्र उसे घेरे हुए है। उस पुरीमें कोई वियोगी (विरही) नहीं है; केवल वृक्षही वि-योगी (पक्षियोंसे युक्त) हैं। विलापी (रोनेवाला) कोई नहीं हैं; केवल सर्प आदि जीव ही विलापी (विलमें जानेवाले) हैं। नीरस (रूखी तबीयतका) कोई नहीं है; केवल खूब पेरी हुई ईखका छिलका ही नीरस (रसहीन) देख पड़ता है। गदाभिघात (रोगका होना) कहीं न देख पड़ता था; केवल संग्राममें ही गदाभिघात(गदाके प्रहार) की बात सुन पड़ती थी। उस पुरीके भीतर पाताल-विवरकी तरह सहस्रों नागों (हाथियों, पक्षान्तरमें सर्पों) से परिपूर्ण, सज्जनोंके हृदयकी तरह प्रशस्त (प्रशंसित, पक्षान्तरमें चौड़ा) बौद्धोंके मतकी तरह बहुतसी भूमिकाओं (वेदियों पक्षान्तरमे माध्यमिक, सौत्रान्तिक, वैभासिक, योगाचार आदि मत-भेद) पर स्थित राजमन्दिर शोभायमान हैं।

वहाँके प्रसिद्ध प्रतापी और शान्त राजाका नाम महासेन था। वे इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न हुए थे। उनके उदार गुण त्रिभुवनमें प्रसिद्ध थे। उन्होंने चन्द्रमा और कुन्द-कुसुमके समान अपनी उज्जल कीर्तिसे अन्य राजोंको परास्त कर दिया था। कल्याण-प्रकृति (कल्याण=मङ्गल, पक्षान्तरमें सुवर्ण) से ही नहीं, बल्कि धैर्यसे भी वह महामेरुके समान थे। समुद्र लावण्य (नमकका खारापन, राजाके पक्षमें शरीरकी कान्ति) को खूब धारण किये है, और रत्न भी उसके बहुतसे हैं। तथापि प्रलयकालमें मर्यादा (सीमा, पक्षान्तरमे प्रतिष्ठा) को छोड़ देनेवाला समुद्र उदारहृदय राजाकी बरा-बरी नहीं कर सका। उनकी अत्यन्त शूरता नीतिसे शून्य न थी। ऐसे ही उनकी प्रभुता उदारक्षमासे शून्य न थी। उनकी विद्या विनयसे खाली न थी। धन भी बराबर दान और भोगमें खर्च होता था। पृथ्वीतलके विशिष्ट पुरुष राजा महासेनके गुणोंका वर्णन इतना

ही यथेष्ट है कि संसारबन्धनसे छुड़ानेवाले, भव्य पुरुषोंके आगे सन्मार्गको प्रकट करनेवाले सूर्य और जगत्‌के गुरु जिनेन्द्र उनके पुत्र हुए ।

कामदेवकी स्त्री जैसे रति है वैसे कमलनिवासको छोड़कर आई हुई लक्ष्मी या पातालसे निकली हुई नागकन्याके समान लक्ष्मणा नाम उनकी रानी सारे अन्तःपुरकी स्वामिनी (पटरानी) थी । महावृक्षकी लताके समान सच्छाया (छायायुक्त, रानीके पक्षमें कान्तियुक्त), मेघोंकी पदवी (आकाश) के समान बड़े तारागुच्छों (तारगणों, रानीके पक्षमें मोतियों) से परिपूर्ण, धनुषकी शोभाके समान श्रेष्ठ वंश (बाँस, रानीके पक्षमें कुल) से उत्पन्न और सुकविकी वाणीके समान सुन्दर वर्ण (अक्षर, रानीके पक्षमें रंग) वाली वह राजाकी रानी थी । उसके दोनों नेत्र चञ्चल थे, पर चित्त नहीं चञ्चल था; उसकी चाल धीमी थी, पर परोपकारकी प्रवृत्ति शिथिल न थी; उसके स्तन कठिन थे, पर वाणी नहीं कठोर थी; केशोंमें भंग (टेढ़ापन) था, पर सदाचारके बारेमें वह बात न थी । कहीं केवल सौभाग्य होता है, कहीं केवल रूप ही होता है, कहीं केवल विनय-गुण होता है और कहीं केवल शील होता है । किन्तु लक्ष्मणामें ये सब बातें थीं । सृष्टिमें ऐसी स्त्रियाँ प्रायः कम देख पड़ती हैं । सारे अज्ञानोंसे परे स्थित, गुणनिधि, निष्पाप अष्टम तीर्थ (परम आगम) के कर्त्ता अर्थात् तीर्थंकर जिस लक्ष्मणाके गर्भमें स्वयं आये उसके गुणोंको कौन गिन सकता है ? मनुष्य शरीर रखकर आई हुई चतुःसमुद्र मेखला पृथ्वीके तुल्य उस पञ्चेन्द्रिय भोगका सारांश-स्वरूप रानीको पाकर राजाने अपनेको सार्वभौम चक्रवर्ती माना । रानीके अधरपल्लवका रस लेनेमें लगे हुए राजाने राजलक्ष्मीकी चिन्ताको भी शिथिल कर दिया । मदनफलके समान इन्द्रियोंके विषय प्रायः स्थिर बुद्धिवाले समझदारोंको भी मोहित कर देते हैं । विषयसुखके अगाध सागरमें डूबकर राजकाजकी

देखरेख कम करदी है, यह सुनकर सब सूबे और देश स्वाधीन बन बैठे। आलस्य किसकी अवनति या तिरस्कारका कारण नहीं होता? मन्त्रीके मुखसे सामन्त राजोंकी इस बग़ावतका हाल सुनकर राजाने अपनी असावधानताकी निन्दा की। उसके बाद एक समय अनेक सामन्तोंके साथ वे दसों दिशाओंको जीतनेके लिए निकले। पहले वे पूर्व दिशामें गये। वहाँ धनुष धारण कर उन्होंने अंग देशके राजाको अपने बाणका शिकार बनाया। अंगनरेशका पुत्र भेंटमें हाथी लाकर चरणों पर गिरा। तब राजाने दयापरवश होकर उसके पिताका राज्य दे दिया। प्रचण्ड मस्त हाथियोंके दाँतोंकी चोटसे घायल भटोंके खूनसे रथोंके पहिये जिसमें लिप गये ऐसे युद्धमें महासेनने कलिंगनरेशकी स्त्रियोंके हाथ बिना चूड़ियोंके कर दिये। दोनों चरणकमलोंमे भ्रमरके समान होकर गले पर कुठार रक्खे हुए पाञ्चालनरेशको परम शूर महासेनने प्राणरहित न करके रत्न-रहित कर दिया। महान् लोग प्रणत पुरुषों पर कृपा ही करते हैं। बिजलीकी तरह चमकीले खड्ग आदि शस्त्रोंसे शोभित होकर मेघके समान सब दिशाओंको आच्छादित किये हुए उड्रदेशवासियोंको कँपाकर महासेनने चेदिनरेशको वायुके समान पराक्रमसे वृक्षकी तरह जड़से उखाड़ डाला। इस प्रकार राजा पूर्वसमुद्रकी सीमा पर पहुँचे। शत्रुरूप वृक्षोंको जड़से उखाड़ डालनेवाली राजाकी उमड़ी हुई सेना पूर्वसमुद्रके साथ पश्चिमसमुद्रके संगमकी शोभाको प्राप्त हुई। चन्द्रमाके समान श्वेत और लहरोंके उछलनेसे फटी हुई सीपियोंसे निकले हुए मोतियोंको तट पर बीनते हुए सैनिकोंको देखकर यह जान पड़ता था कि वे समुद्र-पार जाती हुई शत्रुओंकी कीर्तिको पकड़ रहे हैं। राजा महासेनके सुभट खड्गधारी शत्रुओंकी आयुके साथ कच्चे नारियलका पानी पीकर समुद्रतटके अन्तर्गत जंगलोंमें टहलने लगे। कंकोल वक्षोंके वनसे आई हुई हवा उनकी थकनको मिटाती हुई उन्हें सुखी बनाने लगी। शत्रुओंका तेजी

चुके * महासेनने सब दिशाओंमें घूमकर स्वर्गमें चढ़नेके लिए तैयार विश्रामस्थलके समान एक जयस्तम्भ समुद्रतटके पहाड़के ऊपर स्थापित कर दिया। दक्षिण दिशाकी ओर जानेको उद्यत महासेनकी सेनाके चलनेसे मार्गमें उड़ी हुई धूलने आकाशको तो श्वेत बना दिया और उसकी स्याही शत्रुओंके मुँह पर फेरदी । वहाँ पहुँचकर नंगी तरवार हाथमें लिये राजाने संग्राममें अन्ध्रदेशकी स्त्रियोंको विधवा बना दिया। राजाने अन्ध्रदेशकी स्त्रियोंके मुखमण्डलको पूर्णरूपसे चन्द्र-मण्डलके समान बना दिया। क्योंकि विलाप करनेमें कपोलों पर बिखरी हुई उनकी लटें उस समय चन्द्रमण्डलके कलङ्ककी समता कर रही थीं। जो राजाका तेज काँचके समान कान्तिहीन अन्य राजोंमें अच्छी तरह नहीं झलका था वही तेज कर्णाटदेशके नरेशके साथ युद्ध करनेमें उस तरह झलका जिस तरह सूर्यका तेज सूर्यकान्तमणिमें प्रकट होता है। सामन्त राजोंकी सेनाने जिन सरोवरोंका पानी खर्च कर डाला था उन सरोवरोंको महासेनने द्रविड़देशकी कामिनियोंके पतिवियोग-जनित आँसुओंके प्रवाहोंसे बहुत शीघ्र परिपूर्ण कर दिया । मलय पर्वत पर चन्दनके पेड़ोंमें गर्दन घिसते हुए मस्त हाथियोंकी जंजीरोंके जो घट्टे पड़ गये वे ही पृथ्वीतलको तिलक-तुल्य कीर्त्तिसे भूषित करनेवाले राजाके दक्षिणविजयकी साक्षी हो गये । पत्र-पूग (पान-सुपारी, पक्षान्तरमें वाहनसमूह) को स्वीकृत कर वेश्याके समान मलयाचलके चन्दनसे भूषित दक्षिणदिशाको भोगकर (देखकर, पक्षान्तरमें रमण-कर,) महासेनके योद्धा लोगोंने फैलती हुई केसरकी महकसे मनोहर पश्चिमदिशाकी ओर दृष्टि फेरी। हवासे हिलते हुए पताका आदि राज-चिन्ह मानों यह कहकर पश्चिम दिशाके स्वामी वरुणको हटनेकी सलाह दे रहे थे कि इन महासेन राजाने सारी दक्षिण दिशा जीतकर

* इसके पहले १६० पृष्ठकी २९ वीं लाइनमें गल्तीसे 'शत्रुओंका तेजी' छप गया है, वहाँ 'शत्रुओंको जीत' ऐसा सुधार देना चाहिए। ऐसा सुधार देने पर शुद्ध वाक्य 'शत्रुओंको जीत चुके' पढ़ा जायगा।

उसके स्वामी यमराजको भी शक्तिहीन कर दिया है तब तुम क्या चीज़ हो । लाटदेशमें वहाँकी स्त्रियोंके कठिन, बड़े और नुकीले कुचोंके मर्द-नसे पहलेहींसे जर्जर हुए तद्देशीय राजोंके हृदयस्थल पर गिरते हुए महासेनके शस्त्रोंने सहजमें ही बड़ी कीर्त्ति प्राप्त करली । शत्रु-वनको जलानेवाला राजा महासेनका प्रताप वाड़वानलसे रत्ती भर भी कम नहीं था; क्योंकि वह गंभीर,मर्यादाशाली और सत्त्वपूर्ण (सामर्थ्यशाली, पक्षान्तरमें जलचर जीवोंसे पूर्ण) सिन्धुराज (सिन्धु देशका राजा, पक्षान्तरमें समुद्र) पर भी अच्छी तरह जलता रहा । शत्रुओंको झुकानेवाले राजाने गर्वान्ध पारसी लोगोंको शीघ्र ही बलपूर्वक बेंतकी तरह झुकाकर शिक्षा दी और उनसे दण्डमें बहुतसे रत्न गुरुदक्षिणाके समान प्राप्त किये । कामदेवके समान सुन्दर राजा महासेनके कर (हाथ, श्लेषसे राजकीय ' कर ') के सम्बन्धको प्राप्त होकर पश्चिमदिशा मानों बहुत ही प्रसन्न हुई । चलते हुए घोड़ोंके खुरोंसे उठी हुई रज-रेणु उसके रोमाञ्चके समान शोभायमान हुई । पश्चिम समुद्रके तट पर पहुँचे हुए सेनाके गजोंके ऊपर क्रोध करके जलमें दौड़ते हुए जल-गजोंको मारकर राजाने अपने दिग्विजयके स्मारक चिन्हकी तरह समुद्रतटके ऊँचे पेड़ों पर बँधवा दिया । वहाँसे सेना उत्तरदिशाको चली । आकाशमें घोड़ोंके खुरोंसे उड़ी हुई धूल छागई । जान पड़ा, सेनाके बोझसे जिनके सिर दबे जा रहे हैं ऐसे रसातलके नाग धूलके मिससे ये लम्बी साँसें छोड़ रहे हैं । उत्तरदिशाको प्राप्त सूर्यका भी तेज क्रमके विना तेज़ नहीं होता । किन्तु उन राजाका प्रताप तिरस्कारकी अपेक्षा न करके तत्क्षण शत्रुओंके लिए असह्य हो उठा । पृथ्वीमण्डलके स्वामी राजा महासेनकी सेनाको, जो सब दिशाओंसे आये हुए सामन्तोंकी सेनासे बहुत बढ़ गई है, अवकाश (जगह) देते हुए उत्तर-देशने अपना अनन्त होना प्रकट कर दिया । वहाँ हथनियाँ जो चन्द्रकान्त मणिके समान उज्ज्वल जलकण अपनी सूँड़ोंसे उड़ाने लगीं वे चारों ओर आकाशमें

उड़ने लगे। जान पड़ा कि अपने स्वामी (कुबेर) की हारकी आशंका करके उत्तरदिशा रो रही है और उसके आँसू गिर रहे हैं। राजा महासेनने भोग न करनेसे बढ़े हुए उत्तरदिशाके भीलोंके धनको हर लिया, तथापि उन्हें मारनेके लिए तरवार उठाई। उन्होंने यह नहीं समझा कि धन ले लेनेसे ही उनके प्राण निकल गये हैं। बड़े कटकों (सेनाओं और पक्षान्तरमें शिखरों) से शोभित काश्मीर देशके भूमिभृत् (राजा, पक्षान्तरमें पहाड़) लोगोंके ऊपर वज्रके समान गिरकर राजा महासेनने कीर-देशकी नई जवानीसे चूर स्त्रियोंकी शरीर शोभाको (उनके पतियोंको मारकर) शोचनीय बना दिया। कबूतरोंके रंगके समान धूसर जो राजा महासेनकी सेनाके चलनेसे उठी हुई धूल आकाशमें चारों ओर छागई वही डरसे जिनके पक्ष (सहायक, पक्षान्तरमें पंख) काँप रहे हैं उन मच्छड़ ऐसे खश लोगोंको धुएँके समान जान पड़ी। मच्छड़ धुएँसे भाग जाते हैं। कस्तूरी-मृगोंसे सुगन्धित और बहते हुए झरनोंसे सुशोभित हिमाचल पर जाकर राजाकी सेनाने डेरा डाल दिया। वहाँ स्वर्गीय वीणा हाथमें लिये किन्नर आदि राजाके चन्द्रसदृश उज्ज्वल यशकी गाथायें गा रहे थे। उसे राजाने सुना। इस प्रकार अद्वितीय पराक्रमी राजा सन्तुष्ट स्त्री सरीखी दिशाओंको संक्षेपमें कर-कलित (हाथमें, पक्षान्तरमें 'कर'-युक्त) करके अपनी पुरीको लौट आये। पुरवासी लोग सन्तुष्ट होकर अनेक प्रकारके उत्सव करने लगे। वस्त्रोंके जोड़े आदि पुरस्कार यथायोग्य देकर महासेनने सब राजोंको विदा कर दिया। उसके बाद वे लक्ष्मणाके मुख-कमलको निहारते हुए बहुत दिनों तक साम्राज्य-शासन करते रहे।

इधर देवेन्द्रकी प्रेरणासे प्रसन्नचित्त कुबेरने जिन (चन्द्रप्रभ) के अवतारके पहले ही नित्य छह महीने तक राजा महासेनके यहाँ साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा की। इन्द्रकी आज्ञासे आठों दिक्कुमारियोंने राजाके

अन्तःपुरमें जाकर विनम्र होकर लक्ष्मणारानीको अपने आनेका अभिप्राय बतलाया और गर्भशोधन आदि अपना कृत्य किया। महलके ऊपर ऊँचे पलँग पर सोई हुई मनोहर अंगवाली देवी लक्ष्मणाने पिछली रातको जिन-जन्मका अनुमान करानेवाले चिन्ह ऐसे ये स्वप्न देखे। उन्होंने पर्वतराजके समान ऊँचा और श्वेत इन्द्रका हाथी ऐरावत, गर्वके मारे गरजता हुआ बैल, हाथियोंके समूहको भगाते हुए गज-राज और हाथमें लीला-कमल लिए हुए लक्ष्मीको देखा। भौंरे आसपास जिनके मँडरा रहे हैं ऐसी दो मालायें, शीतल घनी चाँदनीसे युक्त पूर्णिमाके चन्द्र, अपने प्रकाशसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुए सूर्य और परस्पर प्रीतिके साथ कलोल करते हुए मछलीके जोड़ेको देखा। कमलपुष्पसे ढके हुए दो जलपूर्ण मंगल-कलश, श्वेतकमलोंसे सुशोभित जलवाला सरोवर, लहरोंसे आकाशको चूमते हुए समुद्र और सिंह जिसको अपनी पीठ पर लिये हुए हैं ऐसा पहाड़ इतना ऊँचा सिंहासन देखा। देवतोंसे युक्त दिव्य विमान, नागकन्याओंसे मनोहर नागलोक, चमकीली रत्न-राशि और निर्धूम उज्ज्वल अग्नि देखी। भारी कल्याणकी सूचना देने-वाले इन स्वप्नोंको सवेरे जाकर प्रीतिपूर्ण दृष्टिवाली लक्ष्मणा देवीने राजासे कहा। राजाने भी उनको इन स्वप्नोंका फल (जिनदेवका जन्म) बतलाकर उन्हें प्रसन्न किया। राजाने कहा—हे कल्याणमुखी, हाथी देखनेका फल यह है कि तुम्हारे त्रिभुवनश्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। स्वप्नमें देखा हुआ बैल बतलाता है कि वह गंभीर होगा। सिंह बतलाता है कि उसका पराक्रम सिंहका ऐसा महान् और अलंघ्य होगा। लक्ष्मी बतलाती है कि उसका अभिषेक बड़े बड़े देवता आकर करेंगे। दो मालाओंका फल यह है कि उसकी कीर्त्ति अनन्त होगी। चन्द्रमाका फल यह है कि वह प्रजाको प्रसन्न रक्खेगा। सूर्यका फल यह है कि वह मोहान्धकारको दूर करेगा। मछलियोंका फल यह है कि वह सब

शोकोंसे शून्य होगा। कलश देखनेका फल यह है कि उसका शरीर सम्पूर्णांग और हल-पद्म-यव-वज्र आदि अच्छे लक्षणोंसे युक्त होगा। सरोवरका फल यह है कि वह वासनारूपी अग्निको बुझानेवाला होगा। समुद्रका फल यह है कि वह केवलज्ञान (पञ्चम ज्ञान) को प्राप्त होगा। सिंहासनका फल यह है कि वह सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त होगा। हे देवि, देवतोंके विमानोंने यह सूचना दी है कि वह स्वर्गसे आवेगा। नागभवन देखनेका फल यह है कि वह धर्मतीर्थ (परम आगम) का कर्त्ता अर्थात् तीर्थंकर होगा। रत्नराशिका फल यह है कि वह सब गुणोंकी लीला-भूमि होगा। अग्निका फल यह है कि वह क्रूर कर्म-वनको जलावेगा। अपने प्राणनाथके मुखसे सारे स्वप्नोंका फल इस तरह सुनकर रानीको अनिर्वचनीय सन्तोष प्राप्त हुआ और दूसरी कञ्चुकीके समान उनके शरीरमें रोमाञ्च छागया। अभिलषित (इष्ट) वस्तुकी प्राप्तिसे किसे सन्तोष नहीं होता?

इधर अपनी आयु पूर्ण होने पर अनुत्तर-वैजयन्त स्वर्गसे उतर-कर शुभ दिनमें अहमिन्द्रने, सीपीमें स्वातीके जलबिन्दुकी तरह, लक्ष्मणा देवीके गर्भमें प्रवेश किया। त्रिभुवनको क्षुब्ध करनेवाले शुभकर्मोंसे युक्त अहमिन्द्र जब गर्भमें गये तब असुरगणसहित देव-गण संभ्रमपूर्वक राजा महासेनके घर आये। इसके बाद उन्होंने गर्भकल्याणकी क्रिया और जिन-जननीके चरणोंकी पूजा करके दुन्दुभी बजाकर वेणु-वीणा आदि बजाते और नाचते हुए अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया। परम प्रसन्नतासे कान्ति, लज्जा आदि अपने श्रेष्ठ गुणोंको रानीके शरीरमे फैलाती हुई श्री, ह्री, धृति आदि देवियाँ सदा उनकी सेवामें उपस्थित रहती थीं। अभ्युदयशालिनी कमलमुखी रानी स्वयं देखती थीं कि नित्य देवगण रत्नोंकी वर्षा करते हैं। इस गर्भके प्रभावसे रानीके नौ महीने सुखसे बीत गये।

इति षोडशः सर्गः।

सप्तदश सर्ग।

गर्भधारणके उपरान्त जिनेश्वरको देखनेकी इच्छासी रखनेवाले प्रसवके समयकी प्रेरणासे लक्ष्मणा देवीने पौषकृष्ण (दशमीके क्षय हो जानेसे) एकादशीके दिन सुन्दर पुत्र पैदा किया। उस बालक (जिन) के जन्मके समय दिशायें और सारा आकाश निर्मल होगया। दिशारूपिणी अंगनाओंको सुवासित करती हुई हवा चलने लगी। भौंरे जिनपर मण्डल बाँधे हुए हैं ऐसे अत्यन्त हृष्ट-हृदय देवतोंके वरसाये दिव्य पुष्प आकाशसे पृथ्वीमण्डल पर गिरने लगे। कल्पवासी देवतोंकी सभामें मणियोंकी वनी घंटियाँ विना वजाये वज उठीं। ज्योतिष्क देवोंके निवासस्थानमें सहसा ऊँचे स्वरसे सिंहनाद होने लगे। भवनवासी देवतोंके भवनोंमें मेघगर्जन सदृश गंभीर शंखध्वनि होने लगी। व्यन्तर देवोंके घरोंमें प्रतिध्वनिपूर्ण डंके वजने लगे। इन कारणोंसे एक साथ ही जिनके सिंहासन कम्पित हो उठे हैं ऐसे सव देवतागण जिनेन्द्रके जन्मकी सूचना पाकर अपने अपने स्थानसे चले। उनके विमानोंसे आकाश परिपूर्ण होगया। इधर उधर आते जाते देवोंके किरीटोंकी किरणोंसे अनुरंजित दिशायें भी विभूषण (शोभा, पक्षान्तरमें आभूषण) को प्राप्त हुई। जिन भगवान्‌के जन्मसे किसकी वढ़ती नहीं होती? इस समय तो जिनदेव ही जन्म लेकर जगत् भरको प्रकाशित कर रहे हैं, अव मेरा क्या काम है?, यही सोचकर मानों सूर्यदेव लज्जाके मारे देवतोंके विमानोंकी आड़में छिप गये। स्वर्गसे राजाके घर तक लगी हुई देवोंकी श्रेणीको देखकर यह जान पड़ता था, मानों स्वर्ग और पृथ्वीके अन्तरको नापनेके लिये यह नाप डोरी लटकाई है। विविध मणि-रत्नोंसे पूर्ण, सारी पृथ्वीको व्याप्त किये समुद्रकी तरह इन्द्रसहित चारों प्रकारके देवगण द्वारा राजाका सारा महल भर गया।

इसके बाद बड़ी भक्तिसे भावित शची देवी मायासे उसी आकारका वैसा ही सद्योजनित बालक लक्ष्मणाके पास रखकर जिनेन्द्रको उठा लेगई। इन्द्राणीके लाये हुए सूर्यसदृश जिनबालकको देखकर इन्द्रके हजारों नेत्र एकसाथ कमलवनकी तरह खिल उठे । सुरगणकी की हुई जय-जय-ध्वनि त्रिभुवनमें फैल गई । प्रथम स्वर्गके इन्द्रने उन्हें अपनी गोदमें लेकर ऐरावत हाथी पर चढ़ाया। महती भक्तिके भारसे झुके हुए हैं मुकुटोंके अग्रभाग जिनके ऐसे कुछ देवगण उनको प्रणाम कर रहे थे और कुछ देव-गण छत्र, कलश, दर्पण, चामर आदि लिये सेवामें उपस्थित थे। हथनियों पर चढ़ी हुई देवियाँ हाथोंमें धूप, भेंट, फूल आदि लिये मंगल गाती हुई आगे आगे चलीं। देवेन्द्र-समूहसे घिरकर जब जिनदेव मेरुकी ओर चले तब चारों ओर देवोंने यात्राकी सूचना देनेवाले नगाढ़े बजाये । अत्यन्त ललित गाने बजानेवाले देवगण बहुत ही सुन्दर नृत्य कर रहे थे। मानों उनके आगमनका समय देखकर सब दिशाओं सहित आकाश ही हर्षके मारे नाचने लगा। अलौकिक जिनदेवके रूपको विस्मयके साथ देखते हुए देवगणको यह न मालूम हुआ कि कब उन्होंने महामेरुका मार्ग समाप्त किया।

अनेक बड़े बड़े चैत्यमन्दिरोंसे विभूषित महामेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करनेके बाद सब देवोंने पाण्डुशिलामें सिंहासन पर जिनदेवको सुखपूर्वक बिठलाया। इन्द्रोंने क्षीरसागर तक देवोंकी श्रेणी लगवाकर निर्मल कलशोंमें दुग्ध मँगाया और उससे जिन भगवान्‌का अभिषेक किया। ललित नृत्य और मधुर शब्दवाले गानेबजानेके साथ उनका अभिषेक करके इन्द्रोंने हीरेकी पैनी सुईसे उनके दोनों कान छेद दिये। त्रिभुवनके एकमात्र अलंकार जिनदेवको देवोंने मणिमय कुण्डल, अंगद, किरीट, कटक, काञ्ची आदि आभूषणों तथा दिव्य पुष्पों और वस्त्रोंसे अलंकृत किया। इस प्रकार उत्सव पूजन कर चुकने पर इन्द्रोंने “ये भगवान चन्द्रमाके समान कान्ति धारण करने-

वाले हैं " इस भावको व्यक्त करनेवाला एक इशारा करके जिन भगवान्को चन्द्रप्रभ नामसे पुकारा। अन्य इन्द्रों सहित सौधर्म नामक प्रथम कल्पपति इन्द्रने स्वाभाविक त्रिविध ज्ञानसे सम्पन्न जिन भगवान्को हाथ जोड़कर इस प्रकार उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया—मैं सब ज्ञानोंसे युक्त, निर्मल, अनुपम, अचिन्त्य वैभवसे सम्पन्न, जन्मरहित, जरा-मरण-हीन, मत्सरहीन अष्टम जिन चन्द्रप्रभको प्रणाम करता हूँ। ईश, मुझमें आपकी स्तुति करनेकी शक्ति नहीं है, तथापि मैं अपने हितकी कामनासे आपकी स्तुति करता हूँ। काम करनेवाले लोग यह विचार नहीं करते कि यह हो सकेगा और यह न हो सकेगा। सिंहासन पर विराजमान और मनोहर कान्तिवाला यह आपका जनमनोहर शरीर उदयाचल पर स्थित चन्द्र मण्डलके समान शोभायमान है। हे जिनदेव, आप सब जगत्के जीवोंसे दयाका व्यवहार करनेवाले हैं। जो कोई आपके मार्गका आश्रय लेता है उसे फिर भव-भय नहीं रहता। जो जहाज़ पर सवार है वह समुद्रमें नहीं डूबता। हे नाथ, अचल भक्तिसे जो कोई आपके चरणोंकी सेवा करता है उसका यमराज क्या कर सकते हैं। जो आग ताप रहा है उसका जाड़ा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हे जगत्के स्वामी, जगत्को जरा-मरण-रहित करनेवाला तुम्हारा दर्शन अभव्य पुरुषको छोड़कर, रसायनकी तरह, और किस पण्डितको नहीं रुचता? हे जिनेन्द्र, हे निष्पाप, आप आश्रित पुरुषको उसके न चाहने पर भी आनन्द देते हैं। यह आपकी स्वाभाविक शक्ति है। श्रमको हर लेना चन्दनका स्वभाव ही होता है। हे जिन, नित्य जिसके हृदयसरोवरमें आपके चरणकमल शोभाको प्राप्त हैं वह पुरुष जगत्में पुण्यात्मा है और मेरी समझमें उसका जन्म भी सफल है। हे देवपूज्य, जो नित्य हृदयमें तुम्हारे नामको जपा करता है उसे, मन्त्र कुशलको दुष्टग्रहोंके समान, आपत्तियाँ नहीं पीड़ा पहुँचता सकतीं। वह लोगोंको सुमति देता है, पापको हरता है, सब

संपत्तियाँ प्राप्त कराता है। हे स्वामिन्, आपके चरणकमलकी सेवा क्या नहीं करती? हे ईश, सब आदमी ऐसे नहीं होते कि सब स्वार्थोंको छोड़कर परोपकारमें प्रसन्नता प्राप्त करें। निरपेक्ष होकर संसारका उपकार करनेकी यह आपकी प्रवृत्ति सचमुच ही अब तक और किसीमें नहीं पाई गई। हे जिनेन्द्र, इन्द्रगण आकर अभिषेक करते हैं, इन्द्राणी देवी दासीकी तरह शृंगार करती हैं, देवगण क्षीरसमुद्रसे अभिषेकके लिए जल लाते हैं। और किसकी ऐसी महिमा है? हे जिन, पशु-पक्षी भी आपके निकट आकर भक्तियुक्त हो जाते हैं। मनुष्य होकर भी जो आपका भक्त नहीं वह पशुओंसे भी बढ़कर पशु (मूढ़) है। हे जन्मरहित, इस संसारी जीवका मन जब तक आपमें नहीं लगता तभी तक वह भय, रोग, दुःख, मरण आदि वेदनाओंको जन्मजन्मान्तरमें पाता है। हे जिनेन्द्र, 'नमः' ये दो अक्षर भी आपके उद्देशसे कहने पर सब पाप मिट जाता है। और तो सब वाग्मी लोगोंका वाग्वैभवमात्र है। हे जगदीश, यही निश्चय करके मैं आपकी अधिक स्तुति नहीं करता कि केवल प्रणामसे ही मुझे सब फल मिल जायँगे। हे जिनेन्द्र, इस कारण मैं आपको प्रणाम करता हूँ। भारी भक्तिके भारसे सिर झुकाये हुए पुरन्दर इस प्रकार स्तुति करके नाचते हुए देवगण सहित उत्सव मनाते चन्द्रप्रभ प्रभुको चन्द्रपुरी लेगये। चन्द्रपुरीमें फिर प्रसन्नहृदय देवोंने महान् उत्सव मनाया। उसके बाद माता पिताको वह जिनबालक सौंपकर वे अपने अपने लोकको चल दिये।

इन्द्रने जिनमें अमृत स्थापित कर दिया है ऐसी अपनी हाथकी उँगलियोंको प्रसन्नतासे प्रफुल्लितमुख वह बालक चाटता था। उसे माताके स्तनकी भी उतनी पर्वा नहीं थी। अपनी कान्तिसे बिल्लौरकी चमकको फीकी करनेवाले जिनेन्द्र प्रतिपदाके चन्द्रमाके समान सब लोगोंके नेत्रोंको आनन्द देते हुए नित्य वृद्धिको प्राप्त होने लगे। देवकुमारसमूह आकर उनके साथ

पुरवासियोंके चित्तको प्रसन्न करनेवाले कर-कन्दुक आदि खेल खेलते थे। शिशुकी चञ्चलता अट्ठासी ग्रहोंकी गतिके समान स्वभावसे ही अभिव्यक्त है। इसीसे परिपक्वबुद्धि बोधसम्पन्न जिनेन्द्रने भी अन्य बालकोंकी तरह क्रीड़ा की। सेवक लोगोंके हाथोंकी उँगली पकड़े धीरे धीरे पैर रखकर रत्नमय फ़र्शों पर टहलते हुए प्रकाशपूर्ण जिनेन्द्रकी शोभा दर्शनीय ही होती थी। जान पड़ता था कि सरोवरमें राजहंस जा रहा है। कान्तिसे मनोहर शरीरवाले उन बालकको एकके हाथसे एक लेलेता था। इस प्रकार वे राजाके मित्रोंके हाथमें शोभा पाते थे जैसे जिसका मूल्य न आँका गया हो वह समुद्रसे निकला महामूल्य मणि जौहरियोंके हाथमें इधरसे उधर फिर रहा हो। इन्द्रके कहनेसे कुबेरने लड़कोंके लायक मणिमय मुद्रिका, कटक, हार, वस्त्र, काञ्ची आदि सब आभूषण जिनेन्द्रके लिए भेज दिये। कुछ दिनों बाद कुमार अवस्थामें जलकेलि, हाथी घोड़े आदिकी सवारी आदि कामोंमें जिनेन्द्रने कुछ समय विताया। हर एक काममें अपनी बढ़ी चढ़ी योग्यतासे उन्होंने सबको नीचा कर दिया। इसके बाद सब राजोंके साथ राजा महासेनने विवाहके उपरान्त सिंहासन पर बैठे हुए चन्द्रप्रभ प्रभुका राज्याभिषेक किया।

इसके बाद माननीय आज्ञावाले पिताके अनुरोधसे चन्द्रप्रभ भगवान् राज्यशासन करने लगे। मुक्तिसुखमें ही मन लगाये हुए चन्द्रप्रभको तो कोई विषयभोगकी अभिलाषा थी ही नहीं। अतुल तेजवाले चन्द्रप्रभ राजा जब चतुःसमुद्रमेखला पृथ्वीका पालन करने लगे तब प्रजा बहुत ही प्रसन्न हुई। ऐसे लोगोंका अभ्युदय लोगोंके ऐश्वर्यका ही कारण होता है। उनके राज्यकालमें कोई भी प्राणी अकालमृत्युसे नहीं मरा और अनावृष्टि या अतिवृष्टिने लोगोंको व्याकुल नहीं किया। कानोंके पर्दे फाड़नेवाले कठोर शब्दसे दारुण हवा नहीं चली, रोगोंकी वृद्धि नहीं हुई, अधिक ज़ाड़ा या अधिक गर्मी नहीं पड़ी। सारे जनपदको कभी ईति (टीड़ी, मूसे,

अवृष्टि आदि) की बाधा नहीं हुई । पुरमें क्रूर हिंस पशुओंने भी हिंसा-वृत्ति छोड़दी । अन्य राष्ट्रोंके राजा लोग भेंट लेकर उनकी सेवामें उपस्थित हुए । द्वारपालोंके द्वारा अपने अपने नाम और कुल कहला कर फिर भीतर जाकर, उन्होंने पृथ्वीतल पर सिर रखकर प्रणाम किया । देवता भी जिनकी बुद्धिकी बड़ाई करते हैं उन जिनेन्द्रने दिन और रातके आठ भाग करके हरएक कामका समय नियत कर दिया । इस प्रकार यथोचित कामोंके द्वारा उन्होंने संसारी जीवोंको शास्त्रका मार्ग दिखलाया। हज़ारों राजोंके बीचमें बैठे हुए चन्द्रप्रभकी सभामें इन्द्रकी आज्ञासे नित्य अप्सरायें आकर ललित नृत्य करती और गाती बजाती थीं । कमलप्रभा आदि अपनी दिव्य स्त्रियोंके बीच वे जगत्के एकमात्र स्वामी जिनेन्द्र इस तरह अपनी इच्छाके अनुसार चिरकाल तक विषय-सुखको भोगते रहे । एक दिन एक बहुत ही बूढ़ा आदमी लठिया टेकता हुआ धीरे धीरे सभामें आया और इस प्रकार हाथ उठाकर आर्त्त-नाद करने लगा । उसने कहा—"हे देववृन्दके वन्दनीय, हे दयार्द्रहृदय, हे शरणागतवत्सल, हे सब जगत्के रक्षक, हे निर्भय, मैं दीन और सात भयोंसे डरा हुआ हूँ । मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो । हे जगदीश, ज्योतिषीने मुझसे कहा है कि आज रातको अप्रतिहतगति मृत्यु आकर आपके सामने ही मुझे इस लोकसे ले जायगा । हे जिनेन्द्र, अगर उससे आप मेरी रक्षा न कर सके तो आप वृथा ही अन्तकके भी अन्तक कह-लाते हैं"। इस प्रकार कहकर वह पुरुष सबके सामने ही अन्तर्द्धान होगया । सभ्य लोग कहने लगे कि देव, बतलाइए यह कौन था? तब अवधि-ज्ञानसे सब जगत्को देखे हुए जिन भगवान् हँसते हुए इस सम्बन्धमें यों कहने लगे—इन्द्रकी आज्ञासे मुझे विषयोंके प्रति विरक्त करनेके लिए यह धर्मरुचि नामका देवता विकृत बूढ़ेका रूप धारण करके स्वर्गसे आया था । अचिन्त्य है चेष्टा जिनकी वे जिनेन्द्र विस्मित सभ्योंसे यह कहकर और

भोगोंसे हृदयको विरक्त करके इस प्रकार संसारकी स्थिति पर विचार करने लगे-शरीर धारियोंका धन और जवानी आदि सब सामान पूर्वजन्मके किये पुण्योंका क्षय हो जाने पर क्षणभर भी नहीं ठहरता। शत्रुओंके समान विविध प्रकारके सन्तापोंके कारण जो इन्द्रियोंके विषय हैं उनमें सम्यग्ज्ञानसे रहित वैराग्यहीन पुरुष ही आसक्त होते हैं, ज्ञानी पुरुष नहीं। यह शरीरधारी जीव विविध योनियोंमें तरह तरहके शरीर धारणकर इन्द्रियसुखके लेशमें लुभाकर नटकी तरह विड़म्बनाको प्राप्त होता है। इस संसारमें तरह तरहके शरीरोंको स्वीकार करते और त्यागतेमें जिन शुभाशुभ कर्मोंने मुझे विड़म्बना दी है उन कर्मोंको अब मैं तप करके निर्मूल करदूँगा। इस प्रकार वैराग्यचिन्ता करते हुए जिनेन्द्रके पास सभामें लोकान्तिक देवता आये और इस प्रकार कहकर उनका अभिनन्दन करने लगे कि हे जिनेन्द्र, आपने यह सबके हितकी बात सोची। साधु साधु। इसके बाद देवगण सहित आये इन्द्रने विमला नामकी पालकी पर जिनेन्द्रको बिठलाया और बड़े आनन्दके साथ गाते बजाते हुए वह उन्हें सकलर्तुक नामके उद्यानमें लेगया। वहाँ भगवान्ने निर्मल चरित्रवाले वरचन्द्र नामक अपने पुत्रको राज्य देकर और सिद्ध भगवान्की स्तुति करके एक हज़ार राजोंके साथ छह अन्तरङ्ग और छह बाह्य इस प्रकार बारह भेद युक्त तप करना शुरू किया। उस समय दृढ़ पाँच मुट्ठियोंसे उखाड़े हुए चन्द्रप्रभके केशोंको इन्द्रने भक्तिभावसे मणिमय पात्रमें रखकर क्षीरसमुद्रके जलमें प्रवाहित कर दिया। इस प्रकार परिनिष्क्रमण कल्याणके उत्सवमें सुन्दर बाजोंके शब्दोंसे पृथ्वीमण्डलको व्याप्त करके सब देवगण जहाँसे आये थे वहाँ चले गये।

इसके बाद चन्द्रप्रभ मुनि नलिनपुरके राजा सोमदत्तके यहाँ पारणा करने गये। भगवान्का निरन्तराय आहार होनेसे राजाके महल पर पचाँ

आश्चर्य (रत्न, फूल और गन्धोदककी आकाशसे वर्षा, सुगन्धित मन्द पवन चलना और देवतोंके नगाड़े वजना) हुए। तपस्वियोंके योग्य स्थानोंमें विहार करते हुए चतुरवुद्धि चन्द्रप्रभने वृद्धिको प्राप्त प्रशम आदि गुणोंसे चारों कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) को नष्ट कर दिया। धैर्यका कवच धारण किये हुए चन्द्रप्रभको भूख, प्यास, पृथ्वीशयन आदि परीषह उसी तरह पीड़ा नहीं पहुँचा सके, जैसे युद्धमें कवचधारी पुरुषका शत्रु-लोग कुछ नहीं कर सकते। अन्यान्य मुनिजन परमागमगत तत्त्वों (जीवादि पदार्थों) के सम्बन्धमें होनेवाले संशयको दूर करनेके लिए नित्य उनकी सेवामें आने लगे। इस प्रकार भारी तपसे कर्मोंकी प्रकृतियोंको क्षीण करते हुए चन्द्रप्रभ भगवान् फिर उसी सकलर्तुवनमें आये जहाँ उन्होंने दीक्षा ली थी। वहाँ मुनियोंके साथ जाकर नागवृक्षके नीचे अतुल शुक्लध्यान-द्वारा घाती-कर्म-रूपी शत्रुओंको नष्ट कर चन्द्रप्रभ भगवान्ने केवल-ज्ञान प्राप्त किया। उस समय परिजन देवगणसहित कुवेरने इन्द्रकी आज्ञासे जाकर चन्द्रप्रभ प्रभुका समवशरण (सभाविशेष) वनाया। आचार्योंने इसका प्रमाण कहा है कि प्रथम तीर्थंकर श्रीआदिनाथ भगवान्के समवसरणका प्रमाण वारह योजन था। उनके वाद होनेवाले तीर्थंकरोंके समवसरणका प्रमाण आधा आधा योजन घटता गया। इस तरहसे इन आठवें तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रभ भगवान्के समव-सरणका प्रमाण साढ़े आठ योजन परिमित था। उस सभापण्डपके चारों ओर गोलाकार पञ्चवर्ण मणिचूर्णकी चहारदीवारी घेरी गई। उस घेरेके भीतर चारों दिशाओंमें चार ऊँचे मानस्तम्भ खड़े किये गये। उन मानस्तम्भोंके वाद चारों ओर विकसित कमल-पुष्पोंसे सुशोभित जलसे परिपूर्ण चार सरोवर वने। उन सरोवरोंके वाद विविध पुष्पोंसे व्याप्त जलसे भरी खाई वनी। उसके वाद अनेक पुष्पोंसे परिपूर्ण फूल-वाग (पुष्पवाटिका) वना। उस फूल-वागके भीतर चार फाटकोंसे युक्त

प्रथम प्राकार बना। हरएक द्वारके दोनों ओर दो दो सुशोभित नाट्यशालायें बनीं। उनके बाद देवतोंके बनाये चार उपवन शोभित हुए। उन उपवनोंमें मनोहर प्रतिमाओंसे शोभित चार चैत्यवृक्ष, मणिमय किनारेवाले तीन सरोवर, फुहारों तथा भ्रमरमण्डित कुञ्जोंसे शोभायमान बहुतसे सभामण्डप और कई क्रीड़ाशैल बने हुए थे। उन उपवनोंके बाद मणिमय चार तोरणोंसे सुसज्जित वेदी बनी थी। उस वेदीके अग्रभागमें हाथी, शेर, बैल आदि विविध चिन्होंसे युक्त पताकायें फहरा रहीं थीं। उसके बाद मणिनिर्मित चार दरवाज़ेवाला सोनेका प्राकार था। उसके दूसरे विभागमें रम्य कल्पवृक्षोंका उपवन था। उसके बाद फिर चार फाटकोंसे युक्त हीरेकी वेदी थी। उसमें चारों ओर दस दस बन्दनवार बँधे हुए थे। उनके बीचमें जिन-प्रतिमा सहित नौ नौ स्तूप शोभायमान थे। वहीं ऊँचे शिखरोंवाले मुनियोंके सभाभवन बने हुए थे। उन स्तूपोंके आगे उज्वल स्फटिकमणिका प्राकार बना हुआ था। उस प्राकारके बाद जिसकी कान्ति चारों ओर फैल रही है ऐसे बारह कोठे बने थे। उनके बाद बीचमें सुन्दर गंधकुटी बनी हुई थी। उस गन्धकुटीमें चमकीली महामूल्य मणियोंसे अलंकृत सिंहासन बना हुआ था। प्रकाशपूर्ण रत्नोंकी किरणोंसे अनुरञ्जित उस सिंहासनके ऊपर प्रातिहार्योंने जिनके शरीरको अलंकृत किया है वे अनन्तदर्शन अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यके धारक जिनेन्द्र भगवान् तत्त्वोपदेश करनेके लिए सामने मुख करके विराजे। उन बारह कोठोंमें योगियों सहित दत्त आदि गणाधिप, सुसज्जित प्रथम स्वर्गकी देवाङ्गना, ज्योतिष्क व्यन्तर और भवनवासी देवोंकी स्त्रियाँ बैठीं और उनके बाद भवनवासी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिष्क देव, और कल्पवासी देव तथा अपना अभ्युदय चाहनेवाले मनुष्य और सिंह आदि पशु जिनेन्द्रको घेरकर बैठे।

इति सप्तदशः सर्गः।

अष्टादश सर्ग ।

इसके बाद जगद्गुरु जिनेन्द्रने सब भाषाओंमें व्यक्त होनेवाली दिव्य-ध्वनिसे गणधर देवके प्रश्नानुसार यों तत्त्व-वर्णन करना शुरू किया—जिनशासनमें जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये सात तत्त्व हैं। पुण्य और पाप, ये दोनों बन्ध तत्त्वहीके अन्तर्गत होनेके कारण अलग नहीं कहे गये। उनको अलग माननेके पक्षमें नौ पदार्थ होंगे।

चेतना ही जिसका लक्षण है वह जीव अपने शुभाशुभ कर्मोंका कर्ता और भोग करनेवाला भी है। वह शरीरके बराबर है। स्थिति, उत्पत्ति और नाश, ये तीनों उसके रूप (अवस्थायें) हैं। वह जीव भव्य और अभव्यके भेदसे दो प्रकारका है। नरकादि गतियोंसे उसके चार भेद होते हैं। नरकके जीव पृथ्वीके भेदसे सात प्रकारके हैं। अधोलोकमें सात पृथ्वियाँ हैं। यथा—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा। ये उन भूमियोंके नाम हैं। पहली पृथ्वीमें जो नारकी जीव रहते हैं उनके शरीर सात धनुष (एक धनुष चार हाथका होता है), तीन हाथ और छह अंगुल ऊँचे हैं। इसी प्रकार द्वितीय आदि पृथ्वियोंमें रहनेवाले जीवोंके शरीर, पाँचसौ धनुषपर्यन्त, उत्तरोत्तर दूने दूने हैं। उन भूमियोंके जीवोंकी आयु क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तेंतीस सागर-परिमित है। प्रथम भूमिमें दस हज़ार वर्षकी जघन्य आयु है। ऐसे ही द्वितीय, तृतीय आदि भूमियोंकी आयुके बारेमें यह क्रम समझना चाहिए कि जो पहली भूमिकी उत्तम आयु है वह द्वितीय भूमिमें जघन्य आयु है। ऐसे ही और भूमियोंके बारेमें समझो। प्रथम भूमिमें तीस लाख दूसरी भूमिमें पचीस लाख, तीसरी भूमिमें पन्द्रह लाख, चौथी भूमिमें

दस लाख, पाँचवीं भूमिमें तीन लाख, छठी भूमिमें पाँच कम एक लाख और सातवीं भूमिमें केवल पाँच नरक हैं। बहुत आरंभ, बहुत परिग्रह, हिंसा आदिके पापोंसे परवश जीव इन नरकोंमें औपपादिक जन्म ग्रहण कर क्षेत्रजनित दुःखको भोगते हैं। यह नरकके जीवोंका भेद कहा गया।

अब तिर्यक्योनिके जीवोंका भेद वर्णन किया जाता है। त्रस और स्थावर इन भेदोंसे तिर्यक् जीव दो प्रकारके हैं। त्रस-संज्ञक जीव दो इन्द्रियोंसे लेकर पाँच इन्द्रियों तक हैं। शरीर भेदसे स्थावर पाँच प्रकारके होते हैं। यथा—पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय। इन सबके एक ही इन्द्रिय होती हैं। पञ्चेन्द्रिय जीवके शरीरकी उत्कृष्ट ऊँचाई एक हजार योजन है। यही बात एक इन्द्रियवाले जीवके लिए भी समझनी चाहिए। शास्त्रानुसार दो इन्द्रियवाले जीवोंका उत्कृष्ट शरीरमान बारह योजन है। तीन इन्द्रियवाले जीवोंका तीन कोस और चार इन्द्रियवाले जीवोंका एक योजन है। स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, ये पाँच इन्द्रियाँ हैं। दो इन्द्रियसे लेकर पाँच इन्द्रिय तकके जीवोंमें इन्हीमेंसे, इसी क्रमसे, एक एक इन्द्रिय अधिक समझनी चाहिए। जैन-शास्त्रोंमें पृथ्वीकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्षकी कही गई है। जलकायिक जीवोंकी सात हज़ार वर्षकी, वायुकायिक जीवोंकी तीन हज़ार वर्षकी, तेजकायिक जीवोंकी तीन दिनकी, और वनस्पतिकायिक जीवोंकी दस दिनकी उत्कृष्ट आयु कही गई है। दो इन्द्रियवाले जीवोंकी बारह वर्षकी, तीन इन्द्रियवाले जीवोंकी उनचास दिनकी, चार इन्द्रियवाले जीवोंकी छह महीनेकी और पाँच इन्द्रियवाले जीवोंकी एक कोटि-पूर्व वर्षकी परमायु है। यह तिर्यक् गतिके भेदका क्रम दिखलाया गया

अब कुछ नर-गतिके भेद कहे जाते हैं। भोगभूमि और कर्मभूमिके भेदसे मनुष्य दो प्रकारके होते हैं। देवकुरु और उत्तरकुरु आदि

भेदोंसे भोगभूमियाँ तीस हैं। उत्तम, मध्यम और जघन्य भेदसे वे भूमियाँ त्रिविध हैं। उत्तम भोगभूमियोंमें मनुष्योंकी ऊँचाई छह हज़ार धनुष और जघन्य भोगभूमियोंमें दो हज़ार धनुष है। उत्तम भोगभूमिके लोगोंकी तीन पल्य, मध्यम भोगभूमिके लोगोंकी दो पल्य और जघन्य भोग-भूमिके लोगोंकी एक पल्य आयु है। इन भोगभूमियोंमें वहाँके मनुष्य पात्रदानके प्रभावसे मद्यांग आदि भेदोंसे युक्त दस कल्पवृक्षके भोगोंको भोगते हैं। कर्मभूमिके मनुष्य आर्य और म्लेच्छ, ऐसे दो प्रकारके हैं। भरतभूमि आदि पन्द्रह कर्मभूमियाँ हैं। कर्मभूमि निवासियोंकी उत्कृष्ट ऊँचाई पाँचसौ पचीस धनुष है। कर्मभूमिके मनुष्योंकी आयु पूर्व-कोटि-प्रमित कही गई है। भरतभूमि और ऐरावतभूमिकी तरह विदेह आदि भूमिमें वृद्धि और ह्रास नहीं है। भरत और ऐरावतमें समयभेदसे वृद्धि और ह्रास होता है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी, ये दो कालके भेद हैं। दस कोटि-सागरकी एक अवसर्पिणी होती है। यही परिमाण उत्सर्पिणीका भी है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों भेदोंसे हरएकके सुखमासुखमा, सुखमा, सुखमादुखमा, दुखमासुखमा, दुखमा और दुखमादुखमा, ये छह भेद हैं। इन कालकी कलाओंका परिमाण जिन भगवान्ने यों बताया है। यथा—पहली चार कोटि-सागरकी, दूसरी तीन कोटि-सागरकी, तीसरी दो कोटि-सागरकी, चौथी बयालीस हज़ार वर्ष कम एक कोटि-सागरकी, पाँचवीं और छठी इक्कीस इक्कीस हज़ार वर्षकी है। कर्मभूमियोंमें पाँच म्लेच्छखण्ड हैं; अतएव म्लेच्छ भी पाँच प्रकारके हैं। छह कर्मोंकि भेदसे आर्य छह प्रकारके हैं। वे गुणस्थान भेदसे चौदह प्रकारके हैं। वे गुणस्थान ये हैं—मिथ्यादृष्टि, सादनसम्यग्दृष्टि, मिश्र, असंयत-सम्यक्-दृष्टि, देशसंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म-साम्पराय, उपशान्त-कषाय, क्षीण-कषाय, सयोगकेवली और अयोग-केवली। यह नरयोनिके जीवोंका वर्णन किया गया।

अब कुछ देवयोनिका वर्णन किया जाता है। चारकायके भेदसे देव चार प्रकारके हैं। उनमें असुरकुमार अहिकुमार आदि भवनवासी देव दस प्रकारके हैं। किन्नर आदि भेदोंसे व्यन्तर देवता आठ प्रकारके हैं। सूर्य चन्द्र आदिके भेदसे ज्योतिष्क देव पाँच प्रकारके हैं। वैमानिक देवता दो प्रकारके, कल्पातीत और कल्पवासी, हैं। कल्पवासी देव सौधर्म आदि कल्पों (स्वर्गों) में रहते हैं और नौ ग्रैवेयक तथा विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि इन विमानोंमें रहनेवाले देव कल्पातीत हैं। ये सब अवधिज्ञानी हैं। देवतोंके इस चतुर्निकायमें भवनवासी देवोंमें असुरकुमारोंका शरीर पचीस धनुष ऊँचा और शेषका शरीर दस धनुष ऊँचा है। व्यन्तर और ज्योतिष्क देवता सत्रह सत्रह धनुष ऊँचे हैं। सौधर्म (प्रथम) और ईशान (द्वितीय) कल्पके देव सात हाथ ऊँचे हैं। सनत्कुमार कल्प और माहेन्द्र कल्पके देव छह छह हाथ और ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर और लान्तव, कापिष्ठ कल्पके देव पाँच पाँच हाथ ऊँचे हैं। शुक्र कल्पसे लेकर आनत कल्पके पहले तकके चार कल्पोंके देव चार हाथ ऊँचे हैं। आनत कल्प और प्राणत कल्पमें देवोंकी ऊँचाई साढ़े तीन हाथकी कही गई है। आरण कल्प और अच्युत कल्पके देव तीन हाथ ऊँचे हैं। तीन नीचेके ग्रैवेयकोंमें देव ढाई ढाई हाथ ऊँचे हैं। बीचके तीन ग्रैवेयकोंमें दो हाथ ऊँचे और ऊपरके तीन ग्रैवेयकोंमें डेढ़ हाथ ऊँचे हैं। ग्रैवेयक विमानोंके आगेके देवता हाथ हाथ भरके हैं। भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट आयु एक सागर है। व्यन्तर देवोंकी परमायु कुछ अधिक एक पल्यकी है। इन दोनों देवोंकी जघन्य आयु दस दस हज़ार वर्षकी है। ज्योतिष्क देवोंकी परमायु कुछ अधिक एक पल्य और जघन्य आयु पल्यका आठवाँ हिस्सा है। तीनों लोककी वस्तुओंको देखे हुए जिन-भगवान्ने सौधर्म और ईशान कल्पके देवोंकी परमायु दो सागर-परिमित कही है। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके देवोंकी आयु सातसागर-परिमित है। ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पके देवोंकी आयु दस सागर-परिमित

है। लान्तव और कापिष्ठ कल्पके देवोंकी परमायु चौदह सागर-परिमित और शुक्र तथा महाशुक्र कल्पके देवोंकी परमायु सोलह सागर-परिमित है। शतार और सहस्रार कल्पमें अठारह सागर-परिमित और आनत तथा प्राणत कल्पमें बीस सागर-परिमित देवोंकी परमायु कही गई है। आरण और अच्युत कल्पमें बाईस सागर-परिमित परमायु है। तेंतीस सागर तक इसी तरह आगे देवोंकी परमायुमें एक एक सागर बढ़ता जायगा। इस प्रकार गति आदिके भेदसे जीव-तत्त्वका वर्णन किया गया।

अब अजीवका कुछ निरूपण किया जाता है। जैनशास्त्रके जानकारोंने धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल, ये अजीव-तत्त्वके पाँच भेद कहे हैं। जीव-तत्त्वसहित इन्हीं पाँच द्रव्योंको छह द्रव्य भी कहते हैं। कालद्रव्यको छोड़कर इन्हीं पाँच द्रव्योंको पञ्चास्तिकाय कहते हैं। मछलियोंके चलनेके लिए जैसे जल सहायक है उस तरह जो वस्तु जीव आदि पदार्थोंकी गतिका कारण है वही धर्म द्रव्य है। वह मूर्तिरहित और लोकाकाश पर्यन्त-व्याप्त है। उसकी अवस्थिति नित्य है। वह सर्वज्ञके ज्ञान-गोचर है। पुद्गल आदि द्रव्योंकी स्थितिका कारण अधर्म भी धर्मकी तरह लोकव्यापी है। अवगाहन ही जिसका मुख्य लक्षण है वह आकाश नित्य और व्यापक है। उसीमें चराचर पदार्थ विना किसी बाधाके रहते हैं। केवलज्ञानी जिनने धर्म, अधर्म और एक जीवके असंख्यात प्रदेश कहे हैं। आकाश अनन्त-प्रदेशी है। कालका लक्षण वर्तना-परिणाम है। वह परिणमनशील पदार्थोंको परिणत किया करता है। कुछ लोगोंका कहना है कि सूर्यकी उदय और अस्त होनेकी क्रियाके अलावा और कोई काल पदार्थ ही नहीं है। लेकिन यह ठीक नहीं है। संसारमें क्रियाको 'काल'शब्दसे सूचित करना, वाहकमें गो-ध्वनिके समान, गौण-वृत्तिसे प्रचलित होगया है। 'नरसिंह' शब्दकी तरह मुख्य विना गौणकी कल्पना हो नहीं सकती। इस लिए मानना पड़ेगा कि द्रव्यस्व-

भावसे युक्त कोई काल अवश्य है। जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पाये जायँ वह पुद्गल है। पुद्गलके दो भेद हैं–परमाणु और स्कन्ध। पृथिवी आदि तथा स्थूल–सूक्ष्म आदि और छाँह–धूप आदिके भेदोंसे पुद्गलके बहुतसे भेद हैं। वह पुद्गल शरीर-इन्द्रिय-प्राण-अपान आदि पर्यायोंसे सब प्राणियोंका उपकार करता है। जैन-शास्त्रानुसार यह अजीव-तत्त्वका वर्णन किया गया।

अब आस्रव-तत्त्वका कुछ निरूपण किया जाता है। कर्मोंके आगम-द्वारको आस्रव कहते हैं। उसका सम्बन्ध मन-वचन-कायके कर्मोंसे है। वह पुण्यकर्मका शुभ और पापकर्मका अशुभ आस्रव कह-लाता है। उस आस्रवके कर्ता द्विविध हैं, एक क्रोधादि कषायसहित और दूसरा इन कषायोंसे रहित। आसादन (ज्ञानवस्तुमें विनयाभाव), मात्सर्य, महापुरुषोंके प्रति अपलाप आदि ज्ञानावरण और दर्शनावरणके आस्रव बतलाये गये हैं। रोना, सन्ताप, शोक, आक्रोश और वध आदिक असातवेदनीय कर्मके आस्रव हैं। रागसहित चारित्र, दान, शौच, क्षमा, प्राणिदया आदि सातवेदनीय कर्मके आस्रव जानने चाहिए। केवली (अर्हत्परमेष्ठी), तत्कथित शास्त्र, धर्म (रत्नत्रय), चतुर्निकायके देव और चतुःसंघकी निन्दा, ये दर्शनमोहनीके आस्रव हैं। क्रोधादि कषायोंके उदयसे जो तीव्र परिणाम होता है वही परिणाम चारित्रमोह-कर्मका आस्रव कहा गया है। बहुत आरंभ, बहुत परिग्रह नरक-सम्बन्धी आयुका आस्रव है। बहुविध माया-कषाय तिर्यक्योनिके आस्रव हैं। सराग-संयम आदि देवयोनिके आस्रव कहे गये हैं। विसम्वादन (अन्यथा प्रवृत्ति) और अत्यन्त मन-वचन-कायके व्यापारोंकी कुटिलता अशुभ कर्मके आस्रव हैं। शुभकर्मके आस्रव इनके विपरीत हैं। दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह भावनायें तीर्थंकर नामकर्मके आस्रव हैं। अपनी प्रशंसा और अन्य लोगोंकी निन्दा आदि नीच गोत्रके आस्रव हैं। अपनी निन्दा और अन्य लोगोंकी प्रशंसा आदि उच्च गोत्रके आस्रव

हैं। दान आदिमें विघ्न करना अन्तरायकर्मका आस्रव कहा गया है। इस प्रकार आस्रव-पदार्थका वर्णन किया गया।

अब बन्ध-तत्त्वका स्वरूप बतलाया जाता है। मिथ्यात्व, योग, अविरति, प्रमाद और कषाय, ये पाँच बन्धके कारण हैं। संसारी जीवके कषाय युक्त होनेसे कर्मोंके योग्य पुद्गल-परमाणुओंके साथ निरन्तर संबंध ही बन्ध कहलाता है। जैनशास्त्रमें निष्णात मुनीश्वर लोग उस बन्धके चार भेद बतलाते हैं। यथा-प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय, ये आठ कर्म हैं। इनके क्रमसे पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो और पाँच भेद हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय अन्तराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्टस्थिति, तीस कोटि-सागरकी है। मोहनीय-कर्मकी स्थिति सत्तर कोटि-सागर और नाम तथा गोत्र इन दो कर्मोंकी स्थिति बीस बीस कोटि-सागरकी है। आयुकर्मकी स्थिति तेंतीस सागरकी है। वेदनीय कर्मकी जघन्यस्थिति बारह मुहूर्त्तकी और नाम तथा गोत्र कर्मकी जघन्यस्थिति आठ मुहूर्त्तकी है। शेष कर्मोंकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त्तकी है। केवलदृष्टिसे युक्त जिनेश्वरोंने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव आदिकी अपेक्षासे ज्ञानावरण आदि कर्मोंके विपाकको ही अनुभाग-बन्ध कहा है। मन-वचन-कायके भेदसे जीवके सब अपने प्रदेशोंमें ज्ञानावरण आदि कर्मोंके अनन्त प्रदेश स्थित हैं। यही प्रदेश-बन्ध है। इस प्रकार चार भेदोंसे युक्त बन्धका स्वरूप कहा।

अब कुछ संवरका वर्णन किया जाता है आस्रव-निवृत्ति ही संवर कहलाता है। व्युत्पत्तिके अनुसार जिससे कर्मका संवरण-रोकना हो वही संवर है। चारित्र, गुप्ति, अनुप्रेक्षा (शरीरादिके स्वभावका अनुचिन्तन), परीषहजय (भूख प्यास आदिको मारना), दशलक्षण धर्म और पञ्च समितियोंसे यह संवर होता है। यह संक्षेपसे संवर तत्त्वका स्वरूप कहा गया।

अब कुछ निर्जराका निरूपण किया जाता है। कर्मोका क्षय करना ही जिसका लक्षण है वह निर्जरा दो प्रकारकी है। एक सविपाकनिर्जरा और दूसरी अविपाकनिर्जरा। नरक आदि गतिमें कर्मोको भोगकर उनका क्षय करना सविपाकनिर्जरा है और तप करके कर्मोका क्षय करना अविपाकनिर्जरा है। निर्जराका कारण तप है। वह बारह भेदोंसे युक्त है। किन्तु उसके मूलभेद दो ही हैं—अन्तरंगतप और बाह्यतप। उपवास, अवमोदर्य, वृत्तिसंख्या, रस-परित्यागं, एकान्तवास और कायक्लेश ये बाह्य तपके छह भेद हैं। स्वाध्याय, वैयावृत्ति, ध्यान, कायोत्सर्ग, विनय और प्रायश्चित्त, ये अन्तरंग तपके छह भेद हैं। स्वाध्याय, अनशन आदिको सब समझते हैं, इससे उनका विशेष बखान न करके दुर्बोध्य ध्यानका ही वर्णन किया जाता है। जिन भगवान्ने शुभाशुभ गति देनेवाले ध्यानके चार भेद कहे हैं। यथा—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। अनिष्ट वस्तुके प्राप्त होने पर उसके दूर होनेका चिन्तन करना, इष्ट वस्तुके वियोगकी अवस्थामें उसके पानेका चिन्तन करना, रोग आदिसे उत्पन्न वेदनाकी बारम्बार स्मृति और निदान(आगामी विषय भोगोंकी प्राप्तिकी इच्छा) ये आर्तध्यानके चार भेद हैं। रौद्रध्यान भी हिंसानन्द, अनृतानन्द, चौर्यानन्द और विषयानन्द इस तरह चार प्रकारका है। धर्मध्यानके भी आज्ञाविचय, विपाकविचय, अपायविचय

१—आर्त्त नाम दुःखका है। उससे होनेवाले ध्यानको 'आर्त्तध्यान' कहते हैं। २—रुद्र नाम क्रूरताका है। उससे होनेवाले ध्यानको 'रौद्रध्यान' कहते हैं। ३—दसलक्षण आदि धर्म द्वारा होनेवाले ध्यानको 'धर्मध्यान' कहते हैं। ४—शुचिगुणके सम्बन्धसे होनेवाले ध्यानको 'शुक्लध्यान' कहते हैं। ५—सर्वज्ञकी आज्ञाको प्रमाण मानकर गहन पदार्थोके अर्थका अवधारण—निश्चय करनेको 'आज्ञाविचयधर्मध्यान' कहते हैं। ६—ये संसारी जीव मिथ्यामार्गसे मुक्ति लाभकर कब सुमार्ग पर आवें, इस प्रकार चिन्तन करनेको 'अपायविचयधर्मध्यान' कहते हैं। ७—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका निमित्त पाकर उदयमें आये कर्मफलका अनुभव करनेको 'विपाकविचयधर्मध्यान' कहते हैं।

और संस्थानविचय ये चार भेद हैं । शुक्लध्यानके भी चार भेद हैं पृथक्त्व-वितर्कवीचार और दूसरा एकत्ववितर्कवीचार । तीसरा सूक्ष्मप्रतिपाति और चौथा समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाति । इस प्रकार यह निर्जरा पदार्थका वर्णन किया गया ।

अब मोक्षतत्त्वका वर्णन किया जाता है । परिणामी भव्य-जीवके सब कर्मोका क्षय ही मोक्ष है । सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र, ये तीन उसकी प्राप्तिके उपाय हैं । जीव आदि पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान है । तत्त्वोंमें रुचि पैदा होना सम्यग्दर्शन है । पापरूप आरंभका त्याग सम्यक्चारित्र है । निश्चितरूपसे भावित ये तीनों बातें संसार-व्याधिका विध्वंस कर डालती हैं । जैसे किसी एक

८—लोकके संस्थान, पर्याय, स्वभाव आदिके चिन्तन करनेको 'संस्थानविचय-धर्मध्यान' कहते हैं । ९—शान्तमोह मुनि अनेक द्रव्योंका तीनों योगों द्वारा जो बार बार विचार करता है उसे 'पृथक्त्व' कहते हैं । यह पृथक्त्व वितर्क (श्रुत—अर्थसे अर्थान्तर होना) सहित है इसलिए इसे सवितर्क कहते हैं । पदार्थ, पर्याय, और योग इनका यहाँ पर संक्रमण (पलटना—पदार्थसे पदार्थान्तर, पर्यायसे पर्यायान्तर और योगसे योगान्तर) होता रहता है इसलिए इसे सवीचार कहते हैं । और इसी कारण (श्रुत और संक्रमण युक्त होनेसे) इस पृथक्त्व ध्यानको 'पृथक्त्ववितर्कवीचारशुक्लध्यान' कहते हैं । १०—तीन योगोंमेंसे किसी एक योग द्वारा एक ही द्रव्यका ध्यान करनेको 'एकत्व' कहते हैं । पहले भेदके समान यह भी वितर्क (श्रुत) सहित होता है इसलिए इसे 'एकत्व-वितर्क' कहते हैं । इस ध्यानमें पदार्थादिकका पलटना नहीं होता इसलिए इसे अवीचार कहते हैं । तब इसका नाम 'एकत्ववितर्कअवीचारशुक्लध्यान' हुआ । ११—जिसमें वितर्क और वीचारको छोड़कर केवल सूक्ष्म-काय-योगका अवलंबन लेकर जो सब पदार्थोंका ध्यान किया जाता है उसे 'सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिशुक्लध्यान' कहते हैं । १२—सूक्ष्म-काययोगके अवलम्बनको भी छोड़कर—अयोग होकर जो सब पदार्थोंका निर्विकल्प ध्यान किया जाता है उसे 'व्युपरतक्रियानिवर्तिशुक्लध्यान' कहते हैं ।

दवासे हीन नुस्खा रोगको नहीं नष्ट कर सकता वैसे इनमेंसे एक बातकी कमी होने पर मुक्ति नहीं होती। जैसे दवाका केवल जानपना, केवल विश्वास (श्रद्धा) तथा केवल सेवन रोगका नाश नहीं कर सकता उसी तरह तत्वोंका केवल जानपना, केवल विश्वास या केवल आचरण संसार रोगका नाश नहीं कर सकता। और जैसे दवाका सम्यक् जानपना सम्यक् विश्वास तथा सम्यक् आचरण—सेवन रोगका नाश कर देता है उसी तरह तत्वोंका सम्यक् ज्ञान, सम्यक् विश्वास तथा सम्यक् आचरण—ग्रहण संसार-रोगका नाश कर देता है। मतलब यह कि रोग नाशके लिए जैसे दवाके ज्ञान, श्रद्धान और सेवनकी एक साथ आवश्यकता है—वे जुदे जुदे कुछ लाभकारी नहीं होते उसी तरह तत्वोंका ज्ञान, विश्वास और आचरण ये तीनों मिले होने चाहिए। ये तीनों मिले हुए ही मोक्षके मार्ग हैं, जुदे जुदे नहीं। ये सम्यग्ज्ञान आदि ज्ञानावरण आदि कर्मोंके प्रतिकूल होनेके कारण मुक्तिके कारण हैं। क्योंकि ज्ञान आदिकी वृद्धिसे ही राग-द्वेष आदिका क्षय देख पड़ता है। रागद्वेष आदिका क्षय होने पर कर्मोंका भी क्षय हो जाता है। क्योंकि राग-द्वेष आदि वासनायें ही कर्मका कारण हैं। इस कारण यह रत्नत्रय, विरोधी होनेके कारण, कर्मोंके क्षयका कारण है। कर्म जिसके क्षीण हो गये हैं वह जीव, अपने शरीरके अनुसार कुछ न्यून आकार ग्रहण करके अग्नि-शिखाके समान स्वभावतः ऊर्द्धगतिको प्राप्त होता है। तब वह जीव जगत्के अग्रभागमें पहुँचकर वहीं स्थिर हो जाता है। गतिके कारण धर्मद्रव्यके न रहनेसे आगे गति नहीं होती।

इस प्रकार तत्त्वके उपदेशसे सारी सभाको प्रसन्न करके भव्य जीवोंके शुभकर्मोंसे प्रेरित स्वामी चन्द्रप्रभ जिन पृथ्वी पर विचरने गये। चन्द्र-प्रभ भगवान्का सूर्यतुल्य तेजस्वी शरीर स्वेदहीनता आदि दस स्वाभा-विक गुणोंसे शोभायमान हुआ। चन्द्रप्रभ भगवान् जहाँ जहाँ जाते थे

वहाँ वहाँ दो-सौ योजन तक लोगोंको प्रसन्न करनेवाला सुभिक्ष होता था। प्राणियोंको पीड़ा न पहुँचानेवाला उनका आकाशगमन भी सब प्राणियोंकी प्रसन्नताका कारण होता था। सूर्यके समान छायाशून्य उनके शरीरको भोगजनित बाधायें जरा भी नहीं स्पर्श कर सकीं। चन्द्रप्रभके महातिशयवाले चतुर्मुख रूपको देखकर, जहाँ वे जाते थे वहाँकी, चतुर प्रजा उठकर उन्हें प्रणाम करती थी। पलक न लगनेके कारण उनके दोनों नेत्र उन नील कमलोंके समान जान पड़ते थे जो वायुरहित स्थानमें विराजमान हों। यथास्थान नखों और केशोंसे युक्त उनका शरीर ही मानों उन सब विद्याओंके स्वामीकी असाधारणताको कह रहा था। मुक्ति प्राप्त करनेके लिए उत्सुक वे जिनेन्द्र इन घाती-कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न इन उत्कृष्ट अतिशयोंसे शोभायमान हुए। सर्वभाषा-स्वरूपिणी और सब तत्त्वोंका उपदेश करनेवाली भगवान्‌की मागधी भाषा और प्राणिमैत्री सबकी प्रसन्नताका कारण हुई। उनके विहारसे पृथ्वी आईनेके समान साफ़, रत्नमयी और सब ऋतुओंके फलोंसे सम्पन्न होगई। उनके सुवर्णकमल-सदृश चरण देखकर यह जान पड़ता था कि जीते हुए राग-रूपी मल्लने हारकर उनके चरणोंका आश्रय लिया है। इस प्रकार इन देवसमूहकल्पित चौदह अतिशयोंसे तथा अन्यान्य अतिशयोंसे चन्द्रप्रभ भगवान् सुशोभित हुए। वे शुभ-चेष्टायुक्त जिनेन्द्र भगवान् सम्पूर्ण जगत्‌के ऐश्वर्यकी सूचना देनेवाले तीन छत्र आदि आठ प्रातिहार्यसे युक्त होकर विराजमान हुए। चन्द्रप्रभ भगवान्‌की सभामें तिरानवे गणधर, अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले दो हज़ार पूर्वधारी मुनि, दो लाख आचार्य्य, आठ हज़ार चारसौ महाबुद्धिमान् अवधिज्ञानसे युक्त मुनि, दस हज़ार निर्मल चित्तवाले केवल-ज्ञानी मुनि, चौदह हज़ार विक्रिय-ऋद्धिको प्राप्त मुनि, आठ हज़ार तेजस्वी मनःपर्य्ययज्ञानवाले मुनि, सात हज़ार छहसौ महावादी मुनि, जिनके पाप नष्ट होगये हैं और चित्त अत्यन्त शुद्ध हो चुका है ऐसी एक लाख

अस्सी हज़ार वरुणा आदि आर्यिकायें, तीन लाख सम्यक्त्वशाली श्रावक और पाँच लाख व्रत आदिसे पवित्र श्राविकायें थीं।

मुनिवृन्द जिनकी वन्दना करते हैं उन गणधरोंसे युक्त भगवान् चन्द्र-प्रभ धर्मोपदेशके जलसे भव्यपुरुष-सस्यको बढ़ाते हुए सारी पृथ्वी पर विहार करके सम्मेदपर्वतके शिखर पर गये। वहाँ महीना भर आहार छोड़कर भादोंके शुक्लपक्षकी सप्तमीके दिन मुनिगण सहित चन्द्रप्रभ प्रभुने प्रतिमा-योग ग्रहण कर लिया। इस प्रकार निराबाध दस लाख-पूर्व-वर्ष-परिमाण आयुका क्षय होने पर भगवान् चन्द्रप्रभ शुक्लध्यान द्वारा सब पापोंका नाशकर मोक्षपदको प्राप्त हुए। इस प्रकार निर्वाण प्राप्तिके उपरान्त जिनके बड़े पुण्योंका उदय हुआ है वे देवगण चैत्य-मन्दिरोंसे प्रकाशमान सम्मेद-पर्वतके पवित्र शिखर पर स्थित चन्द्रप्रभ प्रभुके डेढ़सौ धनुष ऊँचे शरीरको अगरु-चन्दन आदिकी चितामें जलाकर, पञ्चम निर्वाण-कल्याण नामक मंगलकार्य करके अपने अपने स्थानको गये।

इति अष्टादशः सर्गः।

ग्रन्थकर्त्ताका परिचय।

भव्यजनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित-हर्षित करनेवाले, मुनिसंघके स्वामी, गणधरकी तरह ज्ञानवान्, सज्जनोंमें श्रेष्ठताका मानपाये हुए, देशिगणमें प्रधान माने-जानेवाले और गुणकी खान ऐसे श्रीगुणनन्दि नामके एक आचार्यके हुए। उन गुण-समुद्र सुकृतके स्थान गुणनन्दि आचार्यके लिए—राजाको जैसे कोई बात असाध्य या कठिन नहीं होती—कुछ कठिन न था। इन गुणनन्दिके प्रधानशिष्य दूसरे गुणनन्दि हुए, जो चंद्रमाके समान शान्तस्वभावी और पृथ्वीमें प्रसिद्ध थे।

जिनके चरणोंको मुनिजन नमस्कार करते हैं, मिथ्यावाद जिन्होंने नष्ट कर दिया है, जो सब श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त है, जैनधर्मका प्रभाव बढ़ानेवाले हैं, जिन्होंने अपनी गंभीरतारूप महिमासे समुद्रको भी जीत लिया और जो भव्यजनोंके एकमात्र बन्धु—हितकर्त्ता थे ऐसे अभयनन्दि मुनि उन दूसरे गुणनन्दि आचार्यके शिष्य हुए।

उन—भव्यजनरूपी कमलोंको विकसित—आनन्दित करनेवाले, सूर्यके समान तेजस्वी और गुणोंके धारी बुद्धिमान् अभयनन्दि आचार्यके शिष्य वीरनन्दी हुए। जिन्होंने सम्पूर्ण वाङ्मयको अपने अधीन कर लिया था—जो अपनी रचनामें अपनी इच्छाके अनुसार अर्थगाम्भीर्य, शब्दार्थ-सौन्दर्य आदि गुण ला सकते थे और जिनकी कीर्त्ति संसारमें प्रख्यात थी। उन वीरनन्दीके वचन कुतर्कका नाश करनेको अंकुश समान थे। सभाओंमें उन्हींके वचनोंकी विजय होती थी।

उन्हीं सहृदय वीरनन्दीने शब्द और अर्थसे सुन्दर इस चन्द्रप्रभ-चरितको रचा है।

जो पहले श्रीवर्मा नाम राजा हुए, फिर सौधर्मस्वर्गमें गये, वहाँसे आकर अजितसेन चक्रवर्ती हुए, फिर अच्युतस्वर्गमें इन्द्र हुए, बाद पद्मनाभ नाम राजा हुए, वहाँसे फिर वैजयन्त विमानके इन्द्र हुए। इस प्रकार छह भव धारण कर सातवें भवमें जो चन्द्रप्रभ तीर्थंकर हुए; वे भगवान् हमारी रक्षा करें।